एकत्व की आराधना

कान्ति शाह

चि० हरिश्चंद्र,

तुम्हारा निश्चय मुझे बहुत अच्छा लगा। दोनों के एकत्व-निश्चय में ब्रह्मविद्या छिपी है।

... ...

तुम दोनों मिलकर एक मनुष्य, ऐसा मानकर यह नाम बनाया। दोनों के नामों का प्रथम हिस्सा इसमें आ जाता है।

... ...

मैं तुम दोनों का अद्वैत चाहता हूँ। अद्वैत मानकर ही तो 'हरिश्चन्द्र' नाम दिया।

... ...

तुम दोनों को मिलकर एकरस चिन्तन करना है। दोनों की वृत्तियाँ अलग-अलग क्यों हों? यह एक सुन्दर साधना होगी। अभी तक इस प्रकार की साधना दुनिया में कम ही हुई।

... ...

तुम दोनों साधिकाएँ मिलकर हरिश्चन्द्र बन रही हो। मेरी दृष्टि से सारे क्रान्तिकारी तत्त्व इसमें समा जाते हैं।

... ...

तुम दोनों के बीच जो हार्दिक एकता है, उसे मैं एक आदर्श उदाहरण के रूप में बहनों के सामने रखता हूँ। तुम्हारी मिसाल कई जगह देता रहता हूँ।

... ...

तुम दोनों को जब से मैंने देखा है, मेरे हृदय में तुम्हारी छवि अंकित हो गयी है। ... तुम्हारे प्रथम परिचय में भी मुझे ऐसा नहीं लगा कि अपरिचित से परिचय हो रहा है। बल्कि ऐसा महसूस हुआ कि किसी चिरपरिचित का परिचय ताजा हुआ।

... ...

बाबा ने जान लिया कि भगवान की चि० कान्ता और उसके साथ चि० हरविलास पर विशेष कृपा है और साथ ही भगवान को इन दोनों से विशेष आशा और अपेक्षा है। भगवत्-कृपा से वह पूर्ण होगी।

—विनोबा के आशीर्वाद

एकत्व की आराधना

●

गुजराती - लेखक
कान्ति शाह

●

हिन्दी अनुवाद
नन्दिनी मेहता

●

संस्करण : **पहला**
प्रतियाँ : **३,०००**
अक्तूबर, १९९३

●

प्रकाशक :
सर्व - सेवा - संघ - प्रकाशन
राजघाट, वाराणसी - २२१००१

●

मुद्रक :
खण्डेलवाल आफसेट्स
मानमंदिर, वाराणसी

मूल्य : चालीस रुपये (रु० ४०/-)

EKATVA KI AARADHANA

●

Kanti Shah

●

Nandini Mehta

●

Price Rs. 40/- (Fourty)
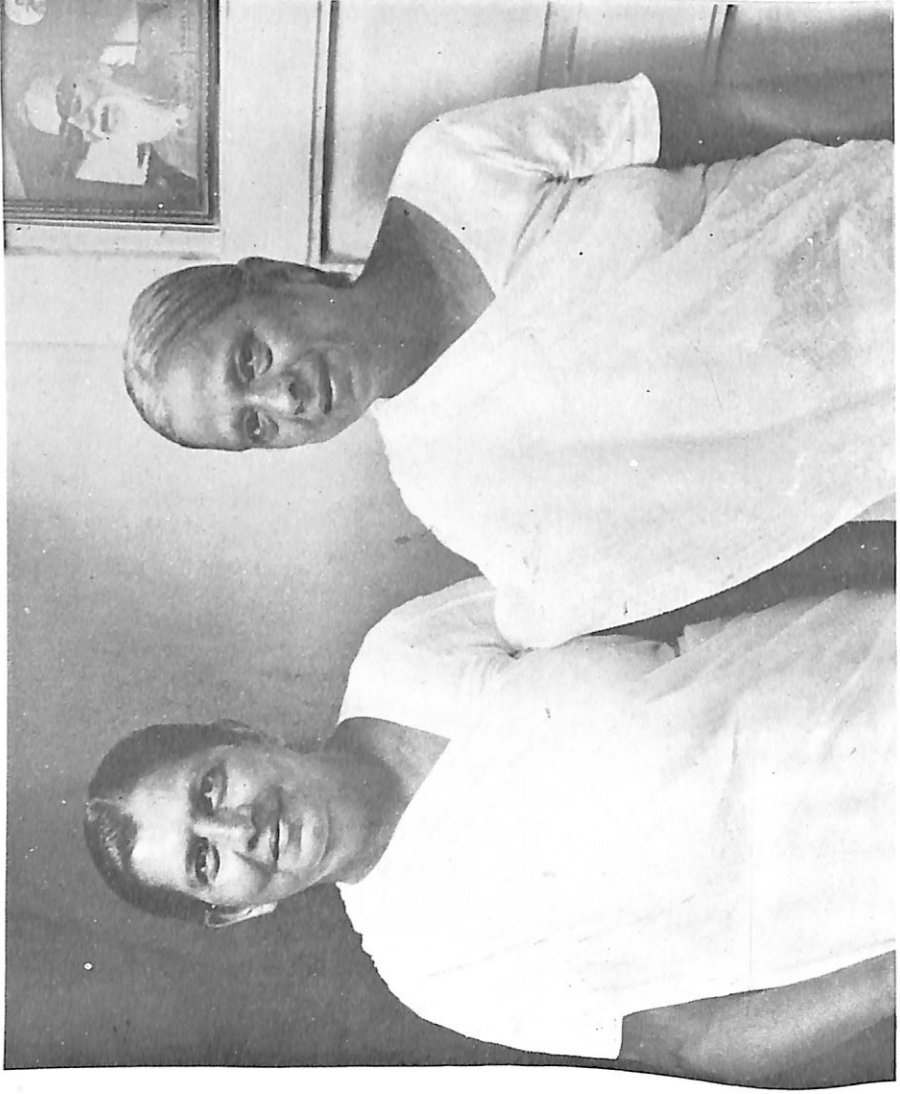
हरविलास भगिनीद्वय हरिश्चन्द्र (हर+चन्द्र) चन्द्रकान्ता

एकत्व में ही ब्रह्मविद्या

ईशु ने कहा है, 'यु लव वन एनअदर ऐज आई हैव लव्ड यू' – तुम एक-दूसरे पर वैसा ही प्यार करो, जैसा मैंने तुम पर किया। उन्होंने इसको सलाह या सुझाव नहीं कहा : न्यू कमान्डमेंट – मैं यह तुम्हें नयी आज्ञा दे रहा हूँ, कहा। यह आज्ञा तब दी, जब दूसरे दिन वे क्रॉस पर चढ़नेवाले थे। जिन्दगीभर न कही हुई बात ईशु ने आखिर में कही। यह वाक्य सतत मेरे ध्यान में रहा और मैंने अपने को उस पर कसा। सर्वोदय समाज को भी चाहिए कि वह अपने को उस पर कसे। यह बहुत महत्त्व की बात है।

ईशु ने इससे पहले दो आज्ञाएँ दी थीं : एक – 'पड़ोसी पर प्यार करो'! यह बिलकुल सादी-सी व्यावहारिक बात है कि हम उन पर प्यार करेंगे तो वे हम पर करेंगे। इतना कहने के लिए ईशु की जरूरत नहीं, लेकिन उसी के साथ जो और एक बात जोड़ दी – 'पड़ोसी पर प्यार करो, जैसे अपने खुद पर करते हो।' वह बहुत बड़ी बात है।

ईशु की दूसरी आज्ञा थी – 'दुश्मन पर प्यार करो।' यह तो सत्याग्रह का विचार है। दुश्मन को जीतने का सर्वोत्तम शस्त्र प्यार है। लेकिन यह बुद्ध ने भी कहा है कि निर्वैरता से वैर शमन होता है और महाभारत, उपनिषद् में भी यह कहा है। इसलिए यह भी पुरानी बात है।

परन्तु यह जो आखिरी बात है, वह नयी है, 'न्यू कमान्डमेंट' है। शिष्यों में विशिष्ट बंधुभाव पैदा हो, इसलिए यह बताया। ईशु के बारह शिष्य थे। ईशु के जीते-जी परस्पर स्पर्धा भी कर लेते थे कभी। लेकिन उनके जाने के बाद उन्होंने बिलकुल एकरूप होकर काम किया।

यह जो बात है – 'एक-दूसरे पर प्यार करो!' वह ब्रह्मविद्या मंदिर का कार्यक्रम है। तुकाराम महाराज ने कहा है कि मैं सबको नमन करता हूँ, लेकिन मेरा प्रथम नमन तो मेरी जाति को है। और, उनकी जाति कौन सी, यह वे स्वयं

बता रहे हैं : 'जिनको हरि अन्तःकरणपूर्वक प्रिय है, ऐसे मेरे जाति के लोग मुझे मिलें, तो मेरे मन की तृप्ति हो जायेगी।' इसलिए साधकों के, भक्तों के अन्योन्य प्यार की बराबरी दूसरा कोई नहीं कर सकता।

घर में, कुटुंब में भी प्रेम होता है। कुछ विचारवान लोग कहते हैं कि कुटुंब में जो प्रेम होता है, वह अहेतुक होता है। लेकिन मुझे लगता है कि वह अहेतुक नहीं है, उसमें हेतु पड़ा है। अगर वह हेतुरहित होता, तो अपनी लड़की को, उसके लिए वर ढूँढ़-ढूँढ़ कर रोती हुई हालत में दूसरे के पास भेजते नहीं और दूसरे घर की लड़की को खोज-खोजकर अपने घर लाते नहीं। यह व्यर्थ की मेहनत हेतुरहित नहीं हो सकती। यह सब संतानार्थ किया जाता है। 'कंटिन्यूइटी आफ रेस' – जाति (वंश) चालू रहे, यह प्रेरणा सारी सृष्टि में है। चींटी से लेकर सभी प्राणियों में और घास से लेकर वटवृक्ष तक सभी वृक्षों में यह प्रेरणा है। और वही प्रेरणा मानव में भी है। यह प्रेरणा समस्त प्रकृति में भरी पड़ी है। पारिवारिक प्रेम के पीछे यह प्रेरणा काम कर रही है। उसके पीछे यह हेतु है।

परन्तु भक्तजनों का, साधकों का अन्योन्य अनुराग हेतुरहित होगा। साधकों का परस्पर संबन्ध कैसा होना चाहिए? तुकाराम महाराज ने कहा है, 'तुका म्हणे, आम्हीं एका देहाचे अवयव' – हम सब एक ही देह के अवयव हैं। साधकों को ऐसा लगना चाहिए कि देह का एक अवयव दूसरे अवयव से अत्यन्त स्नेह करता है। पाँव में काँटा गड़ा, तो हाथ तुरन्त उधर दौड़ता है। ऐसा प्यार चाहिए।

एक लड़के का कान दुख रहा था, वह रो रहा था। मैंने पूछा, कान दुख रहा है तो आँख क्यों रो रही है? तो वह एकदम हँसने लगा कि कैसी विचित्र बात कही! अवयवों का संबन्ध अत्यन्त स्वाभाविक है, क्योंकि एक अवयव का दूसरे अवयव से अत्यन्त प्यार है। दोनों एक ही देह के हैं, ऐसी प्रतीति है, समानता है। ऐसा ही प्यार हम लोगों को आपस में महसूस करना चाहिए।

तात्पर्य यह कि प्यार के सर्वप्रथम अधिकारी हैं साधक आपस-आपस में। नम्बर दो में आसपास के लोग हैं। तीसरे नम्बर में समूची दुनिया है। प्यार इस तरह उत्तरोत्तर व्यापक होता जायेगा। लेकिन जो सहज गहरा प्रेम होता है, वह साधकों का आपस-आपस में होता है। वह हेतुरहित स्नेह है।

स्नेह में क्या-क्या आता है? प्रेम, विश्वास, आदर। प्रेम होने पर भी आदर और विश्वास होगा ही, ऐसा नहीं है। जैसे, माँ का बच्चे पर प्रेम होता ही है, पर ऐसा नहीं कि विश्वास या आदर होगा ही। प्रेम अलग बात है, आदर अलग बात

है, विश्वास अलग बात है। ये तीनों जहाँ एक होते हैं, वहाँ स्नेह बनता है, वैसा स्नेह साधकों में होना चाहिए।

ऐसा स्नेह जहाँ होगा, वहाँ एक के अस्तित्व से दूसरे का या ऐसे स्नेह से जुड़े हुए सबका अस्तित्व भासमान होना चाहिए। हम रोज प्रार्थना करते हैं, 'अग्नेनय सुपथे राये अस्मान्....' हे अग्निदेव, तुम हमको कल्याणमार्ग पर ले जाओ। अस्मान् यानी हमको 'कहा', 'मुझे' नहीं कहा। गायत्री मंत्र तो व्यक्तिगत बोला जाता है, एकान्त में बोला जाता है, लेकिन उसमें भी 'हमारी' बुद्धि को प्रेरणा दे, कहा है। बीस हजार साल से यह मंत्र बोला जा रहा है। इसने भारत की रक्षा की है। 'हम' में अह्म का लय हो जाना चाहिए।

साधकों के लिए तो ऐसा एकत्व तुकाराम ने कहा, वैसा 'एक देह के अवयव', की कक्षा पर पहुँचना चाहिए। ऐसे प्रेम की अनुभूति उनको आपस में होनी चाहिए। इसलिए मैंने कहा कि 'तुम एक-दूसरे पर प्यार करो!' – ऐसी ईशु की आज्ञा है – वही ब्रह्मविद्या मंदिर का कार्यक्रम है।

– विनोबा

ब्रह्मविद्या मंदिर, पवनार

१९-३-१९७१

प्रकाशकीय

'एकत्व की आराधना' किताब भगिनीद्वय चन्द्रकान्ता एवं हरविलास दोनों की जीवन साधना की कथा है। इसके लेखक सर्वोदय के प्रकांड विद्वान् श्री कान्तिभाई शाह का जीवन भी बहनों के जीवन से जुड़ा है। इन तीनों के साथ में शुरू से ही डॉ० नगिनभाई पारीख भी जुड़े हैं। इस प्रकार यह जीवन-साधना दो भाई और दो बहनों के पराक्रम की सही कहानी है।

सगी बहनें न होते हुए भी दो बहनों का जीवन कैसे एक हो सकता है, दो शरीर होते हुए भी एक आत्मा कैसे बन सकती है, इसका जीता-जागता उदाहरण करोड़ों में शायद ही कोई मिले। दो आत्माओं का मिलन स्वाभाविक होता है। प्रयत्न साध्य करने की बात नहीं है। इन दोनों बहनों का जीवन विनोबाजी के जिस जीवन मंत्र के मार्गदर्शन में चलता रहा, वह मंत्र था, "मन में राम, मुख में नाम, और हाथ में काम।" सर्वोदय कार्यकर्ताओं एवं भगवत्-मार्ग में जाना चाहनेवाले सभी साधकों के लिए यह मंत्र जीवन संजीवनी बूटी है। इससे भोगपरायण वातावरण में योगमूलक जीवन व्यवहार सधता है, और ब्रह्मविद्या हस्तगत होती है।

दादा धर्माधिकारी कहते हैं, यह व्यक्ति और निष्ठा की अप्रतिम युति लुभावनी है। विनोबाजी लिखते हैं : तुम दोनों के बीच जो हार्दिक एकता है, उसे एक आदर्श उदाहरण के रूप में बहनों के सामने रखता हूँ। तुम दोनों के एकत्व निश्चय में ब्रह्मविद्या छिपी है। कान्ताबहन की रामनाम की अनन्य लगन हमें प्रभु-प्रेम में पागल मीरा की याद दिलाती है। अनेक रूढ़िगत विरोधों के और विषबाधाओं के बावजूद मीरा ने श्याम की लगन नहीं छोड़ी एवं उसके दर्शन पा कर कृतकृत्य हुई, उसी प्रकार चन्द्रकान्ताबहन भी अनेक रूढ़िगत दिक्कतों एवं अनेक व्याधियों की विषबाधा को लाँघते हुए हिम्मत से बढ़ती गयीं एवं भगवत्-दर्शन प्राप्त कर सकीं। गुजराती साहित्य के मूर्धन्य विद्वान् श्री मनुभाई पंचोली लिखते हैं कि इस दशक की, इस प्रकार की शायद यह एकमात्र पुस्तक है। सुश्री विमलाबहन ठकार लिखती हैं कि यह सख्य सहयोग का महाकाव्य उदात्त रस का सागर है। संत विनोबाजी के

मार्गदर्शन का अपूर्व दर्शन है। हरिसेवा करते हुए जनसेवा की उमंग कुशलता सभी प्रशंसनीय हैं।

इस किताब के प्रकाशन में इसके लेखक श्री कान्तिभाई ने हिन्दी प्रकाशन की अनुमति दी, इसके लिए वे धन्यवाद के पात्र हैं। गुजराती से हिन्दी अनुवाद में ख्याति प्राप्त मेरी पुत्री चि० नन्दिनी मेहता ने बड़े स्नेह से और बहुत ही थोड़े समय में यह अनुवाद कर दिया, जिसके बिना अल्प समय में इतनी सुन्दर पुस्तक निकलना संभव नहीं था। धन्यवाद का भी उसे भार लगेगा। बजाज प्रतिष्ठानवालों ने बिक्री में रियायत दी, इसके कारण अधिक प्रतियाँ निकल सकीं। इस पुस्तक की छपाई में श्री शरदकुमारजी साधक ने रात-दिन मेहनत की, उसी के कारण तीन-चार सप्ताह के भीतर छप सकी, वह भी सुन्दर। वे भी धन्यवाद के पात्र हैं। खण्डेलवाल प्रेस, वाराणसी के संचालकों ने भी स्नेहपूर्वक सुन्दर काम किया, जिसके लिए आभारी हैं।

अंत में भगवान को धन्यवाद कि उसी की प्रेरणा से यह किताब इतने अल्प समय में पाठकों के हाथों में पहुँच रही है।

राधाकृष्ण बजाज

वास्ते

सर्व - सेवा - संघ - प्रकाशन

आशीर्वचन

प्रिय कान्तिभाई,

आपकी स्नेहरस झरती कलम से लिखा हरिश्चन्द्र का सख्य-सहयोग का महाकाव्य उदात्त रस की भेंट है। आप हरिश्चन्द्र के बारे में लिखें, यह दुग्ध-शर्करा-योग है। कान्ता-हरविलास का व्यक्तिव तपःपूत होने के बावजूद इतना प्यारा है कि परिचय पानेवाला हर व्यक्ति मुग्ध हो जाय। आप एक प्रथितयश, प्रसिद्ध चिन्तक – विश्लेषक और कलम के धनी लेखक हैं। इसलिए हरिश्चन्द्र की जीवनगाथा का आलेखन आकर्षक, रोचक और उद्‌बोधक हुआ है, उसमें कोई आश्चर्य नहीं। उनका पराक्रम, उनकी प्रभु-भक्ति, गुरुशरणता और हरिसेवक रहकर जन सेवा करने की कुशलता, सभी कौतुकास्पद है।

संत विनोबाजी का मार्गदर्शन भी एक अपूर्व 'दर्शन' है। उनके मार्गदर्शन में कान्ता की भाव-साधना कर्मप्रवण रही। हरविलास का अनन्य स्नेह और परिचर्या, आपके जैसे सत्ययोगी भाइयों का निश्छल सहयोग, कर्मशील भाव साधना में पूरक ही नहीं अपितु प्रेरक शक्ति बनी, यह एक मधुर संयोग है।

कान्ता-हरविलास जैसी बहनें गुजरात की गरिमा को बढ़ाती हैं। स्त्री-पुरुष सहयोग और सहजीवन का उज्ज्वल उदाहरण पेश करती हैं। पिंडवल की भूमि में आप सब द्वारा चलाया हुआ सहजीवन यज्ञ मानवीय चेतना की उत्क्रांति में पावन समिधा-सम माना जायेगा।

हरिश्चन्द्र की जीवन-गाथा युवा पीढ़ी के लिए एक जगमगाता दीप स्तंभ साबित होगी, ऐसा विश्वास है।

डेलहाउसी, ३१ मई, १९९३

— **विमला टकार**

(मूल गुजराती से)

अनुवादक की ओर से

एक दिन सुबह-सुबह मेरी माँ और बाबा (श्री राधाकृष्ण बजाज, श्री अनुसूया बजाज) का वर्धा से फोन आया। बाबा बोले: ''नंदा, तू 'एकत्व की आराधना' का हिन्दी अनुवाद करेगी? मैं चाहता हूँ इसे हिन्दी में छपायें, जिससे सब पढ़ सकें।'' माँ ने कहा : ''यह किताब मुझे बहुत अच्छी लगी। कृष्ण की गीता तो इस जमाने में कौन पढ़ेगा और कौन समझेगा? यह तो जीवन की गीता है। तू इसका अनुवाद करेगी न?'' दोनों की आवाज से उमड़ता उत्साह मुझे भी छू गया। हरिश्चन्द्र बहनों का जिक्र कर के दोनों गद्‌गद हो रहे थे। हमारे बाबा जो काम उठाते हैं, उसमें जी-जान से जुट जाते हैं। ४० साल पहले सर्व सेवा संघ प्रकाशन विभाग को जिस लगन और मेहनत से सँभाला था, ८८ वर्ष की उम्र में वैसी ही तत्परता और उत्कटता से इस काम में लग गये। उन्हीं की वजह से यह हिन्दी संस्करण ठीक समय पर तैयार हो सका है।

हरिश्चन्द्र बहनों की जीवनगाथा में कुछ कहने लायक है, इसीलिए यह पढ़ने लायक भी है। इस कथा का नाम 'एकत्व की आराधना' सार्थक है। यहाँ एकत्व मुख्यतः तीन क्षेत्रों से संबन्धित है : कर्म को विकर्म में पलटनेवाले अपने 'काम के साथ का एकत्व', द्वैत में से अद्वैत साध्य करनेवाली 'दोनों बहनों का आपस का एकत्व' और जीवन मर्म का साक्षात्कार करानेवाला 'परम-शक्ति के साथ का एकत्व।' मुख्य रूप से इस त्रिविध एकत्व की आराधना की कथा यहाँ कही गयी है।

मूल गुजराती की यह पुस्तक अत्यंत सरल, भाववाही एवं प्रासादिक शैली में लिखी गयी है। सिद्धहस्त लेखक कान्तिभाई का प्रस्तुतीकरण हमें आदि से अन्त तक बाँधे रखता है। उनकी कलम की कारीगरी में कथा-तत्त्व और गंभीर चिन्तन दोनों का सुन्दर समन्वय है।

बड़ी खुशी की बात है कि जमनालाल बजाज फाउण्डेशन की ओर से इस वर्ष का जानकी देवी बजाज पुरस्कार हरिश्चन्द्र बहनों को दिया गया है। ग्रामीण क्षेत्रों में सर्वोत्तम कार्य के लिए बहनों को यह अवार्ड दिया जाता है। माना कि हरिश्चन्द्र बहनों का काम या जीवन किसी अवार्ड का मुँहताज नहीं है। फिर भी ऐसी सेवारत बहनों को समाज का आदर पात्र बनते देखकर विशेष आनन्द होता है।

समय कम था। कुल ३० दिन में अनुवाद का काम किया गया, अतः त्रुटियों की संभावना है। आशा है पाठक क्षमा करेंगे। इसकी भाषा सँवारने में कुमार प्रशांत और स्वयं कान्तिभाई ने काफी मेहनत की है, मैं उनकी आभारी हूँ। श्री देवी शंकर गुप्त ने भी इसमें अपना सहयोग दिया, उन्हें धन्यवाद देती हूँ। सर्व सेवा संघ प्रकाशन और श्री शरद कुमार साधकजी ने इसे छपाने में जल्दबाजी के बावजूद पूरी सावधानी बरती है, उन्हें अनेक धन्यवाद। मेरे पति धीरू मेहता और बच्चे मैत्री, देवांग, नीरद के सक्रिय सहयोग के कारण यह काम हो सका है। ये सब और हमारे अनेक मित्र मेरे साथ काम में ओतप्रोत होते हैं, जिससे मेरा उत्साह बना रहता है और बढ़ता रहता है।

हरिश्चंद्र बहनों के प्रति स्नेह सुमन-

स्नेह की गंगा बहायी है आपने
संसार सागर को भी मीठा बनाया आपने
साधना के कँटीले पथ में सेवा पुष्प उगाये आपने
अनोखे एकत्व-जल से गुरुचरण पखारे आपने
अपने-पराये के कटघरे मिटा दिये आपने
सबको साथ लेकर भक्ति-रस-पान किया आपने
खुले आसमान को घर की छत बनाया आपने
भगवान की छत को मिट्टी का रंग दिया आपने
अँधेरे बियाबाँ में हृदय दीप जलाये हैं आपने
सूरज को झोपड़ी की देहरी पे बिठाया है आपने

—नन्दिनी मेहता

३०१ गोरागांधी अपार्टमेंट
३ लेबरनम रोड, गामदेवी
बम्बई-७

अनुक्रम

दिशा - दर्शन

कार्यकर्त्ताओं को एक बात हम कहना चाहते हैं। हर कोई अपनी बुद्धि से काम करे, लेकिन परस्पर सलाह से करे। गीता ने भक्त का एक बड़ा लक्षण बताया है कि भक्त हमेशा एक-दूसरे से सलाह-मशविरा कर के काम करते हैं। **बोधयन्तः परस्परम्** – भक्त एक-दूसरे को बोध देते हैं। सब मिलकर आपसी सलाह से जो तय होगा, उसके अनुसार काम करना है। कुरान में भी यही कहा है। **अम्र हुम् शूरा बैन हुम्**।

१५-१०-५७

– विनोबा

१
पूर्वकथन

विनोबाजी कहते थे – महापुरुषों के ही चरित्र क्यों लिखे जाते हैं? छोटे-बड़े कार्यकर्त्ताओं के भी लिखे जाने चाहिए। कार्यकर्त्ताओं का परिचय समाज को होना चाहिए। समाज जीवन को परिपुष्ट करनेवाला जो कुछ उनके जीवन में हो, वह समाज के समक्ष रखना चाहिए। समाज को उसकी जानकारी होनी चाहिए।

१९६७ में उन्होंने इस बात पर काफी जोर दिया था। सब कार्यकर्त्ताओं का संक्षिप्त परिचय मँगवाया था। हरएक कार्यकर्त्ता का फोटो भी मँगवाया और सबकी फाइल बनायी। कार्यकर्त्ताओं की उस परिचय - फाइल को उन्होंने काफी समय तक अपने पास रखा। बीच-बीच में उस पर नजर डालते रहते थे।

एक दिन कहा, ''कार्यकर्त्ताओं का परिचय **'भूमिपुत्र'** में छापो। कार्यकर्त्ता की मृत्यु हो, उसके बाद ही उसके जीवन की जानकारी छपे, ऐसा क्यों? मृत्यु की राह देखने की जरूरत नहीं। छोटे-छोटे कार्यकर्त्ताओं के बारे में लोग जानें। इसलिए 'भूमिपुत्र' के हर अंक में एक-एक कार्यकर्त्ता का परिचय छापते रहो।''

हमें बड़ा संकोच हुआ। अपनी पत्रिका में अपने ही बारे में छापें। हमारे जीवन में भला ऐसा क्या है, जो छापें! काफी समय तक बात टालते रहे, किन्तु विनोबाजी कहाँ भूलनेवाले थे! उनका आग्रह जारी रहा।

आखिर हमने उनकी बात मानी। 'भूमिपुत्र' के हर अंक में एक-एक कार्यकर्त्ता का परिचय उसके फोटो के साथ एक पृष्ठ जितना देना शुरू किया। हमारी गंभीरता के अभाव में सबका परिचय नहीं छप सका, करीब आधा छपा होगा। बाराखड़ी के हिसाब से शुरू किया था, गाड़ी 'द' तक पहुँचकर रुक गयी।

तब कान्ताबहन का संक्षिप्त परिचय दिसंबर १९६७ के 'भूमिपुत्र' में छपा था। मुझे याद है, उस परिचय को पढ़कर किशनसिंह चावड़ा अप्रसन्न हुए। बोले, ''आपने लिखा वह तो ठीक है, लेकिन कान्ताबहन जैसी व्यक्ति का परिचय इतना

जरा-सा? उनके जीवन के विविध पहलू तो समाज के सामने विस्तार से रखने चाहिए। आपके परिचय से तो कान्ताबहन के व्यक्तित्व को न्याय नहीं मिला है।"

किशनसिंहजी की अप्रसन्नता को मैं समझ सका। किंतु 'भूमिपुत्र' की उस परिचयमाला की मर्यादा थी। सिर्फ एक पृष्ठ रखा था। इसलिए अधिक से अधिक सात सौ शब्दों में परिचय को समाना था। और, एक विशिष्ट दृष्टिकोण से यह परिचय देना था। जीवन वृत्तांत अत्यंत संक्षेप में होता था। हरएक कार्यकर्त्ता के व्यक्तित्व में विनोबाजी के आंदोलन का कौन-सा पहलू उजागर हुआ है, उसे उभारने की खास कोशिश रहती। विनोबाजी की दृष्टि में आंदोलन का जो पहलू महत्त्वपूर्ण होता, वह जिसके जीवन में दिखाई देता, उसकी चर्चा जरा विस्तार से होती। मेरा ऐसा विचार था कि कार्यकर्त्ताओं के परिचय के द्वारा आंदोलन के विभूतिमत्व को सामने लाऊँ, ताकि इन परिचयों के आईने में आंदोलन का समग्र चित्र दृष्टिगोचर हो। हरएक कार्यकर्त्ता का परिचय तो मिले, किंतु आंदोलन के विशिष्ट दृष्टिकोण से।

विनोबाजी का मंत्र था – **'यो वै भूमा तत् सुखं, नाल्पे सुखं अस्ति'** – अल्प में सुख नहीं, सुख तो है – विस्तार में, व्यापकता में। और दूसरा मंत्र था, तूफान। आंदोलन का काम करो, वह तूफान की तरह करो। कान्ताबहन के व्यक्तित्व में विनोबाजी के ये दोनों मंत्र भासमान होते हैं। उनके हर काम में व्यापकता होगी और वेग भी। थोड़ा-सा करने में उन्हें रस नहीं और चींटी की चाल भी उन्हें जमती नहीं। विनोबाजी कहते – आज जो परिस्थिति है उसमें नमूने खड़े करने की चिंता न करो। शुद्धि भी व्यापकता में है, **'नदी वेगेन शुद्ध्यति'** अर्थात् शुद्धि भी वेग में हैं, नदी अपनी गति से ही शुद्ध रहती है।

कान्ताबहन के व्यक्तित्व में साकार होनेवाले विनोबाजी के अपेक्षित इन दोनों गुणों पर उस परिचय में मैंने विशेष भार दिया था। फिर भी कान्ताबहन के चरित्र को पूरा न्याय नहीं मिला, यह बात सही है।

कान्ताबहन को मैंने बहुत निकट से देखा है, जाना है। उनके जीवन की काफी जानकारी मुझे है। उनके जीवन में ऐसा बहुत कुछ है, जिसे समाज के समक्ष प्रस्तुत करना चाहिए, अक्सर ऐसी इच्छा होती रही है। जीवनभर का संघर्ष है, पराक्रम है, साधना है। उनका जीवन समाज के लिए उदाहरण बन सकता है। चरित्र-लेखन की दृष्टि से भी देखें तो कईएक प्रसंगों में, घटनाओं में खासी रोमांचकता, चित्रात्मकता है। वास्तविकता ही इतनी बुलंद है कि अतिशयोक्ति की

जरूरत नहीं। विनोबाजी ने जैसा कहा था कि कार्यकर्त्ता के जीवनकाल में ही उसके जीवन को समाज जाने, यह उचित है। इसलिए कान्ताबहन की जीवनकथा समाज के समक्ष प्रस्तुत होनी ही चाहिए।

रोज-रोज मेरी यह भावना दृढ़ होती गयी। इधर कुछ समय से सुमित्रा भावे के प्रयत्नों से उसे और अधिक बल मिला। सुमित्राबहन पूना की **'स्त्री-वाणी'** संस्थ की डायरेक्टर हैं। १९८० से उनका हरविलासबहन से परिचय रहा। पवनार में **विश्व महिला सम्मेलन** में पहला परिचय हुआ था। उनके भाषण सुनकर सुमित्राजी प्रभावित हुई थीं। स्त्रियों की समस्याओं के अपने शोधकार्य के संदर्भ में उन्होंने कान्ताबहन के जीवन की 'केस स्टडी' करने का निश्चय किया।

वे दो-चार बार पिंडवल आयीं। कान्ताबहन से ही उनका जीवन-वृत्तांत सविस्तार सुना और टेप किया, काफी चर्चा की। कान्ताबहन ने भी पहली बार दिल खोलकर बातें की।

पूना की 'स्त्री-वाणी' और वीयेना (आस्ट्रिया) की 'इंटरनेशनल असोसिएशन ऑफ स्कूल्स ऑफ सोश्यल वर्क' इन दो संस्थाओं ने मिलकर 'Exploring Feminist Visions' नामक एक प्रोजेक्ट हाथ में लिया था। उसका एक वर्कशाप १९८७ में बंबई के टाटा इंस्टीट्यूट ऑफ सोश्यल साइंसेज में हुआ था। उसमें दस स्त्री-कार्यकर्त्ताओं की केस स्टडी रखी गयी थी और उन पर चर्चा हुई थी। सुमित्रा भावे ने इसी वर्कशाप में कान्ताबहन की केस स्टडी प्रस्तुत की। बाद में इस वर्कशाप की किताब अंग्रेजी में छपी थी। उसमें सुमित्राजी की लिखी चालीस पेज की कान्ताबहन की केस स्टडी भी छपी थी।

सुमित्रा भावे एक अच्छी फिल्म दिग्दर्शिका भी हैं। १९९१ में उन्होंने एक फिल्म का प्रोजेक्ट भी हाथ में लिया था। स्त्री-जीवन के प्रश्नों का विश्लेषण करनेवाली **'संवाद'** नामक फिल्म में उन्होंने कान्ताबहन के जीवन प्रसंगों का और उनके विचार तथा कार्यों का भी समावेश किया है। प्रसिद्ध कलाकार उत्तरा बावकर ने फिल्म में कान्ताबहन के पात्र को सुंदर ढंग से प्रस्तुत किया है।

इन सब बातों से भी यह स्पष्ट होता है कि कान्ताबहन का चरित्र समाजोपयोगी है। व्यक्तिगत घटनाएँ और निजी अनुभव सर्व जन के लिए रसप्रद हैं, रुचि और जिज्ञासा के पोषक हैं।

इसी दौरान एक धक्का और लगाया किसी ने। अहमदाबाद के **'टाइम्स आफ इंडिया'** (गुजराती) के संपादक मंडल से प्रकाश न० शाह जुड़ गये। यों तो

संपादक मंडल में बस उनकी गिनती ही हुई, किंतु उस कम समय में भी वे एक-दो नयी बातें कर गये। हर रविवार को नियमित दैनिक **'टाइम्स'** में और **'महिला टाइम्स'** में स्त्रियों के लिए विशेष सामग्री दी जाने लगी। जिन्होंने समाज जीवन को कुछ विशेष प्रदान किया हो, उनका आत्मकथात्मक लेख माँगा गया। लेख की मर्यादा १२००-१५०० शब्दों की रखी। उन्होंने एक खास विनती यह की थी कि निःसंकोच प्रथम व्यक्ति एक वचन में अपनी बात दे।

इस निमित्त कान्ताबहन ने अपनी बात लिखी, जो दिसंबर १९९० के 'महिला टाइम्स' में छपी। **'दोयम चोला'** शीर्षक था उसका। संक्षेप में लिखे गये उसके बयान में एक समग्र चित्र सामने आ गया। नखदर्पण में कान्ताबहन के जीवन की झाँकी हो जाती है। मेरे मन में आया – ओह, नेगेटिव हाथ में आ गयी – अब तो इस पर से चाहे जितनी बड़ी एन्लार्ज्ड कापी बना सकते हैं।

बहुत से लोगों को जीवन-चित्र पसंद आया, अनेक पत्र आये। कई मित्र आग्रह करने लगे – "यह तो सिर्फ झलक हुई। अपनी बात विस्तार से कहिए – अपने जीवन के बारे में लिखिए।"

किन्तु कान्ताबहन के पास किसी की दाल नहीं गल रही थी। "यह तो एक लेख के बहाने इतना लिख दिया। बाकी ऐसा सब लिखना मुझे जमता नहीं" - वे कहती रहीं।

काफी समय से मेरे मन में आता रहा कि एक लेखक-संपादक के नाते मेरा भी तो कुछ फर्ज है। कान्ताबहन के जीवन को निकट से देखा है, चौबीस घंटे उनके जीवन का निरीक्षण किया है। मेरी आदत के अनुसार प्रसंग, घटनाएँ, व्यवहार, बर्ताव, काम हर बात का चिंतन होता रहा है। विश्लेषण की कुछ कुशलता है। बहुत अच्छा साहित्यकार या चरित्रकार न सही, किन्तु व्यक्तियों का, घटनाओं का, कार्यों का, विचारों का अध्ययन करते रहना मेरी 'हाबी' है। कान्ताबहन के जीवन का भी इस तरह सहज अध्ययन होता रहा है। तो जो मैंने देखा है – जाना है, आत्मसात् किया है, विचारा है, उसे समाज के समक्ष रख दूँ। और कान्ताबहन के जीवन का क्या भरोसा? वैसे तो किसके जीवन का भरोसा है? उन्हींके शब्दों में कहूँ तो उनका शरीर **'रोगों का म्युजियम'** बन गया है। कब धोखा दे जाय, किसे खबर? इसलिए उनके जीते-जी समाज को उनके जीवन का, कार्य का परिचय करवाना हो तो अब देर नहीं चलेगी।

फिर भी कुछ संकोच मन में था ही। मैं तो उनके साथ रहता हूँ और मैं ही

उनके बारे में लिखूँ? क्या यह योग्य है? मेरे इस आख़िरी संकोच को दूर किया मेरे मित्र भोगीभाई गांधी ने।

बिलकुल अनायास ही बात बन गयी। 'भूमिपुत्र' के संपादन-कार्य के लिए हर महीने बड़ौदा जाना होता है और तब एक शाम जरूर ही भोगीभाई और सुभद्रा-बहन के साथ गुजरती है। यह क्रम चलता ही रहा है-दो-तीन घंटे साथ बिताना, साथ खाना, गपशप। तीन महीने पहले इसी तरह एक शाम गपशप कर रहे थे। उस दिन सोमवार था। टी०वी० में **'उपन्यास'** सीरियल शुरू हुआ। उसमें प्रभावती का पात्र उत्तरा बावकर ने निभाया है। उस पर से बात निकल पड़ी—वे तो पिंडवल आ चुकी हैं, शूटिंग के लिए ८-१० दिन वहाँ रही थीं। उन्होंने कान्ताबहन का रोल काफी अच्छा किया है। सुमित्रा भावे की केस स्टडी, वर्कशाप वगैरह भी स्वाभाविक रूप से हुई।

भोगीभाई ने पूरी बात में काफी रुचि ली। इन लोगों ने इतना किया तो अभी तक गुजराती में क्यों नहीं छपा? ऐसे अनुभव तो समाज के समक्ष आने ही चाहिए।

मैंने कहा—कान्ताबहन तो ऐसा कुछ लिखने के लिए तैयार नहीं हैं। भोगी-भाई बोले—यह तो ठीक नहीं। व्यक्ति को चाहिए कि वह स्वयं अपनी हकीकतों से समाज को वाकिफ करे। खैर, अगर वे नहीं लिखतीं, आप तो हैं। आपके सिवाय और कौन लिखे? आप लेखक हैं, उनके निकट रहे हैं, उन्हें जानते हैं, आप ही लिखिए। आपको इसमें संकोच करने की जरूरत नहीं। कैसे भी समय निकालिए और बस लिख ही डालिए।

इस तरह भोगीभाई ने एक ही धक्के में लेखनी हाथ में पकड़वा दी।

जीवन-चरित्र लिखने में मैं कुशल नहीं। मात्र चरित्र-लेखन में मुझे उतनी रुचि भी नहीं। जीवन को समझने में, जीवन-सौंदर्य-रहस्य के साक्षात्कार में कोई भी जीवन-चरित्र कितना उपयोगी है, इसमें मुझे ज्यादा रुचि है। इसलिए चरित्र-लेखन भी मेरे लिए स्वाध्याय का, अध्ययन का विषय है। इसके पहले विनोबाजी और जयप्रकाशजी जैसे दो महापुरुषों के चरित्र लिखने का सौभाग्य मुझे मिला है। वे दोनों चरित्र भी मैंने इसी तरह लिखे हैं। उनके चरित्र -लेखन के निमित्त से दोनों विभूतियों के विभूतिमत्त्व का गहराई से अध्ययन-चिंतन-मनन करने का प्रयत्न मैंने किया। इसीलिए मैंने विनोबाजी के चरित्र को **'एक परिचयात्मक अध्ययन'** नाम दिया है। उसमें जीवन-वृत्तांत का परिचय तो है ही, अध्ययन भी चलता रहे और

अध्ययन का प्रसाद भी बँटता रहे, यह दृष्टि भी रही है। अपने ऐसे दृष्टिकोण के कारण मैं यथा-संभव चरित्र-नायक के अपने शब्दों में ही उसका चरित्र प्रस्तुत करने का प्रयत्न करता हूँ। आत्मकथनात्मक जो सामग्री मिले, उसे उनके शब्दों में अवतरण चिह्नों में रखता हूँ। वैसे मुझे इस बात का पूरा ख्याल है कि कोई भी स्तरीय जीवन-चरित्र इतने सारे अवतरण चिह्नों का भार वहन नहीं कर सकता। साहित्य-सर्जन की दृष्टि से शायद यह अहम् त्रुटि मानी जायगी। किंतु यह बात अध्ययन की दृष्टि से अत्यंत उपकारक बन जाती है। उस व्यक्ति ने अपने बारे में जो कुछ कहा है, वह यथातथ्य हमारे सामने आ जाता है और हमारे वस्तु-निष्ठ अध्ययन में बहुत उपयोगी है।

कान्ताबहन के चरित्र-लेखन का स्वरूप भी इसी तरह 'एक परिचयात्मक अध्ययन' का रहेगा। उसमें जीवन-वृत्तांत तो आयेगा ही, अध्ययन भी होगा। यह तो स्पष्ट है कि कान्ताबहन, विनोबाजी या जयप्रकाशजी जैसी महापुरुष नहीं, आपके-हमारे जैसी साधारण जन हैं। इसलिए उनके विचारों का, सिद्धांतों का, आंदोलन का अध्ययन तो नहीं करना है। फिर भी कान्ताबहन अपने बूते जीवन-संघर्ष व जीवन की साधना करती रही हैं। उनके व्यक्तिगत जीवन-संघर्षों में, उनकी व्यक्तिगत साधना में जीवन का जो मर्म छिपा है, जो सौंदर्य और रहस्य भरा है, उसे समझने का, उसके अध्ययन का हम प्रयत्न करेंगे।

इसमें भी मैंने अवतरण-चिह्नों का जीभर उपयोग किया है। आत्म-कथनात्मक कुछ लेखन हमारे हाथ में है ही, व्यक्ति भी हमारे सामने साक्षात् है और उनसे आसानी से बात कर सकते हैं, जो पूछना हो, उनसे सीधे पूछ सकते हैं। इसलिए अधिकतर बयान उनके शब्दों में होगा।

विनोबाजी कहते – "मेरे पास दो ही शक्तियाँ हैं। एक प्रेम की शक्ति और दूसरी विचार की शक्ति।" इन दोनों शक्तियों का प्रकर्ष हमने विनोबाजी के व्यक्तित्व में देखा है। मैंने भी विनोबाजी से यही सीखा तथा अपने अनुभवों से इसकी यथार्थता को समझा। विचार को परिशुद्ध करते रहें और प्रेम को पवित्रतम बनाते रहें – यही परम साधना है।

कान्ताबहन के बारे में जो कुछ लिखना चाह रहा हूँ, वह प्रेमपूर्वक और विचारपूर्वक लिखना चाहता हूँ। हमारे जैसे ही एक सामान्यजन का मुझे विशेष परिचय हुआ, उसमें समाज को हिस्सेदार बनाने का यह प्रयत्न है। साधारण फिर भी असाधारण – ऐसे व्यक्तित्व का प्रेमपूर्वक और विचारपूर्वक परिचय करवाना है।

आज इसे लिखने का आरंभ कर रहा हूँ और संयोग से आज मेरा जन्मदिन भी है। उनसठ पूरे हुए, साठवें में प्रवेश हो गया। अब तक का मेरा जीवन गढ़ने में सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण योगदान विनोबाजी का रहा और दूसरा भगिनीद्वय हरिश्चंद्र का। जीवन इमारत की बुनियाद है शील और सत्व! जीवन का शील और सत्व यों तो अनेक से पाया, फिर भी सबसे अधिक पाया विनोबाजी से, और इन भगिनीद्वय से।

अभी यहाँ मेरी नजरों के आगे पवित्र गंगा अविराम बह रही है। ऐसी ही पवित्र मेरी इन दो बहनों का पावनक़ारी प्रेम मैंने पाया है। मेरी अनुभूति है कि प्रेम जितनी प्रेरणा और जितना बोध देता है, उतना और कोई नहीं।

यह गंगा भी परमेश्वर की प्रेम-धार ही तो है! ऐसी गंगामैया के अंक में बैठकर, लेखनी हाथ में पकड़ रहा हूँ–यह आशीर्वाद ही तो है।

गंगाकिनारे, आत्म-निकेतन

ऋषिकेश, ता. १८ अगस्त, १९९२

●

२
तेरो कोई नहीं रोकनहार

कान्ताबहन का जीवन अर्थात् सतत संघर्ष, अनवरत पुरुषार्थ-पराक्रम और अनन्य साधना की कथा। जीवन में प्रतिकूलताएँ-ही-प्रतिकूलताएँ! सतत कठिन संघर्ष का लम्बा दौर! कदम-कदम पर प्रतिकूलताओं से जूझकर आगे बढ़ना पड़ा। कमरतोड़ काम करने की आदत तो शुरू से ही थी। कठिन से कठिन परिस्थिति में भी हिम्मत हारे बिना पुरुषार्थ करती रहीं। कठिन मेहनत से कभी जी नहीं चुराया। जो काम एक बार हाथ में लिया, उससे सातत्यपूर्वक चिपकी रहीं। बूँद-बूँद से सरोवर भर जाये - - -

उन्होंने अनेक क्षेत्रों में अपना पराक्रम दिखाया। और भक्ति भाव से किये बाह्य कर्म के साथ आंतरिक साधना चलती रही। हर घड़ी ईश्वर-स्मरण चलता रहा। जो करें, सब ईश्वर-समर्पित हो। इस तरह कान्ताबहन का जीवन संघर्ष, पुरुषार्थ और साधना की कथा है।

मीरा का भजन—**'तेरो कोई नहीं रोकनहार'** — यह कान्ताबहन का जीवनमंत्र है। एक बार कोई दृढ़ निश्चय कर लें, उसमें स्वयं को डुबो दें, खपा दें तो फिर कोई उससे हमें परावृत्त नहीं कर सकता। मीरा की तरह अपनी लगन में मगन होकर चल पड़ें— **'मगन हुई मीरा चली।'**

यहाँ तो प्रतिकूलता जन्म के साथ ही पैदा हुई थी। स्त्री का शरीर मिला—सबसे बड़ी प्रतिकूलता यही थी। कुलदीपक तो बेटा होता है। बेटी तो जन्म से ही खारी। इसके बारे में कान्ताबहन कहती हैं, "मैं जन्म से ही दोयम दर्जे की हूँ, कुछ निम्न कोटि की हूँ—ऐसी बात जन्मघूँटी में ही पिलायी गयी थी। कोमल बाल मन पर ये संस्कार पत्थर की लकीर बन गये थे। लालन-पालन में भी ऐसी ही शिक्षा दी गयी और ऐसा ही बर्ताव किया गया।"

खाना-पीना, पहनना-ओढ़ना, घूमना-फिरना, कामकाज हर बात में भेद-

भाव! मन पर हर क्षण हथौड़े की चोट पड़ती थी – तू लड़की है! तू लड़की है!! तू लड़की है!!! अर्थात् नीच है। तू यह नहीं कर सकती, तू वह नहीं कर सकती, तेरे लिए यह योग्य नहीं, तेरे लिए वह योग्य नहीं – ठोक - ठोक कर निम्नता - हीनता की इन भावनाओं को मन में बिठाया गया।

पढ़ाई में तेज, खेलकूद में होशियार, किंतु वहाँ भी वही बात – लड़की की जात, पढ़कर क्या करना है? आखिर तो कंडे थापने है, या रोटी बेलनी है। इसलिए वहाँ भी विकास के द्वार बन्द ही थे।

लड़की – जो जहर की पुड़िया है। उसे भला घर में कैसे सँभाले! तेरह – चौदह वर्ष की होते ही हाथ पीले कर दिये। ऐसी कच्ची उम्र में विवाह के बारे में तो कोई समझ थी नहीं और समझ आने के पहले ही उसकी समाप्ति हो गयी। एकाध वर्ष होते - होते दुर्घटना में पति की मृत्यु हो गयी और विधवा बच्ची पिता के घर लौट आयी।

कान्ताबहन कहती हैं – वैसे ही स्त्री बनकर पैदा हुई, अब तो अभागन! बाहर नहीं जा सकती, पढ़ नहीं सकती, घूम - फिर नहीं सकती, पहन - ओढ़ नहीं सकती, ऊँची आवाज में बोल नहीं सकती! बस, नहीं, नहीं और नहीं!

जीवन अनगिनत नकारों से घिर गया। जिधर देखें, दीवारें खड़ी हो गयीं। चारों ओर से सब कुछ जकड़ रहा था, दम घोंट रहा था, कुचल रहा था! विकास का कोई अवकाश नहीं था। दूर - दूर तक थीं सिर्फ प्रतिकूलताएँ! बस, संघर्ष करते रहो, जूझते रहो, सामना करते रहो।

किंतु प्रतिकूलताओं से हारना कान्ताबहन ने नहीं सीखा था। उन्होंने प्रतिकूलताओं को पार करने का पुरुषार्थ करके दिखाया। वे कहती हैं, "उस कुचलते दबाव और साँस घोटनेवाले वातावरण से मुक्ति पाने के लिए मन तड़प रहा था। इस निम्न माने जानेवाले चोले के भीतर से कोई शक्ति जागी, मालूम नहीं कैसे, लेकिन दृढ़ संकल्प कर लिया। इस मानव जनम को यों व्यर्थ नहीं जाने दूँगी। लड़ूँगी, पूरी दुनिया से लड़ूँगी। चाहे जितनी छीछालेदर हो, झुकूँगी नहीं। मानव की तरह जीऊँगी।"

हार न मानने का संकल्प और जान की बाजी लगाकर आखिरी दम तक लड़ने की तैयारी – कान्ताबहन के व्यक्तित्व की विशेषता है। जिन्दगी में बाद में जब प्रतिकूलताओं से मुक्ति पा ली थी, तब शारीरिक प्रतिकूलताओं ने धर लिया। एक के बाद एक बीमारियों का हमला होता रहा; और बीमारियाँ भी कैसी हैं? कैन्सर,

पेन्क्रीआईटीटस, डायबिटिज और हृदय रोग। साथ ही स्लिप डिस्क, फ्रेक्चर जैसी अनेक छोटी-बड़ी तकलीफें! फिर भी कान्ताबहन ने कभी हार नहीं मानी। बड़ी-से-बड़ी बीमारी में या अतिशय शारीरिक तकलीफ में भी उन्होंने बिस्तर नहीं पकड़ा। उनके बुलंद पुरुषार्थ और उज्ज्वल पराक्रम टूटते शरीर के बावजूद चलते रहे–इतना नहीं, अधिक ऊँचे पहुँचते रहे।

अर्नेस्ट हेमिंग्वे ने अपनी नोबल पुरस्कार विजेता कथा-**'ओल्ड मेन एण्ड द सी'** में एक जबर्दस्त वृद्ध मच्छीमार के मुँह से प्रचण्ड पौरुष को स्वर दिया है, "Man can be destroyed not defeated"–मनुष्य का नाश किया जा सकता है, उसे पराजित नहीं किया जा सकता। मनुष्य के अदम्य आत्मबल की यही खूबी है।

''चाहे जैसी भी गत बने, झुकूँगी नहीं। मानव की तरह जिऊँगी''–कान्ता के इस दृढ़ संकल्प की गूँज भी ऐसी ही थी। सतत संघर्ष और अदम्य संकल्पबल–यही कान्ताबहन के जीवन के खास पहलू रहे।

संघर्ष की ऐसी पृष्ठभूमि में खिले उनके पुरुषार्थ और पराक्रम अधिक ही दीप्तिमान दीखते हैं। घर छोड़ा, पढ़ाई की, आत्म-निर्भर हुई। अनेक क्षेत्रों मे कुशलता प्राप्त की। शिक्षिका बनीं, वाइस प्रिंसिपल के ओहदे पर पहुँचीं।

जिन्दगी में फिर एक जबर्दस्त मोड़ आया। विनोबाजी के आंदोलन में कूद पड़ीं। गुजरात की ही नहीं, पूरे देश की आदरणीय कार्यकर्ता बनीं। संस्थाओं में और सार्वजनिक जीवन में मंत्री, अध्यक्ष आदि जिम्मेदारियाँ अच्छी तरह निभायीं। जो भी काम हाथ में लिया, उसे जी-जान से किया। 'भूमिपुत्र' के ग्राहक बनाने हों या साहित्य घर-घर पहुँचाना हो, या फिर फण्ड इकट्ठा करना हों, हर काम को तूफान की तरह व्यापक रूप से करके दिखाया।

आंदोलन मन्द होने लगा, तब फिर जीवन में एक मोड़ आया। अधेड़ उम्र में एक पिछड़े हुए आदिवासी क्षेत्र में जा बैठीं और अपनी महान् कार्य-शक्ति का फिर से परिचय दिया। मानो एक अखंड सेवायज्ञ ही शुरू हुआ। और तभी एक-के-बाद-एक अनेक बीमारियों का आगमन भी होता गया। फिर भी काम करने की लगन और तीव्रता कम नहीं हुई, बढ़ती रही। ऐसी पराक्रमशीलता कान्ताबहन के जीवन का मुख्य पहलू है।

जो सेवाकार्य हुआ, वह भक्ति भाव से भरपूर साधना रूप में हुआ। अंतरंग समूह के साथ सहजीवन की भी साधना चली। हार्दिक और आंतरिक विकास होता रहा। अनायास ही भक्तिमार्ग की साधना होती रही। उस क्षेत्र में कदम आगे बढ़ते

गये तथा अनेक अद्वितीय आध्यात्मिक अनूभूतियाँ हुईं।

कान्ताबहन कहती हैं, "रामनाम मुझे बचपन से प्रिय था। श्वासोच्छ्वास की तरह उससे मेरा संबन्ध था। बीच में कुछ समय तो ऐसा आया कि रामनाम के अलावा अन्य सब बेमानी लगने लगा, किंतु विनोबाजी ने मंत्र दिया – '**हृदय में राम, मुख में नाम, हाथ में काम**'। यह मंत्र मेरा मार्गदर्शक बना।"

हाथ से होनेवाले विविध कामों के साथ-साथ हृदय में राम बसा रहे, यह परम साधना है। ऐसी साधना भी कान्ताबहन के जीवन का एक प्रमुख पहलू है।

इस तरह कान्ताबहन के जीवन का इतिहास संघर्ष, पुरुषार्थ-पराक्रम और साधना का इतिहास है। एक साधारण व्यक्ति अपने संकल्प बल से और निःशेष पुरुषार्थ से कहाँ पहुँच सकता है, उसकी यह कथा है। "तू स्त्री का निम्न चोला लेकर जन्मी है" – ऐसी हीन भावना जिसे जन्मघूँटी में पिलाई गयी हो, वैसी अबोध लड़की उस हीन भावना का शिकार हुए बिना अपनी आत्मशक्ति के दर्शन कराती है, इसकी कथा रोमांचक है।

हमारे इस पुरुष समाज में अपनी जिन्दगी को विशिष्ट बनाने के लिए और अपना माथा ऊँचा रखकर जीने के लिए किसी भी स्त्री को दृढ़ आन्तरिक शक्ति की जरूरत पड़ती है। इस विषय में कान्ताबहन के निरीक्षण बारीकी से समझने लायक हैं। उनके ये अवलोकन पुरुषों को गहरे आत्म निरीक्षण के लिए विवश करते हैं।

कान्ताबहन कहती हैं, "...और फिर भी स्त्री के इस घटिया चोले की याद अक्सर पुरुषवर्ग मुझे करवाता रहा है। इस पुरुष–प्रधान समाज में पुरुष का अहं अकल्पनीय छल स्वरूपों में मुझे बींधता रहा है। समकक्ष साथियों में भी स्त्री के विचार को समकक्ष नहीं माना गया। आत्म-निर्भर स्त्री को भी किसी न किसी बैसाखी की जरूरत है ही, यह बात घुमा-फिराकर कहने के लिए सभी तत्पर रहते हैं।"

हर पुरुष इस बारे में अपने आपको जाँचे। बातें बड़ी सूक्ष्म हैं। जो पुरुष ऐसा मानते हैं कि वे स्त्री-पुरुष समानता के संपूर्ण हिमायती हैं, वे भी जाने-अनजाने इन बातों में चूक जाते हैं। कान्ताबहन और अधिक सूक्ष्मता की ओर ले जाती हैं –

और यदि स्त्री अकेली हो, किसी मुसीबत में हो तो उसे सहायता करने के

अनेक नाटक रचकर पुरुष अपनी सर्वोपरिता सिद्ध करने का प्रयत्न करेगा ही। स्त्री मित्र रूप में नहीं, आश्रित-लाचार न सही, तो भी अहसानमंद रहे तो पुरुष का सूक्ष्म अहम् संतुष्ट होता है।

समस्त पुरुष-समाज के लिए यह एक चुनौती है—स्त्री को समकक्ष मित्र के नाते स्वीकारने की तैयारी है? **'दोयम चोले'** की अपनी दास्तान में कान्ताबहन आगे जो कहती हैं, वह स्त्री-पुरुष सभी के हृदय को छूनेवाली बात है—

"विनोबाजी के पास दीक्षा लिये भी आज साढ़े तीन दशक होने आये। वह 'दोयम चोले' वाली बात तो कब की बिसर गयी। फिर भी सामाजिक क्षेत्र में पुरुष के सूक्ष्म अहम् का निराकरण हो गया है, ऐसा नहीं कह सकते। अभी भी—'स्त्री की बुद्धि में तो धूल'—ऐसे मिथ्या वचन कानों में पड़ जाते हैं। किन्तु अब विद्रोह के बदले उनका बचकानापन देखकर हँसी आती है, दया आती है। ऐसी 'अधजल गगरी—' का क्या जवाब देना, ऐसा लगता है। यह चोला इसका हो या उसका, महिमा तो इसके भीतर बसनेवाले की है।"

ऐसी **'भीतर की महिमा'** वाली बात कहने की पात्रता जिन कान्ताबहन ने प्राप्त की है, विकसित की है—ऐसी व्यक्ति का कोई नहीं रोकनहार!

३
तुमुल संघर्ष

कान्ताबहन के पिता का नाम था चतुरभुज जमनादास शाह। माता का नाम मंगलाबहन उर्फ कमलाबहन। माता-पिता दोनों खेडा जिले के थे। पिता का गाँव पेटलाद और उसी के पास माता का गाँव था रूणज। दोनों नागर बनिया जाति के थे।

पिताजी रंग-रूप से साँवले थे। नीची कद-काठी, उग्र स्वभाव और शंकाशील मन। कामकाज में प्रामाणिक और निष्ठावान थे। कर्जदार न बनना, उनका पक्का नियम था।

दादा बचपन में ही चल बसे। माँ ने अपने तीनों बेटों को बड़े कष्ट से पाला। वे दूसरों के घरों में आटा पीसतीं, बर्तन माँजतीं और अनेक छोटे-छोटे काम करतीं। चतुरभुज सबसे बड़े थे। सातवीं तक पढ़े थे। माँ की ऐसी कमर-तोड़ मेहनत उनसे देखी न जाती, इसलिए माँ के लाख मना करने पर भी अपना गाँव छोड़कर कमाई करने बम्बई चले आये। पाँच रुपये मासिक पर नौकरी आरंभ की। लाज में खाते, फुटपाथ पर सोते। हर महीने माँ को दो रुपये का मनीआर्डर करते। धीरे-धीरे जब सब ठीक चलने लगा, तब उन्होंने अपने दोनों भाइयों को भी बम्बई बुलाकर नौकरी दिलवा दी। माँ बयालीस वर्ष की कम उम्र में दमे के रोग से चल बसीं।

पिताजी मलमल की धोती, लम्बा काला कोट और पाँव में बूट-मोजे पहनकर बरस-दो बरस में जब कभी बम्बई से वतन जाते तो बम्बई के इस कमाऊ जवान का बड़ा रुवाब पड़ता, ऐसा पिताजी के मुँह से सुना था। लड़का अच्छा है, मेहनत करनेवाला है, यह देखकर रूणज के छोटालाल ने अपनी बड़ी लड़की मंगला का उससे ब्याह कर दिया।

कान्ताबहन की माँ बहुत गोरी, सुन्दर, पिताजी से कुछ ऊँची और उम्र में दस

वर्ष छोटी थीं। गोरा रंग, नाजुक नक्श, सुदर्शन चेहरा देखकर लोग कहते – **'अंधे के हाथ बटेर लग गयी।'** पिताजी का माँ पर बड़ा पहरा रहता। उनके मन में हमेशा डर रहता कि उनकी सुन्दर पत्नी पर और कोई लट्टू न हो जाये। पत्नी को सदैव अपने दबाव में रखते। इसलिए माँ हमेशा पिताजी से डरती रहीं।

माँ का अपना बचपन ननिहाल में बीता था। वे स्वभाव से काम करनेवाली और निर्भीक थीं। चोर-डाकुओं का या अकेलेपन का उन्हें कभी डर न लगता। उनकी शिक्षा तो दूसरी तक ही हुई थी, लेकिन उन्हें पढ़ने का बड़ा शौक था। कहानी-उपन्यास पढ़ती, रामायण-महाभारत पढ़ती, नया-नया जो भी हाथ आता पढ़ लेती। वृद्धावस्था में भी उनका यह शौक बना रहा।

माँ खाने-पीने की भी शौकीन थीं। रसोई में, घर के कामकाज में उनका खूब मन लगता। बड़ी, पापड़, सेव, अचार सब स्वयं घर में बनाती। कपड़ों का भी खासा शौक था। बड़ी उम्र में भी साड़ी-ब्लाउज सब अप-टु-डेट चाहिए। मैचिंग ठीक होनी चाहिए। जीवन के प्रति आशावादी थी। किन्तु थी बिलकुल पुराने विचारों की। बड़ी शक्की, कच्चे कानों की, पेट में कोई बात टिकती नहीं। यहाँ की वहाँ लगाई-बुझाई भी कर लेती।

ब्याह के बाद माँ बम्बई आयी। बाद में पिताजी नौकरी छोड़कर परदेशी कपड़े की दलाली करने लगे। अच्छी कमाई होने लगी। माँ के लिए सोने के गहने बनवाये, अपने लिए सोने की करधनी बनवायी। तीज-त्योहार के दिन, या शादी-ब्याह में धोती पर उस करधनी को पहनकर जाते। भविष्य की सोचकर सोने के रूप में बचत करना अच्छा है, ऐसा वे मानते थे। बाद में मुसीबत में इस सोने का उपयोग भी हुआ था।

कान्ता का जन्म शरद पूनम की प्रतिपदा ता० ८-१०-१९३० को हुआ। पिताजी तब बम्बई के उपनगर घाटकोपर में रहते थे। उनकी चार संतानें हुईं – सबसे बड़ा मनहर, फिर कान्ता, फिर हरकिशन (जो १० वर्ष की उम्र में गुजर गया) और अंतिम सुशीला।

इन्हीं दिनों वे घाटकोपर से कांदिवली रहने गये। बाद में पिताजी ने तीन कमरोंवाला मकान दहिसर में बनवाया और वहाँ रहने लगे। दहिसर गये, तब कान्ता की उम्र करीब तीन वर्ष की थी।

घाटकोपर या कांदिवली की कोई बात तो कान्ताबहन को याद नहीं है किंतु

अपनी माँ से उन्होंने कांदिवली का एक प्रसंग अनेक बार सुना था। माँ उस बात को याद करके, उत्साह से सुनाती। उनके ही शब्दों में लिख रहा हूँ–

"तब हम कांदिवली में शक्करवाली चाली में रहते थे। कान्ता को पालने में सुलाकर मैं जरा पड़ोस में गयी थी। दरवाजा यों ही मोड़ दिया था। देवीजी जागी होंगी। पालने से कूदकर बाहर निकल आयीं। प्यास लगी होगी। घासलेट की शीशी उठायी और गटगटाने लगी। खेल ही खेल में दरवाजे की चिटखनी अंदर से बंद कर दी। मैं लौट कर आयी तो देखा कि देवीजी जमीन पर लोट लगा रही हैं। दरवाजा खोलने गयी तो वह भी अंदर से बन्द। खिड़की से जोर से पुकारा – 'कान्ता, दरवाजा खोल, दरवाजा खोल'। किन्तु यह तो पेट में घासलेट की वजह से बेचैन, घबराकर रोने लगी। मैं कहूँ, 'दरवाजा खोल' तो रोती-रोती बड़बड़ाने लगी – 'खोलूँ ना, कैसे खोलूँ, आता नहीं, आता नहीं' — मैं भी घबरा गयी। आखिर एक बच्चे को रोशनदान से उतारा और दरवाजा खुला। रोती हुई कान्ता को गोद में लिया। नमक का पानी पिलाकर उलटियाँ करवायी। ऐसे थे इस देवी के पराक्रम!"

कान्ताबहन को बचपन की जो बातें याद हैं, वे दहिसर की हैं। दहिसर बोरीवली के पास बसा हुआ उपनगर है। आज तो दहिसर खूब ही विकसित हो गया है। किंतु साठ वर्ष पहले बिलकुल सुनसान था–एकदम जंगल जैसा। न रास्ते, न बिजली, न पानी के नल, न कोई पास-पड़ोस। रात को तो कलेजा काँप जाये। अंधेरा होते ही दरवाजे-खिड़की बन्द करके अन्दर घुस जाते। तब लोकल ट्रेनें भी बिजली से नहीं चलती थीं–एंजिनवाली छुक-छुक गाड़ी थी। स्टेशन था बिना प्लेटफार्म का। दिन में दो-चार बार गाड़ी विरार से बोरीवली जाती और बोरीवली से विरार। कान्ताबहन सुनाती हैं–"दो चार दिन बाद माँ कान्ता को गोद में लेकर सामान खरीदने बोरीवली जाती। प्लेटफार्म तो था नहीं। डिब्बे की सीढ़ी चढ़कर ही गाड़ी में प्रवेश होता। माँ खासरूप से गार्ड के पासवाले डिब्बे में चढ़तीं। गार्ड नीचे उतरता। मुझे अपने हाथों में थामे रखता और माँ के डिब्बे में चढ़ने पर मुझे माँ के हाथों में देता। गार्ड बड़े स्नेह से यह सेवा बजाता। आज तो इस बात पर विश्वास करना भी मुश्किल लगता है।

तीस का दशक था वह। स्वतंत्रता आंदोलन जोरों पर था। गांधीजी ने स्वदेशी का नारा लगाया था। परदेशी कपड़ों की होलियाँ जलती थीं। परदेशी कपड़ों का बहिष्कार होने लगा, इसलिए उस कपड़े का व्यापार ठप्प होने लगा। इसका सीधा

परिणाम कान्ता के पिताजी पर पड़ा। वे परदेशी कपड़ों की दलाली करते थे। उनका धंधा ठप्प हो गया। खासी बेकारी छा गयी। इसलिए कान्ता के जन्म के बाद परिवार को भीषण गरीबी का सामना करना पड़ा।

पिताजी का सिद्धान्त था–कभी किसी के आगे हाथ नहीं पसारना। अपनी चादर देखकर पाँव पसारो। अब तो कान्ता के चाचा व्यापार करने लगे थे और उनकी आर्थिक स्थिति काफी अच्छी थी। किन्तु पिताजी ने कभी उनसे कुछ माँगा नहीं। बहुत ही कतरब्योंत करके चलाना पड़ता था। वे हमेशा कहते कि किसी भी चीज के बिना जीना आना चाहिए। माँ को दूध की जरूरत होती तो उसे पावभर दूध देते, लेकिन स्वयं बिना दूध के ही रहते।

बचपन का एक दृश्य कान्ताबहन को याद है–पिताजी ने माँ से गहने माँगे बेचने के लिए। दोनों के बीच खासी कहासुनी हुई। माँ रोने-धोने लगी। कुछ दिन वातावरण तंग रहा। दोनों में बोल-चाल बन्द रही। आखिर एक दिन माँ ने गहने की पोटली गुस्से में पिताजी के सामने फेंक दी। वह दृश्य अभी भी मेरी आँखों में तादृश्य है। पिताजी अक्सर कहते रहे कि हालात सुधरेंगे तो फिर बनवा दूँगा। किन्तु न कभी हालत सुधरी, न कभी माँ के गहने फिर बने।

इस तरह कान्ताबहन को बचपन में बड़ी गरीबी का सामना करना पड़ा। खाना-पीना, पहनना-ओढ़ना हर जगह कतरब्योंत करनी पड़ती। बीच में तो कई महीनों तक रोज सिर्फ खिचड़ी और मूली के पत्तों की रसेदार सब्जी से काम चलाना पड़ा।

उन दिनों की बात कान्ताबहन याद करती हैं,– ''कई महीनों से खिचड़ी और मूली की भाजी खा-खाकर उकता गयी थी। एक तरकीब सूझी। बोरीवली की अनाज-गल्ले की कई दुकानों में घूम-घूम कर चौलाई के नमूने इकट्ठे किये। तेरह-चौदह पुड़िया इकट्ठी हो गयी होगी। उस जमाने के दुकानदार कुछ उदार ही थे। नमूना भी दिल खोलकर देते। नमूने की चौलाई के जादू से उस दिन मूली की भाजी से मुक्ति मिली।''

जहाँ दो जून खाना ही नसीब न हो, वहाँ स्कूल के बस्ते के साथ नाश्ते का डिब्बा कहाँ से हो? घंटी बजती, रिसेस होती। बाकी सारे बच्चे डिब्बा खोलकर नाश्ता करते या अपने पैसों से कुछ खरीद खाते। कान्ता ताकती रहती। आज भी उसकी आँखों के सामने वह दृश्य ताजा है, ''मेरी एक सहेली थी पुष्पलता। अच्छे घर की। रोज कुछ न कुछ खरीदकर खाती–पकौड़ी, दही बड़े, भेल, पानीपुरी --

कभी मैं भी उसके पास जाकर खड़ी हो जाती। कभी कभार वह मुझे एक पानीपुरी देती। मैं एकदम धीरे-धीरे, चबाचबाकर उसे निगलती, जिससे उसका स्वाद काफी देर तक मुँह में बना रहे। मुझे पानीपुरी बहुत अच्छी लगती।''

स्कूल था बोरीवली में। ट्रेन का पास लेने के पैसे तो पिताजी के पास थे नहीं। इसलिए रोज दहिसर से बोरीवली दो मील चलकर जाना-आना पड़ता था। कभी आलस आये, तबियत नरम हो अथवा देर हो जाये या मन हो जाये तो सहेलियों के साथ ट्रेन में बैठ जाती, अलबत्ता बिना टिकट ही।

ऐसा एक प्रसंग याद करती हैं कान्ताबहन – ''ट्रेन से हम दहिसर उतरे। उस दिन स्टेशन पर विशेष चेकिंग चल रही थी। आठ-दस टिकट चेकर जहाँ-तहाँ खड़े थे। हरएक का टिकट-पास जाँच रहे थे। मेरी तो धड़कन ही रुक गयी। इन सहेलियों के सामने में पकड़ी जाऊँगी तो इन सबको अपनी शकल कैसे दिखाऊँगी? मन ही मन राम नाम जपती रही, भगवान् को मनाती रही – हे प्रभु, इस बार इज्जत बचा दे, फिर कभी बिना टिकट गाड़ी में नहीं चढ़ूँगी। और मालूम नहीं कैसे टिकट-चेकर की नजर बचाकर मैं स्टेशन से बाहर निकल गयी। मेरी घबराहट कम हुई।

स्कूल की किताबें, नोट बुक वगैरह भी पिताजी आसानी से खरीद नहीं सकते थे। किताबें तो जैसे-तैसे पुरानी मिल भी जातीं, लेकिन नोटबुक कहाँ मिलती? पुरानी नोटबुक के कोरे पन्ने फाड़कर या एक तरफ के कोरे पन्ने जोड़कर जैसे-तैसे काम चलाने लगी। एक बार 'तुम्हारी नोट से निबंध उतारना है' यों कहकर चार-पाँच सहेलियों की नोटबुक ले आयी। फिर उनमें से बीच की पिन खोलकर, पाँच-दस-पंद्रह कोरे पेज निकाल लिये। उनसे मेरी नयी नोटबुक बन गयी। किन्तु एक सहेली के ध्यान में आया कि उसकी नोटबुक इतनी पतली कैसे हो गयी! मुझे धमकाने लगी। आखिर मैंने सही बात कह दी। अन्य सहेलियों को भी मालूम हो गया। मैं तो शर्म से गड़ गयी। हे भगवान, फिर से स्कूल में पाँव कैसे रखूँ! बेहद लज्जा आयी – ''मैंने निश्चय किया कि फिर कभी ऐसा शर्मनाक काम नहीं करूँगी।''

इन सारी घटनाओं की छाप बाल-मानस पर पड़ती रही। साथ ही साथ भय की ग्रन्थि भी मजबूत होती गयी। दहिसर-बोरीवली के रास्ते पर तब सवारियों की इतनी आवाजाही नहीं थी। रास्ता बिलकुल सुनसान होता। ऐसे रास्ते से अकेले जाना। रास्ते में भैसों का तबेला पड़ता। वहाँ मोटे-तगड़े उनके रखवाले होते।

उनसे बड़ा डर लगता। धड़कन बढ़ जाती। लगता, अभी कोई पीछे से दबोच लेगा। लेकिन **'निर्बल के बलराम'।**

उसके बाद एक नाला आता। उस पर टूटा-फूटा सा पुल था। नीचे से रोज पानी बहता। मन में ऐसा डर समा गया था कि पुलिया टूट गयी तो? रात को कभी सपना भी आता कि वह पुलिया टूट गयी और मैं पानी में डूब गयी।

पुलिया के बाद बोरीवली का श्मशान आता। कभी चिता जलती होती, मरघट में लोग बैठे होते। कभी कोई न होता, चारों ओर भयानक सन्नाटा। किसी अनजान डर के मारे उस जगह को दौड़कर पार करने की इच्छा होती।

दूसरा महायुद्ध शुरू हुआ तब इस रास्ते सैनिकों के डेरे लग गये। एक और नया भय। कान्ताबहन के शब्दों में—वहाँ से गुजरते वक्त बिना चूके **रामनाम का रटन** करने लगती। अक्सर ही सुनने में आता—आज दो लड़कियों को उठाकर ले गये, उन पर बलात्कार किया गया। 'बलात्कार' माने क्या, यह तो समझती नहीं थी। कोई कहता गंदा-गंदा। कोई कहता-लड़की को पकड़कर अपनी बीवी बना लेते हैं। कुछ दिन रखते हैं और फिर धकिया देते हैं। यह सब सुनकर मुझे तो बुखार चढ़ जाता। स्कूल जाने से इन्कार कर देती। लेकिन फिर उसी रास्ते जाना तो पड़ता ही।

दहिसर में मकान तो बना, लेकिन कई वर्षों तक पैसे के अभाव में वहाँ संडास नहीं बन सका। रास्ते में, खुले में जाना पड़ता। इसलिए रात के अंधेरे में जाने की आदत कर ली थी। किन्तु कभी और समय जाना पड़े तो बड़ी मुसीबत होती। ट्रेन आती-जाती, या जान-पहचानवाले रास्ते से गुजरते, तब भारी शर्म आती। कभी संडास ही रुक जाती। कभी फ्राक नीचा करके झट उठ जाना पड़ता, कभी यों ही पानी गिराकर घर की ओर भागना पड़ता।

इस तरह डर और घबराहट की एक भय-ग्रन्थि जकड़ती गयी। उसकी पकड़ बाद में भी कई वर्षों तक परेशान करती रही। ठेठ ईश्वरी कृपा का स्पर्श हुआ, तभी पूरी मुक्ति मिली उससे।

इन सबके साथ ही भेदभावपूर्ण परवरिश के संस्कार मिले। लड़के-लड़की का भेद माँ के मानस में पत्थर की लकीर की तरह दृढ़ था। बेटा तो घर का दीपक, वंशावलि का विस्तार करनेवाला। उसका लालन-पालन तो लाड़ से करना ही चाहिए। बेटी तो विष की पुड़िया—पराया-धन! दूध-घी भला कहीं बेटी को खिलाया जाता है? अच्छा खाना, अच्छे कपड़े बेटी को देने की जरूरत नहीं।

उसका बाहर घूमना-फिरना भी शोभा नहीं देता। भाई बैठा ठाला चाहे मक्खियाँ मारे, लड़की की जात कैसे बैठी रह सकती है? भाई भले ही हुकुम चलाये, बहन को सब सह लेना चाहिए।

बेटे-बेटी के पालन में माँ बहुत भेद करती। नाश्ते में चने अकेले भाई को मिलते। ऊँची पटरी पर, जहाँ किसी का हाथ न पहुँचे, वहाँ काँच की बरनी में चने रखे जाते। कान्ता का बहुत मन होता चने खाने का। एक दिन घर खाली देखकर पराक्रम किया—जैसे-तैसे ऊपर चढ़कर बरनी हाथ में ले ली। बरनी का ढक्कन हाथ से नीचे गिर गया और चूर-चूर हो गया। चने तो खाने को मिले नहीं, किन्तु उस दिन माँ के हाथ की मार खूब खायी।

बेटे को घी पसन्द नहीं था, फिर भी माँ उसके भात में छिपाकर घी परोसती। कान्ता को घी बहुत पसन्द था, लेकिन उसे कभी न मिलता। भात भी कान्ता को प्रिय था। लेकिन चावल की राशनिंग शुरू हुई, इसलिए वे महँगे हो गये। कान्ता का भात बंद हो गया। भाई को रोज परोसा जाता। उसके लिए नये-नये कपड़े बनते, कान्ता को दो जोड़ी में बसर करना पड़ता।

एक बार स्कूल से ट्रिप जानेवाली थी। एक-एक आना भरना था। भाई को तो एक आना मिला, कान्ता बेचारी आँसूभरी उदास देखती रही। उस एक आने का भेदभाव कान्ता के कलेजे को बींध गया।

कान्ता ११-१२ वर्ष की हुई कि उसका फ्राक पहनना बंद हुआ। लहँगा-ओढ़नी धारण करनी पड़ी। चोटी के बदले जूथ बनाना पड़ा। पूरे स्कूल में उसका वेष विचित्र दीखता।

एक बार स्कूल में खेल-कूद प्रतियोगिताएँ थीं। कान्ता हमेशा अव्वल आती। किन्तु अब लहँगा-ओढ़नी पहनकर दौड़े कैसे? फ्राक तो एक भी नहीं था, किन्तु उसकी एक शिक्षिका के मन में कान्ता के लिए बड़ा स्नेह था। उन्होंने किसी दूसरी छात्रा का स्कर्ट-ब्लाउज उस दिन के लिए कान्ता को दिलवाया। कान्ता प्रतियोगिता में तीन इनाम जीत लायी। उस वक्त का रोमांच कान्ताबहन को आज भी रोमांचित करता है। वे कहती हैं,—"वे शिक्षिका तब मुझे देवी जैसी लगीं। और स्कर्ट-ब्लाउज तो उसके पहले कभी जिन्दगी में पहने नहीं थे। इसलिए उस आनन्दभरे रोमांचित घड़ी को अधिक देर तक थामे रखने के लिए प्रतियोगिता के बाद जितनी देर संभव हुआ, मैंने स्कर्ट-ब्लाउज पहने रखा।"

लड़की की जात! इसलिए माँ ने बहुत नन्हीं उम्र से ही कान्ता के सिर पर घर

के काम का बोझ डाल दिया। घर में नौकर रखने का तो सवाल ही नहीं था। सारा काम स्वयं ही करना होता था।

कान्ता की भोर तो जल्दी हो जाती। उठते ही कुएँ से पूरे घर का पानी भरना। चूल्हा जलाकर पानी गरम करना। फिर पूरे घर में झाड़ू बुहार कर सफाई करना। रात के जूठे बर्तन पड़े हों तो धमेले में भरकर पीछे बहती नदी किनारे जाकर माँजना। तब तक पानी गरम हो जाता। उसे पिताजी, भाई सबके नहाने के लिए बाल्टी में निकालकर मोरी में रखना। सबका नहाना हो जाय, तब कपड़ों को गरम पानी में भिगोकर, बाल्टी सिर पर उठाकर नदी किनारे पहुँचना। कपड़े धोने पर उन्हें झटपट सुखाकर, जैसे–तैसे दो कौर गले के नीचे उतारती। फिर जितने जूठे बर्तन होते, उन्हें माँजती। दौड़ती-भागती बस्ता उठाकर बोरीवली का रास्ता पकड़ती।

शाम को घर लौटने पर फिर काम में लग जाती। रात को रोज खाने में बाजरे की रोटी बनानी होती। सब्जी वगैरह तो माँ घर में बना लेतीं, किन्तु रोटी तो बरामदे में चूल्हा जलाकर, बाहर कान्ता को ही सेकनी पड़ती। बाहर अंधेरे में डर लगता। चारों ओर जंगल ही तो था। बिजली भी नहीं। टिमटिमाते दीये और चूल्हे के उजाले में घरभर के लिए रोटियाँ सेंकती। ज्यों-ज्यों रोटियाँ तैयार होतीं, अंदर लोग खाना खाते।

शनि-रवि की छुट्टी में गोबर इकट्ठा करने के लिए भटकती। फिर उनकी गोबरी थापती, कोयले का चूरा उनमें मिलाकर अंगीठी में जलाने के लिए उनसे गोले बनाती। लकड़ी की पतली खपचियाँ इकट्ठी करनी होती, वरना चूल्हा कैसे जलता। जंगल में जहाँ भी लकड़ी की कटाई हुई हो, वहाँ से पतली चिपटियाँ टोकनी में इकट्ठे करके लाती। बरसात के लिए भी जलावन गर्मियों में ही जमा करना पड़ता।

एक बार जंगल में एक साथ काफी लकड़ी की कटाई हुई थी। बहुत सी छीजन निकली थी। सीमेंट की खाली बोरी लेकर कान्ता वहाँ पहुँच गयी। झटपट छीजन बोरी में भरती गयी और बोरी घर के पिछवाड़े दालान में खाली करती गयी। तीन-चार दिन तक उसका यह अभियान चला। लगभग छः-सात महीने चले, इतनी लकड़े की छीजन इकट्ठी कर ली थी कान्ता ने।

हर महीने मासिक के दिनों में चौके में छूने की मनाही थी, किंतु विशेष काम निपटाने होते थे। एक साथ अनाज साफ करके बीन कर रखना। साफ-सफाई करना, रोज काम न आनेवाले भंडार के बड़े-बड़े बर्तन चमकाकर रखना।

आज उस जमाने को याद करके कान्ताबहन कहती हैं– "भला हो मेरे माँ-बाप का, जिन्होंने मुझे बचपन से तनतोड़ मेहनत करने की स्थिति में रखा। उस वजह से मैं पक्की हो गयी। आलस कभी मेरे पास फटका नहीं। झटपट सब करना होता था। इसलिए मेरे काम में गति शुरू से ही आ गयी। कोई भी काम हाथ में लूँ तो मुझे उस पंछी की केवल आँख ही दिखाई देती है। आसपास का सब भूल जाती हूँ। ध्येय पर दृष्टि स्थिर हो जाती है। बचपन से ही आदत पड़ गयी न! क्योंकि एकाग्रता के बिना तो एक के बाद एक इतने सारे काम पार न पड़ते। इसलिए जो काम हाथ में लेती हूँ, उसे पूरा किये बिना चैन नहीं पड़ता। बचपन से ही जिस तरह काम करना पड़ा, उसकी वजह से मेरा पिंड ऐसा गढ़ा गया। सच, मुझे कोई अफसोस नहीं है, माता-पिता के प्रति मेरे मन में कोई शिकायत नहीं है। आरामतलब जिंदगी मिली होती तो मैं कोई भी काम कैसे करती?

ऐसी काम करनेवाली बेटी, लेकिन फिर भी विष की पुड़िया ही न! इसे घर में कैसे रखें? इसे तो झटपट ससुराल भेजना ही होगा। इसलिए तेरह चौदह वर्ष की कच्ची उम्र में कान्ता का ब्याह कर दिया। इस बारे में कान्ताबहन कहती हैं–

"ब्याह माने? अच्छे-अच्छे कपड़े पहनना, उत्सव मनाना, किसी अनजाने व्यक्ति को पसंद आना -- ऐसा कुछ हल्का-हल्का याद है। विवाहित जीवन के बारे में तो कोई समझ थी नहीं। और ऐसी कोई समझ आये, उससे पहले एक दुर्घटना में उनकी मृत्यु हुई और मैं अपने वैवाहिक-जीवन से निपट कर फिर पिता के घर लौट आयी।"

इस तरह बचपन, किशोरावस्था और गृहस्थाश्रम सब कुछ पंद्रह वर्ष की उम्र में पूरा हुआ। वह सारा समय कठिन संघर्ष में बीता।

●

४

कठोर कृपा

जीवन-लीला बड़ी विचित्र है। कौन समझ सका है उसे? जन्म और मृत्यु के रहस्य को कौन जान सका है? हम कहाँ से आते हैं और कहाँ जाते हैं, किसी को खबर नहीं। जीवन के छोटे दौर में किससे कैसा नाता जुड़ेगा, इसका न कोई शास्त्र है, न गणित। कुछ रिश्ते यों ही झलक दिखाकर समाप्त हो जाते हैं। कुछ अनायास रोज-ब-रोज विकसित होते जाते हैं। कहा जाता है कि जन्म-जन्म के ऋणानुबन्ध होते हैं। जो भी हो, अभी तक इसकी थाह कोई नहीं पा सका।

अपने माता-पिता, भाई–बहन, पति इन सबसे कान्ताबहन के रिश्ते सतही साबित हुए–जल्दी ही काल ने उन्हें समेट लिया। माता-पिता का रिश्ता वैसे तो बना रहा, लेकिन प्रवाह पतित संयोग से ही। उनके जीवन में इस रिश्ते का खास महत्त्व नहीं रहा। उसकी जगह अन्य रिश्ते खूब खिले, फले-फूले और पूर्णता को प्राप्त हुए। खून के रिश्तेवाला परिवार अल्प-जीवी रहा। भावात्मक हार्दिक संबंधों का परिवार बढ़ता गया, गहरा होता गया।

पंद्रह-सोलह वर्ष की उम्र में ही बचपन, किशोरावस्था, गृहस्थाश्रम सब निपट गया। उस समय तो जरूर चोट लगी थी-ओह, कैसा दुर्भाग्य! मन को कुछ बींधता था। निराशा ने भी घेरा। लेकिन जाने कैसे वे दुःख के सागर में कभी इतना नहीं डूबीं कि इसे सर्वनाश समझ लें या जीने की इच्छा खत्म हो जाये।

दुःख में, हताशा में, थकान में कमी आत्महत्या का विचार मन में आया क्या? –मेरे इस प्रश्न के उत्तर में कान्ताबहन ने उस समय की अपनी मानसिक स्थिति को गहराई से याद किया, लेकिन आत्महत्या का विचार कभी आया हो, ऐसा उन्हें स्मरण नहीं। बल्कि हर परिस्थिति का सामना करके प्रयत्नपूर्वक डटे रहने का ही उनका स्वभाव रहा। अभी तक तो ज्यादा समझ थी नहीं। संघर्ष चलता रहता, विपरीत परिस्थितियों से जूझती रहती। लेकिन यह सब अधिकतर उसके

स्वभाव का सहज स्वरूप बनता गया। धीरे-धीरे एक सहजता आने लगी। समझदारी से, किसी खास दिशा में कदम बढ़ाने का सक्रिय प्रयत्न इसमें से झलकने लगा।

भूदान आंदोलन में नवजीवन की दीक्षा पाने के बाद कान्ताबहन हमेशा कहती रही हैं कि जो कुछ हुआ, मेरे लिए एक तरह दारुण अभिशाप नहीं, ईश्वर का कृपामय आशीर्वाद ही था। आज भी कभी कहती हैं—**'भलुं थयुं भांगी जंजाल, सुखे भजी शुं श्रीगोपाल'** (अच्छा हुआ जंजाल छूटा, अब प्रेम से भगवत भजन करेंगे)—ऐसी नरसिंह मेहता-जैसी स्थिति तब मेरी नहीं थी। किंतु आज यह सोचकर गद्गद हो जाती हूँ कि उन सारे झंझटों से मुक्ति पा गयी इसलिए ईश्वर को पा सकी। मैंने अपनी तरफ से तो इस झंझट से छूटने की कोई कामना नहीं की थी, फिर भी किसी अदृश्य शक्ति ने धक्के दे-देकर मुझे जंजाल से मुक्ति दिलवायी। इसे मैं ईश्वर की कृपा मानती हूँ।"

परिस्थिति की और परिस्थिति के हाथों कठपुतली जैसे रिश्तेदारों की कान्ताबहन के जीवन में महत्त्वपूर्ण भूमिका रही।

सबसे मुख्य थी माँ। माँ भी रुढ़ि ग्रस्त और पुराने ख्यालों की। बेटी को जहर की पुड़िया मानने के पक्के संस्कार थे उसके। अब तो 'करेला नीम चढ़ा—' बेटी विधवा होकर लौटी थी। इसलिए बिलकुल ही अभागन। कान्ता को बार-बार सुनाती—कलमुँही, कैसी दुष्ट डायन है अपने स्वामी को खा गयी। कान्ता सुनते-सुनते थक जाती तो कभी उसके मुँह से निकल जाता—मेरा भाई भी तो १० वर्ष की उम्र में मर गया, किंतु तुम्हें तो कोई कलमुँही नहीं कहता? चटाक से तमाचा पड़ता कान्ता के गालों पर—गालियों की बारिश और तेज हो जाती।

उठना-बैठना, घूमना-फिरना, बोलना-चलना सब जगह बंदिश और कठोर होती गयी। विधवा ऐसा नहीं कर सकती, विधवा वैसा नहीं कर सकती। पुरुषों के साथ हँसने-बोलने का तो सवाल ही नहीं। स्कूल में कोई सहपाठी तो क्या, कोई शिक्षक भी कान्ता के घर आये या उससे दो बातें करे, इसकी इजाजत नहीं थी।

एक बार पेटलाद गये थे। कान्ता के मौसी-मौसा वहाँ आये हुए थे। बैठक में कान्ता मौसाजी के साथ घड़ीभर बात करने बैठ गयी। बस, आसमान फट पड़ा! माँ चीखने लगी और अन्दर बुलाकर इतना डाँटा—"तुझे लाज-शरम है या नहीं! विधवा को कैसे बरतना चाहिए, जरा सीखो!"

एक दिन रास्ते में देवर मिल गया। कान्ता ने बस, कुशल-क्षेम पूछी—एकदम

साधारण बात! तभी वहाँ से कान्ता के मामा निकले। दोनों को बातें करते देखकर कान्ता की बाँह खींचकर, घसीट ले गये। घर पहुँचकर माँ और मामा ने इस बाल-विधवा को वैधव्य का कठोर पाठ पढ़ाया।

कान्ता यह सब समझ न पाती। उसके मन में विद्रोह जागता। अब क्या ऐसे ही जीना पड़ेगा।

एक दिन माँ ने चाय को लेकर ताना मारा–विधवा को भला चाय का कैसा शौक! बस, वह घड़ी और आज का दिन –कान्ता ने चाय ऐसी छोड़ी कि फिर कभी छुयी नहीं।

विधवा होने के बाद हाथ में काँच की चूड़ियाँ पहनने की तो मनाई थी–दोनों हाथों में एक-एक सोने की चूड़ी पहनती। एक दिन बर्तन माँजते समय चूड़ी ऊपर चढ़ाना भूल गयी। उसमें राख लग गयी, बर्तन से रगड़ भी लगी। माँ जोर से चिल्लायी – "यह सोना घिस रहा है! कुछ अक्कल है या नहीं? बड़ी आयी महारानी सोना पहननेवाली!" उसी क्षण दोनों चूड़ियाँ उतार कर दे दीं। फिर कभी कोई चूड़ी पहनी ही नहीं।

इस तरह विद्रोह धीरे-धीरे जागता रहा। अब तक तो सिर झुकाकर हर जुल्म सहन कर लिया था, लेकिन अब सिर उठने लगा था।

'राखना रमकडा' नाम की फिल्म लगी थी। घर के सब देखने गये। माँ भी गयी। किंतु विधवा कैसे जाये? कान्ता और किसी के साथ जाकर, छिपकर फिल्म देख आयी।

लड़की की जात को ज्यादा पढ़ाकर क्या करना है? थोड़ा-बहुत लिखना-पढ़ना जान ले काफी है–माँ रोज ही ऐसा कहती। किन्तु पिताजी कहते –पढ़ने दो, कुछ काम आयेगा। जब चौथी कक्षा पास हो गयी तो माँ ने बड़ी जिद पकड़ी कि कान्ता को स्कूल छुड़वा दो। लेकिन पिताजी ने कहा–कम से कम फाइनल –सातवीं कक्षा तक तो पढ़ने दो। माँ का झींकना चलता रहा, फिर भी कान्ता ने फाइनल कर लिया। पिताजी ने आठवीं में भी भरती करवाया था लेकिन बीच में ब्याह हो गया। आठवीं की परीक्षा ब्याह के बाद दी थी। किन्तु अब विधवा को कैसे पढ़ायें, स्कूल कैसे भेजें!

पिताजी जरा दूर की सोचने लगे थे। अपनी आर्थिक स्थिति भी जानते थे ही। यदि यह लड़की आत्म निर्भर न हुई तो इसका जीवन कैसे चलेगा? इसलिए माँ के

गाली-गलौज को दुर्लक्ष्य करके पिताजी की इच्छा से कान्ता ने एक वर्ष में कर्वे यूनिवर्सिटी से **मैट्रिक की परीक्षा** दी और उसमें उत्तीर्ण हुई।

पढ़ ली तो अब ट्यूशन क्यों नहीं कर सकती? ट्यूशन करने लगी। पन्द्रह रुपये में पहला ट्यूशन मिला। ओह, कितनी खुशी हुई थी उस दिन! अपनी पहली कमाई का कैसा अद्भुत रोमांच था!

कुछ भी नया सीखने का बड़ा उत्साह! हैंडीक्राफ्ट–हस्तकला का एक वर्ष का कोर्स किया। लेदर वर्क, वायर वर्क, पेपर वर्क, कार्डबोर्ड वर्क, क्ले वर्क, प्रिंटिंग वर्क–सब में कुशलता प्राप्त की और डिप्लोमा मिला।

बम्बई की रत्न चिन्तामणि हाईस्कूल में हैण्डीक्राफ्ट **टीचर की पार्ट-टाइम नौकरी** मिल गयी। ट्यूशन भी अब तो चार हो गये थे। सुबह आठ बजे खाना खाकर दहिसर से रवाना होती। ट्रेन से बोरीवली। वहाँ एक ट्यूशन। वहाँ से चल कर कांदिवली पहुँचती, वहाँ दूसरा ट्यूशन। कांदिवली से मलाड तक पदयात्रा, वहाँ तीसरा ट्यूशन। मलाड से ट्रेन पकड़कर बांद्रा होते हुए सायन, वहाँ चौथा ट्यूशन। सायन से ट्रेन में बोरीबंदर। वहाँ से चलकर पहुँचती रत्न चितामणि हाईस्कूल!

कान्ताबहन उस समय के अपने अनुभव के बारे में कहती हैं, अथक काम, मेरे लिए कोई नयी बात नहीं थी। सुबह से रात तक सतत काम चलता। किन्तु अब स्वतंत्रता का आनन्द था। पिंजरे से मुक्त पंछी का कलरव था। डुबकियाँ खाये बगैर, सिर को ऊपर रखकर समाज-सागर में तैरने का निश्चय था।

माँ को यह सब कतई पसन्द नहीं था। विधवा के पर कटने के बदले यहाँ तो नये-नये पर निकल आये थे। वे कुहराम मचाये रहती। यों तो पिताजी भी पुराने खयालों के ही थे, विधवा लड़की का बाहर घूमना उन्हें भी पसन्द नहीं था किन्तु क्या करते, उनकी आर्थिक लाचारी थी। कान्ता के पुरुषार्थ से घर में चार पैसे आने लगे, यह उन्हें अच्छा लगता। इसके अलावा बेटी के भविष्य की भी उन्हें चिन्ता रहती। बेटी आत्म निर्भर हो जाये तो अच्छा ही है।

लेकिन धीरे-धीरे माँ का गाली-गलौज और बिगड़ना-झगड़ना असह्य होने लगा। कान्ता परेशान हो गयी। आखिर पिताजी ने वहीं, दहिसर के तीन कमरों में से एक कान्ता के लिए अलग कर दिया। कान्ता अलग पकाने-खाने लगी। उस बित्तेभर के कमरे में भी उसे खूब खुलापन महसूस हुआ।

सुबह से शाम तक कमाने के लिए कष्ट करना पड़ता, और नया सीखना भी चलता। हिन्दी में **कोविद पास** किया। शिक्षिका का परवाना प्राप्त किया। तैरना सीख लिया। सायकल भी सीखनी चाहिए। दहिसर में चार-छह बहनों को इकट्ठा करके एक **महिला मंडल आरंभ** किया। कान्ता के वे दिन कैसे थे! तब वह महीनों तक दोपहर का भोजन दो आने के गाँठिये से निभाती। रात को घर लौटकर जब स्वयं पकाती, तब खाना नसीब होता।

राष्ट्रीय भावना के अंकुर भी हृदय में जागने लगे थे। स्कूल में एक आदर्श शिक्षक थे गुणवंतभाई तारकस! उत्तम पढ़ाते, साथ ही उत्तम भावनाओं का पीयूष पिलाते। व्यक्तिगत रुचि लेते। आँसू पोंछते, शाबासी देते, मार्गदर्शन करते, समस्या सुलझाते!

इन गुणवंतभाई ने ही कान्ता के मन में गांधीजी के बारे में, खादी के बारे में बीज बोये और उसकी भावना को दृढ़ किया। पहली ट्यूशन के पहले पन्द्रह रुपये हाथ में आते ही कान्ता ने खादी की पहली नयी-नवेली साड़ी खरीदी।

कान्ताबहन कहती हैं : "जीवन का वह एक अमिट सुखद क्षण था। खादी तब जो शरीर पर चढ़ी सो चढ़ी। और वह भी सदैव श्वेत-धवल ही। उसके बाद खादी के सिवाय और कुछ शरीर पर चढ़ा ही नहीं।"

विधि की कैसी विचित्रता! घर का वातावरण बिलकुल भिन्न! गांधीजी या खादी का उच्चार भी वर्ज्य! पिताजी कट्टर विरोधी थे। गांधीजी के 'स्वदेशी आंदोलन' ने ही तो उनका धन्धा चौपट कर दिया था। बिलकुल ही बरबाद हो गये थे वे। फिर कभी खड़े न हो सके' इसलिए गांधीजी तो उनके बड़े दुश्मन थे। उनका नाम सुनते ही गरजने लगते।

और उनकी नाराजगी भी कैसी? स्वतंत्रता आंदोलन का जमाना था। स्कूल में जब तब हड़ताल हो जाती। बच्चे स्कूल छोड़कर जल्दी घर लौट जाते। किन्तु कान्ता को तो वहीं बैठे रहना पड़ता। रोज स्कूल छूटने के समय घर लौटना होता वरना गांधीजी की हड़ताल की बात से उनका माथा गरम हो जाता और कान्ता की शामत आ जाती।

जिस दिन गांधीजी की हत्या हुई पिताजी बड़े खुश हुए। कान्ताबहन ने लिख रखा है, "गांधीजी की हत्या हुई, उस दिन हमारे घर में हलुआ बना था।"

ऐसे बाप की बेटी गांधी के रंग में ऐसी सराबोर हुई कि रोज चरखा कातती।

गांधीजी के काम पर उसने अपना जीवन न्यौछावर कर दिया। हर वर्ष लाखों रुपयों की गांधी की खादी बिक्री करने लगी। कौन-सा किसका ऋणानुबंध काम आया? कौन-सा रिश्ता मजबूत साबित हुआ?

जिस रिश्ते की नींव में ही खोट थी, अल्पजीवी था जो, उसके छूटने की घड़ी भी आ गयी। एक ऐसी घटना हुई कि कान्ता के **जीवन में आमूलाग्र परिवर्तन** आ गया।

एक परिचित का विवाह था सूरत में। कान्ता ने वहाँ जाने का तय किया। घर में तूफान मच गया। विधवा लड़की शादी में जायेगी? लोग क्या कहेंगे? चुल्लू-भर पानी में डूब मरना पड़ेगा। बा ने साफ मना कर दिया, पिताजी ने भी मना कर दिया नहीं, किसी हालत में नहीं जा सकती।

कान्ता के मन में आया कि अगर ऐसे ही दबती रही तो हमेशा दबे ही रहना पड़ेगा। खुद की कोई स्वतंत्रता नहीं रहेगी। इसलिए उसने विवाह में जाने का अपना आग्रह जारी रखा।

खासा विवाद हो गया। माता-पिता धमकी देने लगे—"अगर तू नहीं मानी तो तेरा गला घोंट देंगे, तुझे खत्म कर देंगे—भले ही फिर हमें जेल जाना पड़े। हम भी देखते हैं, कैसे घर के बाहर पाँव धरती है तू।"

कान्ता ने कहा—"मैं तो जाऊँगी, जाऊँगी, जाऊँगी।"

गुस्से में पिताजी विकराल हो गये। गरदन पकड़कर दबोचने लगे। गरदन पर, चेहरे पर खरोचें हो गयीं।

घसीट कर कमरे में पटक दिया और बाहर से ताला बन्द कर दिया। दो दिन तक कमरे में बन्द रखा।

बस, यह तो आखिरी प्रहार था। कान्ता का समूचा अस्तित्व विद्रोह कर उठा। नहीं, बस अब और नहीं। ऐसा जीवन कदापि नहीं। कान्ताबहन उस दिन के बारे में कहती हैं—"मैं किसी से पूछने नहीं गयी। किसी की सलाह नहीं ली। किसी से कोई पाठ नहीं पढ़ा। बस, मन ही मन मेरा निश्चय हो गया। अब इस घर के अन्नजल समाप्त हुए। इस परिवार से मेरा रिश्ता खत्म हुआ। अब सोचती हूँ तो बड़ा आश्चर्य होता है कि इतनी हिम्मत मुझमें कहाँ से आयी। यह शक्ति मुझे कहाँ से मिली? कहाँ जाऊँगी, कहाँ रहूँगी—कुछ पता नहीं। कभी कहीं बाहर रही नहीं

थी। दुनिया खास देखी नहीं थी। मेरा अकेली का क्या होगा, कुछ सोचा नहीं। बस, अब यहाँ नहीं रहना। यह घर अब छोड़ ही देना है।''

एक दिन एक छोटी-सी टिन की पेटी में दो जोड़ी कपड़े रखे। घर का दूसरा और कोई सामान नहीं लिया। बा-बापूजी से दृढ़ता से कह दिया, ''मैं घर छोड़कर जा रही हूँ।'' और चल पड़ी।

माँ-पिताजी तो अवाक् देखते रहे। घर के अन्दर दरवाजे के पास खड़े रहे। समाज के डर से बाहर भी न निकले। पिताजी इशारे से रोकते रहे, ''लौट आ! लौट आ!''

किन्तु कान्ता को पीछे मुड़कर देखना ही कहाँ था? मलाड में एक परिचित मगनभाई जोशी रहते थे। सीधे उनके घर पहुँची। अपनी कथा सुनायी। घर त्यागने का निश्चय सुनाया। एक रात वहाँ रही।

कान्ताबहन याद करती हैं उस रात को, ''वहाँ तो हृदय का बाँध टूट गया - बहुत रोयी, बहुत रोयी। रातभर सुन्न-सी बैठी रही।''

मगनभाई और उनके मित्र भक्तिभाई ने सब तरह से सोचा। बम्बई में लेमिंगटन रोड पर **भगिनी समाज का होस्टल** है। नौकरी करनेवाली, बिना घर-बार की, व्यावसायिक बहनों के रहने की व्यवस्था है। उस समय जयाबहन कानूगा भगिनी समाज की संचालिका थीं। भक्तिभाई कान्ताबहन को उनके घर ले गये।

जयाबहन अत्यन्त तेजस्वी स्नेहमयी बहन थीं। उनके दर्शन मात्र से कान्ता-बहन को शांति मिली। उन्होंने बड़े प्यार से बातें कीं, सारा कुछ पूछा। लेकिन उस होस्टल में १६-१७ बहनों के अलावा दूसरी कोई जगह नहीं थी।

जयाबहन ने कहा, ''बहन, कमरे तो सब भरे हुए हैं। तुम बाहर पैसेज में रहोगी?''

''हाँ, हाँ, जरूर रहूँगी। अगर आप मुझे वहाँ रहने दें तो जिन्दगीभर आपका उपकार नहीं भूलूँगी।''

और कान्ताबहन उस होस्टल में दाखिल हुईं। सात-आठ महीने बाहर पैसेज में रहना पड़ा, बाद में कमरे में जगह मिली।

छोटे से परिवार से निकलकर बड़े परिवार में यह पहला कदम धरा था उसने।

लगता था मानो छोटे परिवार में से धकिया कर कोई उन्हें बाहर ले आया हो। उस समय तो बहुत बुरा लगा, दुःख हुआ था। कान्ताबहन कहती हैं– "उन दिनों एक गीत की पंक्ति मन में गूँजती रहती– **'जिंदा हूँ इस तरह कि गमे जिंदगी नहीं, जलता हुआ दिया हूँ मगर रोशनी नहीं।'** खैर आज तो सारी घटनाओं को ईश्वर का परम अनुग्रह समझती हूँ।"

ईश्वर का अनुग्रह भी कभी-कभी कठोर कृपा के रूप में बरसता है! ●

५
नये जीवन की बुनियाद

बीस वर्ष की उम्र में कान्ताबहन का नवजीवन प्रारम्भ हुआ। अब तो मुक्त पंछी थीं वे। परिवार-घर का पिंजड़ा छूट गया था। पाँव की बेड़ियाँ कट गयी थीं। उड़ने के लिए अनंत आकाश था – पंख फड़फड़ाने के लिए पूरा आकाश!

किन्तु अभी पंख कोमल थे। अधिकतर ये पंख बाँधे हुए थे। उन्हें उड़ने की तालीम नहीं मिली थी। पिजड़े में बंद पंछी आखिर कितना उड़ सकता है। पिंजड़े के बाहर की दुनिया का परिचय भी तो उड़ता हुआ सा ही था। उड़ना सीखना था, नये वातावरण को समझना था, उससे कदम मिलाकर चलना था।

पिंजड़ा जैसा भी था, उसमें सुरक्षा का आश्वासन था, रक्षा का साधन था। अब तो स्वयं को स्वयं ही सँभालना था, स्वरक्षिता बनना था। अपने लिए ठंडी छाँह की तलाश भी स्वयं करनी थी, शांति और सहारा भी स्वयं ढूँढ़ना था। बाकी तो अनन्त आसमान की मुक्त उड़ान थी।

हालाँकि अब इतनी ज्यादा स्वतंत्रता मिल गयी थी कि स्वच्छंदता की राह से रोकनेवाला भी कोई नहीं था। सुरक्षा और आधार के मोह में किसी और कैद में जकड़ जाने का भी डर था। इसलिए अपने लिए मर्यादाओं और अपने रास्तों का विकास करना था, स्वनिर्भरता और स्वतंत्रता को अक्षुण्ण रखना था।

इतने वर्षों बाद पीछे मुड़कर देखें तो दीखता है कि कान्ताबहन ने सारी परीक्षाएँ ठीक से पार कीं। स्व प्रयत्न से और प्रभु कृपा से प्राप्त मुक्ति का सदुपयोग कर सकीं। उसके सहारे अपना विकास किया। अपने हाथों अपनी जीवन - इमारत की ईंटें धरीं।

कहावत है कि बम्बई में भोजन तो मिल जाता है, आवास नहीं मिलता। ऐसी बम्बई नगरी में, महिलाओं के हास्टल में रहने की जगह मिलना बड़े भाग्य की बात थी। उससे राहत भी मिली, सुविधा भी हो गयी। बम्बई में जब तक रहीं, होस्टल

में ही रहीं। होस्टल का वातावरण तब अच्छा था। कोई झगड़ा-टंटा या प्रतिकूलता न थी। भोजन भी वहाँ के सामूहिक रसोड़े में मिल जाता था।

होस्टल में आयीं, तब तक कान्ताबहन ने कर्वे मैट्रिक पास कर लिया था। किन्तु बम्बई जैसे शहर में आत्म निर्भरता के लिए आगे पढ़ना जरूरी था। कर्वे यूनिवर्सिटी में उन दिनों नौकरी व्यवसायवाली बहनों के लिए सुबह की कक्षाएँ शुरू हुईं। कान्ताबहन को बड़ी अनुकूलता मिल गयी। दिनभर का कालेज तो उनको कैसे जमता? कमाना तो अनिवार्य था। कुछ समय बाद सुबह के वर्ग बंद भी हो गये तब भी वहाँ स्वयं तैयारी करके परीक्षा देने की इजाजत थी। इसलिए कान्ताबहन की गाड़ी चल गयी।

बी० ए० की डिग्री प्राप्त की, फिर बी० टी० किया। आगे एम० ए० तथा एम० एड् के फार्म के पैसे भी भर दिये थे, किन्तु फिर बम्बई छोड़ना पड़ा तो वह अधूरा रह गया।

पढ़ने के साथ पढ़ाना भी चलता ही था। अध्यापन का अनुभव अध्ययन में उपयोगी होता। अपने कार्य की वजह से उन्हें ज्यादा खयाल आता कि वे स्वयं खास क्या पढ़ें? परीक्षा के लिए कैसी तैयारी करें, इसकी समझ भी अधिक आ जाती।

ट्यूशन में भी निपुणता प्राप्त कर ली थी। बच्चों का मानस समझ में आने लगा था। कठिन परिश्रम की तो उन्हें आदत थी ही। ट्यूशन के लिए तैयारी करने में, स्वयं पूरी तरह से तैयार होने में वे कभी आलस न करतीं। पहले स्वयं ठीक से समझकर तब बच्चों को पढ़ातीं। बच्चों को अनुशासन के सबक भी देतीं और उनसे पूरी मेहनत भी करवातीं।

सच में ठीक से मेहनत करें तो उसका सुफल ही है, ऐसा उनका दृढ़ आत्म-विश्वास था। एक बार की घटना है। उनका एक ट्यूशनवाला छात्र प्रथम कक्षा में अनुत्तीर्ण हो गया। कान्ताबहन उस बच्चे को लेकर पहुँचीं स्कूल के प्रिंसपल के पास, "सर, बच्चे का ध्यान इधर-उधर बँट गया होगा, वरना यह बच्चा होशियार है। आपसे हाथ जोड़कर विनती करती हूँ, आप स्वयं इसकी परीक्षा लीजिए, इसे जाँचिए! सर, एक नयी शिक्षिका के नाते यह मेरी इज्जत का सवाल है।"

अपनी बात इतनी दृढ़ता से एक जवान बहन आकर कहे, इससे प्रिंसिपल प्रभावित हुए। अपने शिक्षकत्व के सत्व की कोई इतनी फिक्र करे, यह उन्हें अच्छा

लगा। अपने आफिस में उन्होंने उस बच्चे की आधा घंटा परीक्षा ली। उन्हें पूर्ण संतोष हुआ। उस बच्चे को पास घोषित करके अगली कक्षा में दाखिल किया। कान्ताबहन को सच्चे दिल से शाबासी दी।

आज भी उस प्रसंग को याद करके कान्ताबहन गद्गद हो जाती हैं : "तब ऐसे भी प्रिंसिपल होते थे, जो अपनी प्रेस्टीज या अपने अपमान का विचार किये बिना मेरे जैसी साधारण लड़की की बात सुनते और एक बार घोषित किये हुए रिजल्ट को भी बदल देते थे। आज तो ऊँची जान-पहचान या रिश्वत के बगैर कोई काम नहीं होता। उस समय पालक भी ऐसे थे, जो बच्चे को स्कूल के नहीं बल्कि किसी दूसरी जगह के शिक्षक का ट्यूशन दिलवाने का अनुग्रह रखते, जिससे बच्चे का अभ्यास पक्का हो। आज तो कितना बदल गया है सब कुछ। शिक्षा की हाट लगी है, डिग्रियाँ नीलाम हो रही हैं।"

बैरिस्टर रजनी पटेल के बच्चे को कान्ताबहन ने पढ़ाया था। बम्बई के सुप्रसिद्ध कार्डियोलोजिस्ट अश्विन मेहता की माँ का अंग्रेजी ट्यूशन करतीं। उनकी बहन और पत्नी भी स्कूल में कान्ताबहन की छात्राएँ थीं। जिस घर में गयीं – मान-सम्मान और आदर पाया। ट्यूशन के साथ-साथ घर के लोगों से भी खासा स्नेह संबन्ध जोड़ सकीं। बाद में भूदान के निमित्त या पिंडवल के काम से बरसों बाद अपने छात्रों से या उनके घरवालों से मुलाकात होती तो सब बड़े प्रेम से मिलते, कान्ताबहन के काम में पूरे उत्साह से सहयोग देते। एक बार बेंगलौर में एक पुरानी विद्यार्थी से भेंट हो गयी, वह बहन ऐसी गद्गद हुई कि मैं देखता रह गया।

जो भी काम करना हो, पूरे दिल से करें, यह कान्ताबहन का जीवन-मंत्र है, उसी का यह परिणाम है। रत्नचिन्तामणि हाईस्कूल में भी इसीलिए वे बड़ी **सफल और प्रिय शिक्षिका** साबित हुईं। करीब १० वर्ष वहाँ नौकरी की। शुरुआत तो की थी पार्ट-टाइम हैंडीक्राफ्ट शिक्षिका के नाते। फिर फुल-टाइम शिक्षिका बनीं और अन्य कई विषय भी पढ़ाये।

स्कूल में सिर्फ पढ़ाने का काम ही नहीं किया, विविध प्रवृत्तियों में भी अग्रसर रहीं। नये-नये कार्यक्रमों के बारे में बहुत उत्साह था। स्कूल में एन० सी० सी० शुरू करवाई। उसके लिए छुट्टियों में खड़की-पूना जाकर पन्द्रह दिन का कोर्स किया। शाम को स्कूल समाप्ति के बाद विद्यार्थियों को तालीम देने के लिए रोज आधा घंटा अधिक रुकतीं। स्कूल का अपना मैदान नहीं था। पड़ोस के स्कूल के मैदान में जाकर तालीम दी। पचास लड़कियों का एक जूथ तैयार किया।

पूरी बम्बई के स्कूलों का हर वर्ष एक कैम्प लगता। गोरेगाँव के एक ऐसे कैम्प में कान्ताबहन की स्कूल को श्रेष्ठता का इनाम मिला था। अखबार में भी छपा था। उस वक्त के स्कूल नियामक दुर्लभजी खेताणी ने कान्ताबहन से स्वयं मिलकर उन्हें धन्यवाद दिया था।

इसके लिए कान्ताबहन ने बहुत मेहनत की थी। साड़ी पहनकर कवायद करना संभव नहीं था। इसलिए खास तौर की सलवार-कमीज सिलवायी थी। अलबत्ता खादी की ही। स्कूल का जलसा हो, खेल-कूद प्रतियोगिता हो, नृत्य-नाटक हो, पर्यटन पर जाना हो-हर काम में कान्ताबहन आगे रहतीं।

स्वयं गरीबी में पली थीं, इसलिए गरीबों के प्रति उनकी अत्यन्त सहानुभूति थी। हर तरह से उनकी मदद करने की इच्छा रहती। उन्होंने स्कूल में प्रस्ताव रखा कि सप्ताह में एक बार प्रार्थना में एक खाली डिब्बा रख दिया जाये, जिसमें विद्यार्थी स्वेच्छा से पैसे डालें। उस रकम से **गरीब विद्यार्थियों की मदद** की जाये। प्रस्ताव तो सबको जँचा, पर यह सब कौन करे? कौन जिम्मेदारी ले? बस कान्ताबहन तो तैयार ही थीं। हर शुक्रवार को प्रार्थना के बाद खाली डिब्बा हर वर्ग में घुमाया जाता – गरीबों के लिए रकम इकट्ठी की जाती।

उनके होस्टल के बाहर एक पारसी भिखारी बैठता। कई वर्षों तक कान्ताबहन रोज उस भिखारी को एक आना देती रहीं। नन्हीं उम्र में स्कूल ट्रिप में जाने के लिए उन्होंने घर से एक आना माँगा था। वह उन्हें नहीं मिला था। वह बात कलेजे को बींध गयी थी। स्वयं कमाने लगीं, तब गरीब को भूल न जाऊँ, इसके लिए प्रतीक स्वरूप रोज एक आना भिखारी को देतीं।

स्कूल के चपरासी – दत्तू और सोनू भी जरूरत पड़ने पर कान्ताबहन के पास पहुँचते। कान्ताबहन सहानुभूति से उनकी बात सुनतीं और यथासंभव मदद करतीं। कान्ताबहन जब स्कूल से विदा हो रही थीं, दोनों सीढ़ियों पर खड़े रो रहे थे – "बहन, अब हमारा कौन?" कान्ताबहन की हालत भी वैसी ही थी, वे कुछ कह न सकीं।

भूदान आंदोलन में शामिल होने के लिए १९५७ में जब स्कूल छोड़ी तब कान्ताबहन **वाइस-प्रिंसिपल** के पद पर थीं। सबने काफी समझा – अब तो कुछ ही समय में आप प्रिंसिपल बन जायेंगी, कैरियर बन जायेगा, स्कूल मत छोड़िए। किन्तु उन्हें तो बुलावा आ गया था चहारदीवारी के बाहर के स्कूल का।

चहारदीवारीवाला स्कूल छोड़कर गांधी-विनोबा के **लोकशिक्षण विद्यालय में**

दाखिल हुए कान्ताबहन को ३०-३२ वर्ष हो गये होंगे, तब की बात है। किसी समारोह में एक वृद्धा ने आकर कान्ताबहन के चरण छुये। क्षणभर तो वे पहचान न सकीं, लेकिन जैसे ही पहचाना, वृद्धा के गले लग गयीं। वे वृद्धा तो खुशी के मारे फूली नहीं समा रही थीं। वे कान्ताबहन के स्कूल की प्रिंसिपल कमलाबहन पिसपाती थीं। कान्ताबहन को प्यार से सहलाते हुए बोलीं, ''तुम तो कहाँ से कहाँ पहुँच गयी। याद है, तुमने अपना त्यागपत्र काफी पहले से मुझे दे रखा था, जिससे हम तुम्हें बाद में रोक न सके। अब थक गयी हूँ, इस उम्र में कहीं बाहर नहीं जाती। जब मालूम हुआ कि जैन युवक संघवाले तुम्हारे काम के लिए एक लाख का चेक तुम्हारे हाथों में देनेवाले हैं, तो खास तुमसे मिलने चली आयी।''

इस तरह जब भी बम्बई में कान्ताबहन के उन दिनों के साथी, मित्र, परिचितों से भेंट होती है, वे सब उनकी कर्मठता, निष्ठा, सतर्कता और व्यवस्थितता को याद करते हैं। काम के साथ अपनी सुवास जो फैलायी थी उन्होंने!

कान्ताबहन को सदैव कुछ-न-कुछ नया सीखने में रुचि रहती। टाइपिंग, हार्मोनियम, ड्राइंग, ड्राइविंग कुछ नहीं छोड़ा। हालाँकि समयाभाव के कारण इन सब में आगे न बढ़ सकीं, इसका उन्हें कभी-कभी अफसोस भी होता है। कांग्रेस सेविका दल में शामिल हुई थीं। एक बार कांग्रेस हाउस में एक समारोह में नाटक खेला गया। उसमें उन्होंने सास का रोल किया था। उस बात को याद करके आज भी वे रोमांचित हो जाती हैं। कान्ताबहन को नाटक से बड़ा लगाव था। नाटक में रोल करने का भी उत्साह। किन्तु अभिनय का वह शौक अधूरा ही रहा।

'विज्युअल एज्युकेशन' का कोर्स भी उन्होंने किया था। राष्ट्रभाषा प्रचार का जोर था उन दिनों। इसलिए रविवार को राष्ट्रभाषा के वर्ग लेतीं। होस्टल में गंगाबहन के प्रोत्साहन से ब्लडबैंक में कई बार रक्तदान भी कर आयी थी। काफी समय तक हर रविवार को ताड़देव के पास एक हरिजन कालोनी में सफाई का काम भी किया। वहाँ इन्फेक्शन हो गया। इसलिए सख्त बीमार भी हो गयी थीं।

कपड़े फैशनवाले नहीं लेकिन साफ-सुथरे और चाँदनी से उजले तो होने ही चाहिए। सदैव श्वेत ही! बड़े ध्यान से धोतीं। सफेद कपड़ों के साथ तब सैंडिल भी सफेद ही पहनतीं। तैयार न मिले तो खास बनवातीं।

दहिसर में अधिकतर मराठी बस्ती थी। कान्ताबहन में भाषा सीखने की खास कुशलता है। इतनी मराठी सीख ली थी कि भाषण दे सकें। मराठी किताबें पढ़तीं। एक मराठी कहानी का गुजराती में तर्जुमा करके किसी दैनिक को दे आयी थीं।

उन्होंने छापा भी था। मराठी के जाने-माने लेखक हैं मामा वरेरकर। उनके एक उपन्यास का गुजराती में भाषान्तर करने की इच्छा हुई। लेखक से मिलीं। उन्होंने खुशी से सम्मति दी। पुरस्कार के बारे में पूछा तो मामा वरेरकर बोले, "मुझे कुछ नहीं चाहिए।" वे तो इस युवती का उत्साह देखकर प्रसन्न हो गये थे।

किंतु यह घटना फिर एक कटु याद बनकर रह गयी। कान्ताबहन ने भाषान्तर कर लिया। एक प्रकाशक से भेंट की। तय हुआ कि वे छापेंगे। पुरस्कार में रकम तो नहीं किंतु इस पुस्तक की कुछ कापियाँ और अन्य कुछ किताबें कान्ताबहन को देंगे। कान्ताबहन को तो नये क्षेत्र में कदम रखना था। उन्होंने स्वीकार किया। प्रकाशक को अनुवाद सौंप दिया। प्रकाशक ने शुरू में तो दो-चार किताबें दी, फिर काफी लम्बे समय तक उस अनुवाद को छापने के वादे करते रहे। कई बार अपने आफिस में बुलाया और इस तरह वे कान्ताबहन के नजदीक आने का प्रयत्न करने लगे। एक दिन होस्टल में पहुँचकर बोले–"चलिए, पिक्चर देखने चलें।" कान्ताबहन उनका हेतु समझ गयीं। मुझे समय नहीं है, कहकर टाल दिया। बाद में भी उन्होंने कुछ व्यक्तिगत बात करने की कोशिश की, किन्तु कान्ताबहन के आगे उनकी दाल न गली। कान्ताबहन ने उस पुस्तक का पीछा छोड़ दिया। बहुत समय बाद मालूम हुआ कि वह किताब छपी तो, किन्तु किसी दूसरे के नाम से। बरसों बाद संयोग से उन सज्जन का कान्ताबहन से सामना हो गया जैतलपुर स्टेशन पर। कुशल-क्षेम पूछकर विदा हो गये। बड़े झेंप गये थे बेचारे। कान्ताबहन ने उन्हें अधिक शर्मिन्दा करना नहीं चाहा।

अखबार में जो एक कहानी छपी थी, वहाँ भी जिनसे परिचय हुआ था, वे बाद में जरा नजदीक आने का प्रयत्न करने लगे। एक दिन बोले–"चाय पीने चलें?" कान्ताबहन पैंतरा समझ गयीं। फिर कभी उस गली में कदम न रखा।

इस संदर्भ में कान्ताबहन कहती हैं : "ओह, स्त्री की ओर देखने की यह लोलुप दृष्टि! मानो स्त्री कोई व्यक्ति नहीं वस्तु है, उपभोग की वस्तु!"

उन्हीं दिनों का एक और प्रसंग। एक डाक्टर से परिचय हुआ। वे एक दिन बोले : "आपको सामाजिक कार्य में रुचि है। मैं भी बहनों और बालकों के लिए एक अच्छी संस्था चलाता हूँ। आपको ले जाऊँगा वहाँ। एक शाम अपनी कार में संस्था दिखाने ले गये। धीरे-धीरे संस्था दिखाने में खासा समय लगाया। रात के ९ बज गये। कान्ताबहन होस्टल पहुँचने के लिए अधीर हो गयीं। आखिर कार में

रवाना हुए। देखा, कार तो दूसरे ही रास्ते पर जा रही है। कान्ताबहन का दिल धड़कने लगा, 'आप कहाँ ले जा रहे हैं?''

डाक्टर साहब ने ठंडे कलेजे से जवाब दिया, - ''अरे, देखिए तो जरा, आपको कैसी बढ़िया जगह ले जा रहा हूँ।''

कार तो हवा से बातें करने लगी और पहुँच गयी एकान्त सागर किनारे। ऊपर से गाड़ी का हुड खोल दिया और बोले, ''वाह कैसा सुहावना मौसम है! कैसी दूधिया चाँदनी खिली है! चलें, बाहर जरा पानी में ...''

कान्ताबहन भड़क गयीं: ''मिस्टर, मालूम होता है आपको मेरे बारे में गलतफहमी हो गयी है। मति मारी गयी है आपकी। फटाफट मुझे होस्टल पहुँचाइये वरना आपकी खैर नहीं।''

चुपचाप वे महाशय कान्ताबहन को होस्टल छोड़ गये।

बहुत बचपन में ऐसा ही किस्सा दहिसर में हुआ था। दहिसर में उनके घर के पीछे एक खेत पड़ता था, जिसके किनारे पतरे की चाल थी। वहाँ एक यू० पी० वाला अपनी बीवी के साथ रहता था। बच्चे उसे भैयाकाका कहते। वह अक्सर कान्ता से कहता, ''अब तुम्हारी काकी काम नहीं कर पाती।'' एकाध बार बाँह भी पकड़ी थी। एक दिन बोरीवली के रास्ते पर उसने कान्ता का हाथ कसकर पकड़ लिया। कान्ता ने उसका हाथ जोर से झटक दिया और कहा, फिर कभी मेरा नाम न लेना! मेरा तुमसे, काकी से कोई वास्ता नहीं।

ऐसे प्रसंग और भी कुछ बने। इस बारे में कान्ताबहन कहती हैं, ''स्त्री को अकेली या असहाय देखकर पुरुष इस तरह क्यों बरतता होगा? पुरुष स्त्री को ऐसी दृष्टि से क्यों देखता है!... खैर, मुझे तो हर बार भगवान ने बचा लिया। धाकड़ गुण्डे पुरुष के आक्रमण के सामने क्या हो सकता है, मैं नहीं जानती। किन्तु साधारण पुरुष मोहवश आगे बढ़े, तब स्त्री यदि मजबूत रहे, दृढ़ रहे, जरा भी पिघले नहीं, या कमजोर न हो, तो पुरुष का दिमाग ठीक कर सकती है। हाँ, स्त्री को भी नाज-नखरों से, अंग-प्रदर्शन से बचना चाहिए।''

इन सब बारे में किसी तरह का पिलपिलापन कान्ताबहन को शुरू से ही पसंद नहीं। साथ काम करनेवाले पुरुष भी यदि अपने अहं का प्रदर्शन करें तो कान्ताबहन ने उन्हें छोड़ा नहीं। स्कूल में एक शिक्षक जरा घमंडी थे। बहनों के साथ उद्धताई बरतते। शिक्षिका बहनों से वे स्वयं कुछ उच्च हैं, अधिक होशियार

हैं ऐसा घमंड था उन्हें। शिक्षिकाएँ भी उनका रोब मानतीं। एक बार कान्ताबहन के साथ उन्होंने वैसा ही बरताव किया, कान्ताबहन चुपचाप सहन क्यों करतीं? बोलीं, अपनी होशियारी अपनी पत्नी के सामने झाड़िये और बहनों पर नहीं। कम-से-कम मेरे सामने यह सब नहीं चलेगा।

इस तरह बम्बई के इन ७-८ वर्षों में कान्ताबहन मात्र आर्थिक दृष्टि से ही आत्मनिर्भर नहीं हुईं, बल्कि मानसिक रूप से भी काफी मजबूत और स्व-निर्भर होती गयीं। 'भीतरवाले' की महिमा की थाह पाने की दिशा में प्रयाण हुआ। ऐसी स्व-निर्भरता और स्वतंत्रता के वगैर उस भीतरवाले की प्राप्ति हो ही नहीं सकती।

६

कर्तव्य पालन

परिवार से वैसे तो रिश्ता टूट ही गया था। फिर भी जरूरत पड़ने पर उनकी मदद करने की भावना कान्ताबहन के मन में थी। माँ–पिताजी के लिए मन में कोई कटुता नहीं थी। वे लोग अपनी रूढ़ि और अपने संस्कारों के अनुसार जिये। जो हुआ सो हुआ। उन्हें कभी भी मेरी जरूरत पड़े, अपने जन्मदाता माता-पिता के प्रति अपने फर्ज को, कर्तव्य को निभाऊँगी, ऐसी भावना कान्ताबहन के मन में सदैव रही।

होस्टल पहुँचकर माँ-पिताजी को पत्र लिख दिया था कि मैं यहाँ हूँ, मेरी चिन्ता न करें, मेरे लायक कोई काम हो तो खबर करें।

नसीब की बात। बड़ा भाई शादी करके अलग हो गया और माता-पिता के प्रति कर्त्तव्य को बिलकुल भूल गया। अब जरूरत पड़ने पर माँ-पिताजी की नजर कान्ता की ओर ही उठती।

एक बार माँ बहुत बीमार हो गयीं। गंभीर टायफायड था। कान्ता को बहुत याद करने लगीं। पिताजी होस्टल पहुँचे। कान्ताबहन स्कूल ट्रिप में गयी हुई थीं। उन्हें लौटने में देर हो गयी। विरार की ट्रेन बन्द हो जाती तो दहिसर कैसे पहुँचते, इसलिए पिताजी काफी देर राह देखकर चले गये। चिट्ठी रख गये कि माँ बहुत बीमार हैं और तुझे याद कर रही हैं।

कान्ताबहन ने लौटकर चिट्ठी पढ़ी। सुबह का इन्तजार कैसे करें? तुरन्त चल पड़ीं। मलाड उतर गयीं। वहाँ से भक्तिभाई के छोटे भाई को साथ लेकर ट्रेन से बोरीवली पहुँचीं। बोरीवली से ताँगा किया और काफी रात गये दहिसर पहुँचीं। उन्हें देखकर माँ-पिताजी कितने खुश हुए होंगे, इसकी कल्पना कर सकते हैं।

बा की अच्छी तीमारदारी घर में संभव नहीं थी। इसलिए कान्ताबहन उन्हें

गंभीर हालत में बम्बई ले गयीं और अस्पताल में भरती कराया। पूरी स्वस्थ होने के बाद ही माँ दहिसर पहुँच सकीं।

पिताजी की आर्थिक हालत और बिगड़ती गयी। छोटी-मोटी नौकरी की, लेकिन कहीं जमा नहीं। सच्चे-झूठे हिसाब लिखना उनसे हुआ नहीं। आखिर किसी आफिस में ऐसे-वैसे काम करके कुछ कमाते। अंत में कान्ताबहन ने उनकी आर्थिक जिम्मेदारी सँभाली। पिताजी हर महीने होस्टल आकर कान्ताबहन से रकम ले जाते।

और फिर तो होस्टल तक आना भी उनके लिए संभव न रहा। लकवे का हमला हुआ। उस दिन कान्ताबहन दहिसर गयी थीं, तुरन्त डाक्टर को बुलाया। उन्होंने कहा इन्हें अस्पताल ले जाइये। कान्ताबहन बम्बई गयीं। हरकिसनदास हास्पिटल में पूछताछ की। वहाँ के संचालक गोरधनभाई से भेंट की। सब ठीक करके फिर दहिसर से पिताजी को अस्पताल ले गयीं। बड़ी मेहनत करनी पड़ी। लकवाग्रस्त व्यक्ति को कुर्सी में उठाकर स्टेशन लाना, गाड़ी में चढ़ाना, फिर गाड़ी से उतारकर अस्पताल पहुँचाना। किन्तु ऐसे मौके पर कान्ताबहन बड़ी एकाग्रता व सतर्कता से सारी व्यवस्था कर देती हैं।

करीब डेढ़ महीना पिताजी को अस्पताल में रखा। ट्यूशन, स्कूल की नौकरी, पढ़ाई सब निभाते हुए कान्ताबहन ने अस्पताल में पिताजी के इलाज का पूरा ध्यान रखा और सेवा की। अस्पताल से छुट्टी मिलने पर पिताजी को दहिसर पहुँचाया।

लकवाग्रस्त अवस्था में पिताजी पूरे बारह वर्ष रहे। इस परिस्थिति में घर का इंतजाम भी कान्ताबहन को सँभालना पड़ा। माँ ने बहुत स्नेह और लगन से पिताजी की सेवा की। उसमें कान्ताबहन ने पूरा साथ दिया। वे घर तो नहीं लौटीं, किन्तु दूसरी जगह रहकर, अपनी जिन्दगी में नित-नयी मंजिल की ओर बढ़ते रहकर भी उन्होंने माँ-पिताजी के प्रति अपने कर्तव्य को खूब निभाया। छोटी बहन सुशीला को भी कान्ताबहन ने पढ़ाया-लिखाया और उसका ब्याह करवाया।

अपने प्रति माँ-पिताजी के अन्यायपूर्ण व्यवहार को कान्ताबहन ने बिलकुल भुला दिया। मानो वैसा कभी कुछ हुआ ही न हो। एकदम सहज, प्रेमपूर्ण व्यवहार! इसके कारण माँ-पिताजी के साथ उनके संबन्ध का कायाकल्प हो गया।

पिताजी की दयनीय आर्थिक स्थिति और बाद में लकवाग्रस्त अवस्था – कान्ताबहन के मन पर इनका बहुत बोझ रहता। पिताजी की याद आते ही आँसू बहने लगते। कभी क्लास में पढ़ाते-पढ़ाते भी ऐसी दशा हो जाती तो

आंसू छिपाने के लिए कान्ताबहन बोर्ड की तरफ मुँह फेरकर लिखने का बहाना बनातीं।

पिताजी को काजू बहुत प्रिय थे। किंतु काजू खाने की औकात ही नहीं रह गयी थी कई बरसों से। अब कान्ताबहन जब दहिसर जातीं, काजू ले जाती।

कान्ताबहन ने बम्बई छोड़कर **भूदान आंदोलन से जुड़ने का निश्चय** किया, तब माँ-पिताजी काफी दुखी और परेशान हो गये थे। आपको सँभालती रहूँगी, और जब आपको मेरी जरूरत होगी, आपके पास दौड़ी चली आऊँगी।

अपने इस वचन का कान्ताबहन ने अक्षरशः पालन किया। भूदान आंदोलन के निमित्त उन्हें गुजरात में और गुजरात के बाहर भी सतत प्रवास करना पड़ता। किन्तु हर दस-पंद्रह दिन में माँ-पिताजी को एक जवाबी कार्ड जरूर भेजतीं। जहाँ होतीं, वहीं उनका जवाब मँगवातीं। माँ अपने टेढ़े-मेढ़े अक्षरों में लिखतीं, ''हम मजे में हैं, तुम सब मजे में होगे। तू और हरविलास दोनों सदा साथ रहना।''

माँ अकेली पिताजी को उठाकर नहला नहीं सकती थीं। इसलिए स्पंज ही करना पड़ता। दो-चार महीने में कान्ताबहन जब दहिसर पहुँचतीं, तब वे और माँ मिलकर पिताजी को ठीक से नहलातीं। कान्ताबहन जितने दिन घर पर रहतीं पिताजी की सेवा के सारे काम स्वयं करतीं। वे हर तरह से माँ का बोझ कम करना चाहतीं, घर की साफ-सफाई और अन्य काम भी करतीं।

पिताजी को लकवा हुआ, तब माँ ने मनौती मानी थी कि उन्हें पोर और डाकोर ले जाऊँगी। कान्ताबहन ने दोनों को ये यात्राएँ करवायी। तीन-चार बार माँ पिताजी को पेटलाद भी ले गयीं, जिससे उनको स्थान परिवर्तन का सुख मिले।

कान्ताबहन वहाँ पहुँचकर बंद घर खोलतीं, साफ-सफाई करतीं, आवश्यक रसद लाकर देतीं और फिर महीने-डेढ़ महीने में लौटकर उन्हें दहिसर पहुँचातीं। लकवाग्रस्त व्यक्ति को ट्रेन में चढ़ाना-उतारना, ट्रेन बदलवाना वगैरह आसान काम नहीं था।

पिताजी का स्वभाव उग्र था। बिस्तर में पड़े-पड़े और भी चिड़चिड़े हो गये थे। माँ-पिताजी के अपने-अपने आग्रह और जिद भी थे ही। दोनों के बीच आपसी समाधान भी कान्ताबहन करवातीं। फिर तो दोनों ही कान्ताबहन के निर्णय को अन्तिम मानने लगे थे।

धीरे-धीरे माँ-पिताजी का संपूर्ण हृदय-परिवर्तन हुआ। अब तो कान्ताबहन

के परिचित भाई लोग भी उनके साथ दहिसर आने-जाने लगे। कान्ताबहन सबके साथ गपशप करतीं, काम करतीं, लेकिन माँ-पिताजी ने इसके बारे में कभी कुछ नहीं कहा, न ही किसी तरह की शंका-कुशंका की। और उनके ऐसे व्यवहार के पीछे कोई लाचारी नहीं थी, बल्कि वे अपनी पुत्री की आत्म-शक्ति को समझने लगे थे।

कान्ताबहन का स्नातक की डिग्रीवाला गाउनधारी फोटो पिताजी ने अन्तिम घड़ी तक अपने बिस्तर के पास, अपनी नजर के सामने रखा। बाद में माँ भी उस तस्वीर को अपने हृदय से चिपटाये रहीं।

अड़ोसी-पड़ोसी, जान-पहचान के लोग भी पिताजी से कहते, 'आप बड़े नसीबदार हैं—आपको पुत्र से सवाई पुत्री मिली।''

कान्ताबहन दहिसर आतीं, पिताजी के पास बैठतीं तो वे गद्‌गद हो जाते। आँखों में आँसू आ जाते, कान्ता का माथा सहलाते, पीठ सहलाते, प्यार करते। कान्ता के काम के बारे में सविस्तार पूछताछ करते।

मुझे याद है कि कान्ताबहन के साथ एक बार मैं दहिसर गया था। बलिया **सर्वोदय सम्मेलन** में कान्ताबहन ने एक सुन्दर भक्तिभावपूर्ण भाषण दिया था, विनोबाजी और उनके तूफान आंदोलन के बारे में। वह 'भूमिपुत्र' में छपा था। वह अंक मेरे पास था। मैंने वह पूरा भाषण पिताजी को पढ़कर सुनाया। उसे सुनते हुए पिताजी का आनन्द छलक रहा था। एक व्यक्ति के लिए दूसरे के दिल में ऐसा उज्ज्वल गौरव छा जाये, यह एक दिव्य दृश्य है।

आखिर पिताजी का स्वास्थ्य बहुत ही बिगड़ गया। तब कान्ता-हरविलासबहन दोनों पन्द्रह दिन दहिसर ही रहीं। दोनों ओर भरपूर संतोष हुआ। एक जरूरी मीटिंग के लिए 'दो दिन में लौटेंगे' यह कहकर दोनों जाने लगीं। तब पिताजी ने माँ का हाथ कान्ताबहन के हाथ में देकर कहा, ''तेरी माँ को तेरे हाथ सौंप रहा हूँ। अपनी माँ को सँभालना। तेरे में मुझे पूरा विश्वास है, तुझ पर भरोसा है। तू कभी किसी का अकल्याण कर ही नहीं सकती। भगवान तेरा कल्याण करे।''

फिर उन्होंने माँ से कहा, ''तू और किसी का नहीं, मात्र अकेली कान्ता का भरोसा करना।''

बस, पिता-पुत्री का वह अंतिम मिलन था। कान्ता-हरविलासबहन अभी बड़ौदा पहुँची और दूसरे ही दिन सुबह फोन आया । 'पिताजी गये।'

कान्ताबहन ने फोन में कहा, "मैं तुरन्त निकल रही हूँ। शव को रखें।" दौड़कर ट्रेन पकड़ी।

पिताजी अंतिम घड़ी में कह गये थे, मेरा दाह-संस्कार और कोई न करे, मेरी कान्ता करे! बेहद पुराने रूढ़िग्रस्त विचारोंवाली माँ ने भी इस बात को पूरी तरह से मान्य किया था।

किन्तु पुराणपंथी काका को यह पसन्द नहीं आया-"लड़की के हाथों दाह-संस्कार?"

-- यह कल्पना ही उनके लिए असह्य थी। माँ ने बहुत कहा-मरनेवाले की आखिरी इच्छा थी, कान्ता वहाँ से चल पड़ी है, दोपहर तक पहुँच जायगी। उसे ही अग्निदाह करने दें। काका ने जिद पकड़ी, "यदि लड़की दाह-संस्कार करनेवाली हो तो हम सब यहाँ से चले जायेंगे। शव यों ही पड़ा रहेगा।" बेचारी माँ क्या करती?

कान्ताबहन पहुँची तब लोग श्मशान से लौट रहे थे।

माँ-पिताजी निपट पुराने संस्कार के थे। वे कोई क्रांतिकारी विचारों के तो थे नहीं। किन्तु कान्ताबहन के जीवन-व्यवहार और बरताव ने उनके विचारों में इतना बड़ा परिवर्तन लाया कि उन्होंने दोयम चोलेवाली बेटी के हाथों अग्नि-संस्कार की कामना की। किन्तु पुराने खयालों के रूढ़िवादी रिश्तेदारों ने उनकी इच्छा पूरी न होने दी।

पिताजी की मृत्यु को अभी दो दिन ही गुजरे थे कि तीसरे दिन कोर्ट-वारंट आया। भाई ने घर पर अपने दावे के लिए केस किया था। पति-मृत्यु के शोक में डूबी माँ को सौगन्धनामे पर और वकीलनामे पर दस्तखत करवाने के लिए हाईकोर्ट में ले जाना पड़ा। बाकी बाद में इस केस में भाई के हाथ कुछ नहीं लगा, क्योंकि पिताजी ने पूरी सतर्कता से दस्तावेज बनाकर रखा था कि यह मकान माँ के स्त्री-धन में से बनाया गया है।

किन्तु इस पूरी घटना की वजह से कान्ताबहन ने निर्णय ले लिया कि माँ को अब अकेले दहिसर नहीं छोड़ना है। अब वे मेरे साथ ही रहेंगी। हम सबने भी इस बात का पूरा समर्थन किया। इसलिए दहिसर का घर समेट लिया। घर का सामान कुछ बेच दिया, कुछ दे दिया, माँ की अपनी जरूरी चीजें साथ ले लीं। पिताजी की मृत्यु के पाँचवें-साँतवें दिन ही दहिसर का घर छोड़कर माँ हमारे साथ बड़ौदा आ गयीं।

पिताजी की मृत्यु १९६६ की जुलाई में हुई। तब से माँ अन्त तक हमारे साथ पूरे चौबीस वर्ष रहीं। हमारे साथ एकरूप हो गयी थीं। हमारे सहजीवन की बुजुर्ग साथी-साक्षी बनी रहीं।

विचार, संस्कार, मान्यताओं में जमीन-आसमान का फर्क। स्वभाव-ग्रंथियाँ भी थीं ही। फिर भी कुल मिलाकर माँ को नयी परिस्थिति रास आ गयी। तूफानयात्रा के उन दिनों में कान्ताबहन महीने में बीस-बाईस दिन घर से बाहर रहतीं। किन्तु माँ अब सर्वोदय की माँ बन गयी थी। सर्वोदय के वृहद् परिवार ने उन्हें अपनी माँ मान लिया था। इसलिए हमारे अन्य कार्यकर्ता या सर्वोदय-मित्रों के घर माँ महीने-दो महीने रहने जातीं। सभी उन्हें प्रेम से रखते और वे भी खुशी से रहतीं। अन्तिम वर्ष उनको बिस्तर पर काटना पड़ा था। तब हमारे साथी बंसीभाई उन्हें अपने घर ले गये थे-पूरे साढ़े चार महीने वहाँ रही थीं। क़ावीठा में ऐसी अवस्था में उन्हें वहाँ देखकर गुंदी आश्रम के अंबुभाई शाह सहज बोल पड़े थे-"ऐसा तो सर्वोदय में ही हो सकता है।"

माँ अपने कई गुणों की वजह से और मधुर आदतों की वजह से काफी सर्वप्रिय हो गयी थीं। हमने तो ऐसा सामाजिक काम हाथ में लिया था कि जरा भी फुर्सत न मिलती। माँ भी स्वयं को पूरा व्यस्त रखतीं। अपना काम स्वयं करतीं, कपड़े भी खुद ही धो लेतीं, चक्की भी पीसतीं। चक्की चलाने की दीक्षा तो मुझे माँ से ही मिली। आज भी मैं पीसने बैठती हूँ तो उनका स्मरण होता है। वे हमेशा कुछ-न-कुछ पढ़ती रहतीं। अंतिम दिनों तक बिलकुल बिस्तरवश नहीं हुईं। वे पूरी तरह सक्रिय रहीं। दो-चार बार हरविलासबहनें के साथ गाँवों में पदयात्रा में भी गयीं। सबकी तरह वे भी पैदल चलतीं। शिविर-सम्मेलनों मे भी हिस्सा लेतीं।

१९९० की फरवरी में माँ का देहान्त हुआ। अंतिम दिनों में कान्ताबहन और हम सब साथियों ने पिंडवल में उनकी उत्तम सेवा की। आखिर के दस-पंद्रह दिन उन्हें काफी वेदना रही। फिर भी काफी शांति से गयीं। अंतिम घड़ी तक एक ही वाक्य का सतत रटन करती रहीं, "कान्ता, तूने मुझे बहुत सँभाला, बेटी, तेरा कल्याण हो।"

पिंडवल में कान्ताबहन ने माँ का अग्नि-संस्कार किया, तब उनका कोई रिश्तेदार वहाँ हाजिर नहीं था। साधारण विधि भी आदिवासियों ने अपनी पद्धति से की। कान्ताबहन अग्निदाह दे, पिताजी की यह अंतिम इच्छा उनके बारे में तो पूरी नहीं हुई, भगवान ने माँ के समय पूरी करवा दी।

पिताजी की तरह अन्ततोगत्वा माँ का हृदय-परिवर्तन भी प्रेम की जीत थी। एक पक्षीय, एक निष्ठ कर्तव्य पालन का यह पवित्र प्रसाद था। **शठं प्रति शाठ्यं** की नीति नहीं, बल्कि **एक गाल पर तमाचा मारे तो दूसरा आगे करें** इस नीति की निष्पत्ति थी। गांधी-विनोबा के प्रेम-अहिंसा-मंत्र के अनुरूप बरताव का यह परिणाम था।

इसके कारण कान्ताबहन की विकास-यात्रा अधिक सुसंवादी बनी। यों तो खून की रिश्तेदारी से उनका संबन्ध छूट गया था, फिर भी संयोगवशात् माता-पिता के साथ रिश्ता बना रहा। वे लोग भी कान्ताबहन की विकास-यात्रा में विसंवादी न रहे, इससे सबको समाधान हुआ। अन्ततोगत्वा कान्ताबहन के माता-पिता के सच्चे हृदय के आशीर्वाद मिले–सब मंगलमय हुआ।

अभी डेढ़ वर्ष पहले इन्दौर से एक भाई पिंडवल पहुँचे। बोले, "मुझे कान्ताभाभी से मिलना है।"

ये थे कान्ताबहन के देवर रतिभाई। चार दशकों में न कभी भेट हुई थी, न कोई पत्र व्यवहार था। किंतु एकाएक उनके मन में भाव जागा। जैसे भी पता लगाकर पिंडवल पहुँचे। भाभी के चरण छूकर बोले, "भूलचूक हुई हो तो क्षमा करें। बहुत इच्छा हुई कि एक बार आपसे भेंट करूँ, उम्र हुई, पता नहीं कब बुलावा आ जाये।"

रात वहीं रहे। सुबह बस में चढ़ने से पहले फिर नीचे झुककर बड़े भाव से कान्ताबहन को प्रणाम किया।

उस रिश्ते से तो वैसे भी कोई कर्तव्य जुड़ा नहीं था। किंतु फिर भी इस तरह उस रिश्ते को आन्तरिक शुभकामनाएँ अनायास मिल गयीं।

जीवन अखंड और अविभाज्य है। उसके सभी सुर एकसुर बनें, उसमें से सुसंवादी संगीत की सुरावलि जागृत होनी चाहिए। तनिक विसंवाद हो जाये तो विक्षेप पैदा होता है। इस दृष्टि से कान्ताबहन के जीवन में माता-पिता और अन्य सांसारिक रिश्तों की जो परिणति हुई, उत्तम हुई, अच्छी हुई।

इस पूरी घटना-परंपरा का विहंगावलोकन करें तो एक बात ध्यान में आती है। ऐसा लगता है मानो माँ-पिताजी परिस्थिति के हाथ या किसी अदृश्य शक्ति के हाथ की कठपुतली थे। उन्होंने अपने व्यवहार और बर्ताव से कान्ताबहन को एक खास दिशा में धकेला और धक्के दे-देकर उन्हें सांसारिक जंजाल से मुक्त कर

दिया। लेकिन एक बार मुक्ति के उस कगार पर पहुँचने के बाद वे सारे तत्त्व नकारात्मक के बदले सकारात्मक योगदान देने लगे। ये सारे तत्त्व, सारे लोग यथा स्थान ऐसे फिट हुए कि सब अपने गन्तव्य तक पहुँच सके। समस्त घटनाचक्र हमें जीवन-लीला के दर्शन करवाते हैं।

विधि की लीला कैसी? जिस बेटी को दोयम – निम्न माना, वही अन्त के कष्टों में रात-दिन खड़ी रही। कुल दीपक तो झाँकने भी नहीं आये।

माँ की मृत्यु के पंद्रह-बीस दिन बाद कान्ताबहन के बड़े भाई अपने बेटे के साथ अचानक पिंडवल पहुँचे। इसके पहले इन पचीस वर्षों में उन्होंने कभी माँ से भेंट नहीं की थी, न ही कभी उनकी खोज-खबर ली थी। बड़े भाई माँगें उससे पहले ही कान्ताबहन ने, पेटलाद के घर के दस्तावेज उनके हाथ में दे दिये। (वह घर माँ की मृत्यु के बाद उनके पौत्र को मिले, ऐसी व्यवस्था पिताजी ने पहले ही कर दी थी। बाद में उसमें कोई परिवर्तन नहीं किया था।) अब तक उस मकान का किराया लेकर जो सज्जन माँ को भेजते रहते थे, उन पेटलादवाले मनहरभाई के नाम भी कान्ताबहन ने पत्र लिख दिया। उसमें उन्होंने अपने बड़े भाई का परिचय दिया और अब वह मकान उनकी मालिकी का है, ऐसा भी लिखा। घंटेभर रुककर अपने उत्तराधिकार को समेटकर भाई और उनका बेटा लौट गये।

माँ इस किराये से अपना खर्चा चलाती थीं। हमारे साथ रहीं लेकिन अपना खर्च स्वयं करतीं। दहिसर के घर की जो रकम मिली थी, उसमें से बा ने अपने हाथों अपनी-इच्छानुसार दान किया। कान्ताबहन ने तय किया था कि माँ की रकम से स्वयं अपने लिए या जिन संस्थाओं से प्रत्यक्ष रूप से स्वयं जुड़ी थीं, उनके लिए कुछ न लेना। तब माँ को जरा दुःख भी हुआ था। माँ की मृत्यु के बाद उनके नाम पर जो थोड़ी-बहुत रकम बची हुई थी, बड़ौदा की कुष्ठरोगी सेवा-संस्था श्रम मंदिर को कान्ताबहन ने दान में दे दी।

इस तरह जन्म देनेवाले माता-पिता के प्रति अपना कर्तव्य निभाया और इस रिश्ते की पूर्णाहुति हुई।

७

पवित्र संगम

कर्वे यूनिवर्सिटी की सुबह की कालेज थी। साल था १९५१ का। क्लास छूटा। कान्ताबहन को स्कूल पहुँचने की उतावली थीं। लॉबी में पीछे से किसी ने पुकारा–"कान्ताबहन !"

कालेज खुले ज्यादा दिन नहीं हुए थे, इसलिए परस्पर पहचान खास नहीं थी। किन्तु नखशिख श्वेत-धवल खादी और सफेद सैंडिल में सज्ज कान्ताबहन को नाम से वह दूसरी छात्रा जानने लगी थी। कान्ताबहन ने मुड़कर देखा–अरे, यह तो वही है जिससे बात करने की सहज इच्छा कान्ताबहन के मन में भी हुई थी। वह सबसे कुछ अलग दीखती थी। उसके कपड़े भी खादी के थे। सौम्य, शान्त व्यक्तित्व और नाम भी जरा नया-सा, इसलिए याद रह गया था।

"हाँ, क्या? आपका नाम हरविलासबहन है न?"

"हाँ। कान्ताबहन, आपकी नोटबुक मुझे चाहिए जरा घर ले जाने के लिए–देंगी?"

नौकरी, ट्यूशन इन सब कामों के कारण बड़ी कठिनाई से नोट्स तैयार कर पाती थीं कान्ताबहन। इसलिए किसी को देने में हिचकिचातीं। किंतु यहाँ तो उन्होंने झट से हाँ कर दी–"हाँ, हाँ ले जाइये।"

"आप कहाँ रहती हैं?"

"लेमिंगटन रोड पर भगिनी समाज के होस्टल में।"

"ओह, मेरे घर से तो पाँच ही मिनट का रास्ता है! मैं कांग्रेस हाउस के पास रहती हूँ। चलें, उधर ही जाना है न आपको?"

"नहीं, अभी तो मुझे जाना है कालबादेवी की रत्न चिंतामणि हाईस्कूल में। मैं वहाँ सर्विस करती हूँ।"

''मैं भी ग्रांट रोड पर पारसी मेसानिया हाईस्कूल में पढ़ाती हूँ । शाम को मैं नोट्स लौटा दूँगी। मैं होस्टल आ जाऊँगी।''

''जरूर आना। लेकिन ट्यूशन वगैरह निपटाकर लौटने में मुझे आठ बज जाते हैं। आप साढ़े आठ बजे आ सकेंगी?''

''जरूर!''

कान्ताबहन और हरविलासबहन का यह पहला परिचय था। दोनों को खुशी हुई, भेंट से बेहद आनंद हुआ। रात को होस्टल में फिर मुलाकात हुई–नया परिचय नहीं, मानो चिरपरिचित हों!

इस प्रथम परिचय की कोंपल तेजी से विकसित होने लगी। नजदीक ही रहती थी, इसलिए रोज रात को मिलतीं। कभी हरविलासबहन होस्टल आतीं, कभी कान्ताबहन उनके घर जातीं। साथ बैठकर कुछ पढ़तीं, एक-दूसरे की जानकारी प्राप्त करतीं, परस्पर परिचय दृढ़ करतीं।

हरविलासबहन को कान्ता की सादगी, उसकी सफेद खादी का तो आकर्षण था ही, उनका उत्साह, तेजस्विता और बोलने का विशिष्ट अन्दाज उन्हें भी बहुत प्रिय था। उनके कठिन संघर्ष की कहानी सुनकर उनकी बहादुरी, हिम्मत और साहस के लिए मन में बड़ी इज्जत पैदा हुई। साथ ही एक लड़की को कितना कष्ट झेलना पड़ा, यह बात हृदय को छू भी गयी। कान्ताबहन के लिए उनका दिल आर्द्र हो उठा। उनके लिए अकारण प्रेम का अनुभव होता रहा। ओह, ऐसा घोर अन्याय! मैं हर हालत में इनका साथ दूँगी, ऐसा संकल्प मन में जागा।

कान्ताबहन को हरविलास के शांत-सौम्य स्वभाव में, सादगी में, उनकी अनोखी स्वस्थता, ऋजुता और सरलता में शांति का अनुभव होता, आधार मिलता। उनके कुटुम्ब का कलह-रहित, मेल-जोलवाला स्नेहमय वातावरण कान्ताबहन को बहुत सुहाता। कान्ताबहन के कोमल पंख मुक्तता से उड़ने की तालीम ले रहे थे। इस मुक्त विहार में अनायास ऐसा संगी मिल गया, इसकी उन्हें बहुत खुशी थी। स्वयं वे मजबूत बन ही रही थीं। साथ ही हरविलास के सहज स्नेह-स्पर्श ने उनकी शक्ति को बढ़ा दिया हो, ऐसा अनुभव कान्ता को होने लगा।

दोनों का आपसी स्नेह नितांत सहज था। मिलती-जुलती रहीं और एक-दूसरे में ओतःप्रोत होती गयीं, परस्पर स्नेह बढ़ता गया। उन दिनों की याद करते हुए कान्ताबहन कहती हैं–'' स्नेह की गाँठ मजबूत होती गयी, कारण कुछ न था। बस

हम एक-दूसरे को पसंद करते थे, बहुत पसंद करते थे। स्नेह की बातें तो बस, स्नेह जैसी ही थीं। कुछ सँभाल कर रखा हो देने के लिए, कुछ याद रखा हो कहने के लिए–कब मिलें, कब दें, कब कहें।''

हरविलास भी याद करती हैं, कोई विशेष चीज खाती तो कान्ता की याद आ जाती। उसके लिए बचाकर रखती। रविवार और छूट्टी के दिन शाम को उसकी होस्टल की रसोई बन्द रहती। तब घर पर मिलने से कान्ता को घर पर ही खाना खिलाती। मेरी सहेली इस नाते सबने उसे परिवार की ही मान लिया था–नापसंदगी का सवाल ही नहीं था।

हरविलासबहन के घर में माँ, भाई-भाभी और अन्य किसी ने भी कान्ताबहन को पराया नहीं लगने दिया। इसलिए उनके घर जाने में कान्ताबहन को कभी संकोच न होता। पढ़ने जाना, वहीं खाना, वहीं सोना, छुट्टी के दिन होस्टल में नहाने-धोने के लिए लाइन में लगना पड़े तो हरविलास के घर नहात्ती-धोत्ती निपटती–सब सहज!

कान्ताबहन को मन होता कि मैं हरविलास को न्यौता दूँ। होस्टल में जिस दिन 'फीस्ट' हो, तब काम का बहाना बनाकर कान्ताबहन इधर-उधर चली जातीं, जिससे उनकी थाली ढाँक कर रख दी जाती। फिर दोनों साथ खाना खातीं। भोजन में ऐसे हिस्सेदार को पाकर अधिक तृप्ति मिलती। खाना भले ही ठंडा हो जाय, स्नेह की ऊष्मा बनी रहती।

कान्ताबहन का घर छूटा, पारिवारिक रिश्ते के धागे टूटे, उसके कुछ ही समय बाद यह **नया रिश्ता** बँधा। यही रिश्ता तो दोनों के जीवन का ध्रुपद बनता गया। यही रिश्ता दोनों के जीवन को समृद्ध करनेवाला था, दोनों को समाधान देनेवाला था, जीवन की परिपूर्णता में महत्त्व का योगदान प्रदान करनेवाला था।

दो व्यक्तियों का पवित्र संगम हुआ। दोनों के व्यक्तित्व खासे भिन्न थे, फिर भी दोनों में अनोखा एकत्व था मानो दोनों का सर्जन एक रूप होने के लिए ही था। दोनों का पालन-पोषण, दोनों की परिस्थिति, दोनों के घर का वातावरण सब कुछ ही तो भिन्न था, फिर भी दोनों के संस्कारों का मधुर संयोजन होना था, उसमें से नये अद्वैत की प्राप्ति का प्रयत्न होना था।

हरविलास का गाँव था रांदेर। विशाल कुटुम्ब था, नौ बहनें और पाँच भाई। उसमें हरविलास का नंबर तेरहवाँ। रांदेर में १९-६-१९३१ में जन्म हुआ। उसके बाद एक छोटी बहन और थी निर्मला।

माता का नाम था उत्तमबहन और पिता का नाम था ठाकोरदास। ठाकोरदास के पिता ने ओलपाड तहसील के सरस गाँव में दुकान डाली थी और अच्छी कमाई की थी। किंतु उनके तीनों बेटों में से किसी ने कमाने की मेहनत नहीं की और पिता की कमाई पर मौज-मस्ती करते रहे। आखिर अकेले पिता की कमाई कहाँ तक पूरी पड़ती? आर्थिक हालत बिगड़ने लगी। ठाकोरदास बाद में लकड़ी की दलाली करने लगे। वे दिल के सरल थे, धोखा खा जाते और पैसे खो देते। लोग उन्हें भोलेबाबा कहते!

इसलिए हरविलास के जन्म तक तो परिवार की हालत बिगड़ गयी थी। जैन परिवार था। इसलिए उनके समाज की ओर से कुछ अनाज-गल्ला मिल जाता, उसी से निभाना पड़ता। किताबें, फीस वगैरह किसी दूसरे ट्रस्ट की ओर से मिलतीं।

चौदह भाई-बहनों में से चार भाई-बहन तो बचपन में ही गुजर गये थे। पिताजी ४८ वर्ष की उम्र में गुजर गये। सबसे बड़े बेटे मदनलाल काफी होशियार और मेहनती थे। उन्होंने पूरे परिवार को बहुत सँभाला। परिवार बढ़ता गया, भानजे-भानजी, भतीजे-भतीजी बड़े भाई-भाभी ने सबका ध्यान रखा। सबका विकास हो, इसके लिए प्रयत्न करते रहे। उनके कारण सभी भाई-बहनों का जीवन सुधरता गया।

माँ उत्तमबहन बड़ी स्नेहमयी थीं। सभी बच्चों का प्यार से लालन-पालन किया। खानदानी समृद्ध परिवार अपने आलस्य के कारण खस्ता हालत में पहुँच गया था, फिर भी प्रेम और सुसंस्कार के बारे में कभी दरिद्र नहीं हुआ।

हरविलासबहन कहती हैं, "हमारे पूरे परिवार में परस्पर प्रेम था। मिल-जुलकर एक-दूसरे को सँभालते हुए जीने के, एक-दूसरे के मददगार होने के संस्कार आरंभ से थे। हमारे परिवार में कोई खास झगड़ा-झंझट हुआ हो, ऐसा याद नहीं पड़ता। सुना है विश्व-शांति के बीज तो बचपन के संस्कारों में है। हमारी निपट निरक्षर और अनपढ़ माँ ने हम सबको इतने प्यार से पाला-पोसा, इसलिए हमारा पारिवारिक जीवन सदैव प्रेमपूर्ण, सौहार्दपूर्ण रहा।"

इस तरह कान्ताबहन और हरविलासबहन के पालन-पोषण में जमीन-आसमान का फर्क था। एक ओर संघर्ष ही संघर्ष, दूसरी ओर संवाद था। एक ओर प्रेम का अभाव तो दूसरी तरफ भरपूर प्रेम। लड़के-लड़की के भेद-भाव की, ऊँच-नीच की कल्पना भी हरविलासबहन के परिवार में असंभव थी। सब बच्चों

के लिए मुक्त वातावरण था। किसी का कोई दबाव नहीं, जो कहना हो खुलकर कहे, जैसे रहना हो रहे, जो करना हो करे। जरूरत न हो तो कोई रोक-टोक नहीं। मर्यादा का पूरा ध्यान था। स्वच्छंदता नहीं थी, शालीनताभरी स्वतंत्रता थी।

ऐसे वातावरण में रही हुई हरविलास को दृढ़ संस्कार मिले थे – कभी झूठ न बोला जाय, कोई अन्याय सहन न किया जाय। इसलिए बिना कारण कोई धमकाये तो उनके लिए वह असह्य हो जाता था।

हरविलासबहन पढ़ने में तेज थीं। वर्नाक्यूलर अर्थात् ७वीं कक्षा तक रांदेर में पढ़ीं। प्रसिद्ध लेखक गुणवंत शाह भी रांदेर के थे। उनकी माँ प्रेमबहन हरविलासबहन की शिक्षिका थीं। छात्र जीवन में हरविलास प्रेमबहन से काफी प्रभावित हुई थीं।

नये-नये विचार जानने-समझने का हरविलासबहन को शुरू से शौक था। राष्ट्रीय भावना का प्रभाव भी था। १९४२ भूगर्भ रेडियो के कारण प्रसिद्ध डा० ऊषाबहन मेहता भी सरस गाँव की ही थीं। उनकी बहादुरी और पराक्रम की बातें सुनकर गौरव का अनुभव होता। महादेव देसाई का ननिहाल भी सरस गाँव में था। उसका भी गौरव था मन में। इस तरह राष्ट्रीय भावना विकसित होती रही। एक बार स्कूल के सांस्कृतिक कार्यक्रम में नन्ही हरविलास भारत-माता बनी थी।

इन सबके कारण उनके दिलोदिमाग में गांधी-विचार का बीजारोपण हुआ। गांधीजी के दर्शनों की तीव्र इच्छा थी, लेकिन पूरी न हुई। गांधीजी की हत्या हुई तब बड़ा आघात लगा। उनकी श्मशान-यात्रा में शामिल होने के लिए दिल्ली दौड़ जाने का मन हुआ, किन्तु किराया कहाँ से लातीं। गांधीजी के अंतिम संस्कार होने तक अन्न-जल ग्रहण नहीं किया। गांधी – बापू के स्मरण की तीव्रता ऐसी थी कि उस रात सपने में वृक्ष के नीचे गांधीजी को सामूहिक प्रार्थना करते हुए देखा। वह दृश्य देखकर इतनी भाव-विभोर हो गयीं कि सुबह जागने के बाद भी मन में आनन्दमय शांति छायी रही।

आजादी के आंदोलन के दिनों में भाई-भाभी खादी पहनने लगे थे। तब से हरविलास को भाभी की खादी की साड़ी पहनना बहुत सुहाता। फिर तो स्वयं भी सम्पूर्ण खादी ही पहनने लगीं। गांधी-विचार के बारे में किताबें, लेख पढ़ने की आदत भी बचपन से ही थी। ये सारे संस्कार जीवन-इमारत को गढ़ते रहे।

जैन धर्म के संस्कार भी थे। जैन साधु-साध्वी के जीवन का जबर्दस्त आकर्षण था। इसलिए दीक्षा लेने की इच्छा भी होती रहती। एक ओर **दीक्षा** और

दूसरी ओर गांधी-मार्ग से **समाज-सेवा** दोनों के बीच द्विविधा का अनुभव होता। किन्तु मन में एक बात स्पष्ट थी कि विवाह इत्यादि जंजाल में पड़ जाऊँगी तो सेवा कार्य नहीं कर सकूँगी।

शिक्षा सातवीं कक्षा तक रांदेर में हुई। फिर बड़े भाई ने बम्बई बुला लिया। इसलिए किशोरावस्था से बम्बई ही रहना हुआ। हरविलास की इच्छा थी मैट्रिक के बाद डाक्टर बनूँ और समाज सेवा करूँ। परन्तु घर की नाजुक आर्थिक हालत के कारण प्राइवेट कर्वे मैट्रिक करना पड़ा। तब यह मालूम नहीं था कि कर्वे मैट्रिक के बाद डाक्टरी में प्रवेश नहीं मिलता। संस्कृत विषय नहीं लिया इसलिए आयुर्वेद में भी प्रवेश न मिला। कर्वे मैट्रिक के बाद पी०टी०सी० का कोर्स किया और उन्नीस वर्ष की उम्र में भेसानिया हाईस्कूल में शिक्षिका की नौकरी कर ली। बम्बई छोड़ा तब तक वह नौकरी चलती रही। जो भी वेतन मिलता, बड़े भाई को सौंप देती। भेसानिया स्कूल में अधिकतर पारसी और मुस्लिम विद्यार्थी थे। उन दोनों जमातों से तब काफी परिचय हुआ और उन मीठे संबन्धों की याद अभी भी ताजा है।

शिक्षिका की नौकरी करते-करते ही कर्वे यूनिवर्सिटी में दाखिला लिया। शुरू से एकाध वर्ष कालेज में पढ़ी, जहाँ कान्ताबहन से परिचय हुआ। फिर प्राइवेट पढ़ाई की। कान्ताबहन के साथ ही बी० ए० किया, फिर बी० टी० किया। बी० टी० में प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण हुईं। कान्ताबहन के साथ हिन्दी कोविद किया और हिन्दी शिक्षक का परवाना प्राप्त किया। कांग्रेस सेविका दल में भी शामिल हुईं।

कान्ताबहन के साथ जैसे परिचय बढ़ा, उनके साथ भी विवाह इत्यादि की चर्चा होती रहती। कान्ताबहन का तो वह सब निपट चुका था। धीरे-धीरे दोनों का परिचय प्रगाढ़ होता गया। दोनों के हृदय जुड़ते गये। हरविलासबहन के जीवन से भी **विवाह की बात सदैव के लिए छूट गयी**।

दोनों साथ-साथ भविष्य की कल्पनाएँ करने लगीं, साथ-साथ जीने का विचार दृढ़ होता गया और तय कर डाला कि बस, अब जीवनभर साथ रहेंगे, साथ काम करेंगे। जीना-मरना सब साथ!

कान्ताबहन ने एक बार एक पत्र में लिखा था—"मैं और हरविलास बम्बई रहते थे तब अलग-अलग स्कूलों में नौकरी करते थे। इसलिए दिनभर तो साथ न होते। किन्तु लगभग रोज ही मिलते जरूर थे। बी० ए०, बी० टी० साथ ही पास किया, साथ ही पढ़ाई की और छुट्टियों में तो साथ रहते ही। कश्मीर से कन्याकुमारी तक साथ-साथ प्रवास किया। और हमारे परिचय के आरम्भ में करीब

दो-तीन वर्ष में यह निर्णय भी हो चुका था कि जीवन-प्रवास भी साथ ही करेंगे। मैं तो कच्ची उम्र में ही सारा संसार समेट चुकी थी। फिर कभी उसका आकर्षण भी नहीं हुआ। हरविलास का अभिगम भी शुरू से दीक्षा की ओर था। गांधीजी के विचारों से प्रभावित हुई। इसलिए **समाज-सेवा की लगन जागी और हमने साथ जीने का निर्णय कर लिया**। मृत्यु अलग करे तो कोई उपाय नहीं, बाकी आजीवन साथ रहेंगे।

करीब ४० वर्ष पहले देवप्रयाग में अलकनंदा और भागीरथी का संगम देखा था। बहुत ही स्मरणीय, आह्लादक और पवित्र संगम है वह। पहाड़ों के बीच सँकरी जगह से, खडकों के बीच से मार्ग निकालती हुई, उछलती-कूदती और जल सीकरों को उड़ाती हुई अलकनंदा एक तरफ से आ रही है। दूसरी तरफ से तनिक विस्तृत पट में बहती हुई, शान्त, गंभीर भागीरथी का जल बहता आ रहा है– उसका प्रवाह भी तेज नहीं। अलकनंदा और भागीरथी दोनों का जिस स्थान पर पवित्र संगम हुआ, उसे देव-प्रयाग कहते हैं।

यहाँ जीवन-जलों का ऐसा ही पवित्र संगम हुआ है। कान्ताबहन का जीवन प्रवाह सँकरी और जकड़नेवाली परिस्थितियों में से, अनेक मुसीबतों के दम घोंटू व्यवधानों में से मार्ग निकालकर अब मुक्तता में प्रविष्ट हो रहा था। और इधर से आकर मिला हरविलासबहन का शान्त-सरल जीवन-प्रवाह। उनके जीवन में गरीबी तो थी, लेकिन उसके अलावा उसमें खास प्रतिकूलता, संघर्ष या कोई रोमांचक अथवा भयजनक कुछ न था। अब दोनों प्रवाह एक-दूसरे से ओतःप्रोत होकर एकरूप हो गये।

अभी रहना तो अलग ही था, शिक्षा का व्यवसाय संभव था किन्तु स्कूल अलग थी। कान्ताबहन ने जैसा कहा, जुदाई कम-से-कम हो, ऐसा प्रयत्न रहता। छुट्टियों में साथ-साथ घूमना-फिरना साथ-साथ। कान्ताबहन दहिसर जातीं तो हरविलास भी साथ जातीं। हरविलासबहन रांदेर जायें तो कान्ता साथ होतीं। 'आप' में से तुम और तू कब हुए, पता ही न चला। जब साथ होतीं, बातें कभी पूरी न होतीं। और बातें न भी करें तो एक-दूसरे के संग आनन्द ही आनन्द होता।

गांधीजी का रंग दोनों पर ही चढ़ा था। अब साथ मिलने पर और गहरा होता गया। कान्ताबहन को गांधीजी गरीबों के मसीहा लगते। उनकी राह पर जाना गरीबों के लिए उपयोगी होगा, उनकी मदद होगी। इधर हरविलासबहन अपनी

समझ के मुताबिक जोड़ती जाती कि गांधी अर्थात् समाज-परिवर्तन, गांधी अर्थात् समाज में से गरीबी, शोषण, अन्याय को हटाना। वे **'हरिजन बंधु'** वगैरह पढ़कर गांधी विचारधारा में अधिक रुचि लेने लगीं। वे नये-नये कार्यक्रम ले आतीं, चलो, हम 'भूमिपुत्र' के ग्राहक बनें, रोज साथ मिलकर 'भूमिपुत्र' पढ़ने लगीं। विनोबाजी के अहिंसक-क्रांति के तंत्र-मंत्र को समझने लगीं। हरविलास कहती, चलो हम भी भूदान-शिविर में चलें, दोनों चल पड़तीं। हरविलास मणिभवन में शुक्रवार की प्रार्थना में नियमित जाती। अब कान्ता भी साथ होती।

बम्बई के भूदान कार्यकर्ताओं से दोनों का संपर्क हुआ। दोनों भूदान की मीटिंग में जाने लगीं। दादा धर्माधिकारी, विमला ठकार, नारायण देसाई वगैरह के प्रवचन सुने और दोनों के मन में **समाज-सेवा के मनोरथ** जागे। दोनों साथ मिलकर 'भूमिपुत्र' के ग्राहक बनाने लगीं। कंधों पर थैले टाँगकर बम्बई के घर-घर में साहित्य-बिक्री करने लगीं। कान्ताबहन ने एक बार अपने होस्टल में नारायण देसाई की गोष्ठी आयोजित की थी। उन्होंने स्वयं **संपत्तिदान** का पत्रक भरा, और दो चार लोगों से भी भरवाया। नारायणभाई की तीन दिन की नगरयात्रा में भी शामिल हुई थीं। दोनों साथ-साथ सर्वोदय सम्मेलनों में जाने लगीं और विनोबा की अमृतवाणी से सिंचित होने लगीं। दोनों तरुणियों के हृदय आर्थिक-सामाजिक-सांस्कृतिक क्रान्ति के इस आंदोलन में कूद पड़ने के लिए बेताब हो गये।

समाज सेवा में जीवन लगाना है, यह निर्णय तो दोनों के मन में हो ही चुका था। किन्तु जीवन निर्वाह का क्या करें? किसी का मोहताज तो होना नहीं है। ऐसा करें कि पहले कुछ रुपया जमा कर लें फिर निश्चिंत होकर समाज सेवा कर सकेंगे।

उन्हीं दिनों अखबार में एक इश्तहार पढ़ा-नैरोबी-(केन्या, अफ्रीका) में शिक्षकों की जरूरत है। ऊँचा वेतन-अन्य कई सुविधाएँ। तुरन्त अरजी करें।

दोनों ने अरजी की। इण्टरव्यू के लिए बुलाया। बम्बई म्यूजियम के नजदीक एक बड़े होटल में मिलना था। इण्टरव्यू लेनेवालों में एक भारतीय थे, एक अंग्रेज। इण्टरव्यू लिया, सवाल पूछे। डिग्री वगैरह सारी जानकारी पूछी। सर्टिफिकेट देखे।

दोनों चुनी गयीं। चार वर्ष का बांड भरना पड़ेगा। हरएक को बारह सौ वेतन, तथा आठ सौ रुपये ट्यूशन की गारंटी। कान्ताबहन के पास हैंडिक्राफ्ट का डिप्लोमा भी था-वहाँ उसकी बहुत जरूरत है, इसलिए उसके ५ सौ रुपये अधिक

मिलेंगे। हरविलासबहन से कहा कि यदि आप भी ऐसी डिप्लोमा कर लें तो आपको भी अधिक वेतन देंगे।

हरविलासबहन ने तीन महीने का कोर्स करके डिप्लोमा हासिल कर लिया।

बारह सौ, प्लस आठ सौ; प्लस पाँच सौ, पूरे ढाई हजार! दोनों को मिलकर महीने में पाँच हजार, साल के साठ हजार और चार साल के ढाई लाख। उसमें से कुछ घर पर भेजेंगे, दोनों का खर्च भी क्या ज्यादा होगा? एक बार यूरोप घूमकर यहाँ लौट आयेंगे और फिर आराम से समाज सेवा करेंगे। बचत में से निर्वाह होता रहेगा, किसी के आगे हाथ नहीं पसारना होगा। करीब सब तय हो गया, पासपोर्ट - वीजा वगैरह भी हो ही जायेगा।

कुछ दिन बीते होंगे। एक रात हरविलास के घर पर दोनों सोयी हुई थीं। काफी रात बीत गयी, किन्तु दोनों को नींद नहीं आ रही थी। दोनों एक - दूसरी से छिपाती रहीं, सोने का ढोंग करती रहीं, आखिर थककर उठ बैठीं।

"क्यों, बड़ी जोरों की नींद आ रही थी न? सोयी नहीं, बस करवट ही बदलती रही।"

"हाँ, मैं तो नहीं सोयी, तुम भी तो करवट ही बदलती रही।"

दोनों की चोरी पकड़ी गयी। दोनों के मन में बड़ी उलझन थी। मंथन चल रहा था। इसीलिए दोनों को नींद नहीं आ रही थी।

"देखो, मेरे मन में एक विचार आ रहा है," एक ने कहा।

"मेरे मन में भी विचार आ रहा है" दूसरी बोल पड़ी।

"क्या सोच रही है?" दोनों एक-दूसरी के विचार जानने को उत्सुक थीं। फिर एक - दूसरी से कहने लगीं - "तुम कहो – पहले तुम कहो।"

आखिर कान्ता बोली, "रुपया इकट्ठा करके फिर समाज सेवा करेंगे, ऐसी उलटी गंगा क्यों? बस, भगवान पर भरोसा करके कूद पड़ें।"

हरविलास कहने लगी, "मेरे मन में भी ठीक शब्दशः यही विचार आ रहा था। जिस पर लोग कहेंगे - हाँ, हाँ आप तो समाज सेवा करेंगी ही, आपको तो भविष्य की चिंता है नहीं। आपने तो इकट्ठा कर लिया है। मुझे लगता है, ऐसी सेवा में क्या मजा? उसके बदले सीधे ही कूद पड़ें।"

और उसी रात, किसीसे पूछे-ताछे वगैर, किसी से सलाह-मशविरा किये बिना दोनों ने ही फेंक दिये अफ्रीका जाने-कमाने के मुलायम विचार। दोनों को बड़ी शांति मिली। माथे का बोझ उतर गया। फिर सुख की नींद आयी दोनों को।

निर्णय तो वैसे क्षणभर में हो गया था, लेकिन बाद में शान्ति से विचार किया तब भी यही बात ठीक लगी। हृदय में प्रतीति हुई, जिसने जीवन दिया है वही सँभालेगा। ईश्वर-चरणों में सब समर्पित कर दें। ईश्वर में अडिग श्रद्धा रखें। वह हमें कभी कोई दुःख दे बुढ़ापे में, या बीमारी में तो मानेंगे वह हमारी कसौटी कर रहा है। जो भी हो, ईश्वर के प्रति हमारी श्रद्धा अटल रहे।

१९५७ का वर्ष था। भूदान आंदोलन पूरे जोश में चल रहा था। विनोबाजी ने ललकारा था जवानों को क्रान्ति में शामिल होने के लिए। उनकी ललकार इन दोनों के हृदय को छू गयी। नौकरी छोड़ी, घर छोड़ा, बम्बई छोड़ा, **भूदान आंदोलन में जुड़ने का निश्चय** हो गया।

हालाँकि कई लोगों ने इन्हें रोकने की कोशिश की। कई समस्याएँ बतायीं। बुजुर्गों ने कहा, "नौकरी क्यों छोड़ रही हो? नौकरी करते-करते समाज सेवा करते रहो।" भूदान का कार्य करनेवाले कुछ अग्रणियों ने भी सलाह दी : नौकरी करते-करते संपत्ति दान देते रहें। एकदम से ऐसी उतावली ठीक नहीं। अभी तुम्हारी उम्र छोटी है, अकेली है, फिर स्त्रियों पर तो अधिक मुसीबत पड़ती है। बीमारी, वृद्धावस्था आगा-पीछा सोचना ही चाहिए।

किसी ने कोई मध्यम मार्ग भी सुझाया, "ऐसा करें, आप में से एक नौकरी करें और एक आंदोलन में काम करे। इस तरह काम भी होगा और सलामती भी रहेगी।"

किसी का सुझाव था कि "अगर जाना ही है तो एक वर्ष का अनुभव लें। अभी एकदम से त्यागपत्र देना ठीक नहीं। एक साल की छुट्टी ले लें। वहाँ न जमा तो?"

किन्तु विनोबाजी के क्रान्तिमंत्र से स्पंदित हृदय अब किसी समझौते को कैसे मानते! ऐसी, आधी अधूरी बात से उनका समाधान संभव न था। विनोबाजी की प्रेरणा से उन्होंने ठीक समझ लिया था कि बंधन तो अब पूरे ही काटने होंगे। अब पीछे मुड़कर देखना कैसा?

हाँ, नारायणभाई देसाई ने दोनों से कहा, "स्वागतम्, स्वागतम्।"

कान्ताबहन के जीवन को गांधी और खादी का रंग देनेवाले उनके पुराने शिक्षक गुणवंतभाई नारकस ने उनके इस निश्चय का हृदय से स्वागत किया। "तू जरूर आंदोलन में जा! जो हम न कर सके तू करके दिखाना। **शुभास्ते पन्थानः** !"

कान्ताबहन और हरविलासबहन दोनों ने **नये मार्ग पर नवप्रयाण** किया। दोनों ने अपने स्कूलों से त्यागपत्र दे दिये। स्कूल छोड़ी, घर छोड़ा, बम्बई छोड़ी और गांधी विनोबा की प्रेरणा से समाज-सेवा की दीक्षा लेकर चल पड़ीं।

इसके बाद दोनों की जीवन-यात्रा साथ-साथ चली। अब न अलग रहना था, न अलग काम करना था। अब तो जीना भी साथ, काम भी साथ। दोनों के हृदय तो ओतप्रोत हो ही चुके थे। दोनों एक-दूसरी की पूरक बन गयी थीं। कान्ताबहन कहती हैं, "ईश्वर कृपा से हमारे बीच पहले से खूब मेल रहा। न कभी ईर्ष्या ने सताया, न अहंकार ने, न ही प्रतियोगिता ने। एक-दूसरी के अनुकूल होने की, प्रेमपूर्वक एक-दूसरी का जतन करने की वृत्ति सहज रूप से विकसित होती गयी।"

इसके बाद दोनों की जीवन-यात्रा का विवरण अलग-अलग देना संभव नहीं। हर काम में अधिकतर दोनों साथ ही रही हैं। विचार भी दोनों के समान हैं। दोनों का सहचिंतन होता रहा है। अक्सर हुआ है कि कोई विचार एक के मन में आया हो और उसके अमल में दूसरी ने अधिक हिस्सा लिया हो। इसलिए आगे के विवरण में एक का नाम लें तब दूसरी उसमें अभिप्रेत ही है, ऐसा माना जाय।

दो व्यक्तियों का ऐसा **पवित्र संगम** हुआ है। एक-दूसरी पर स्वयं से भी अधिक प्रेम करनेवाली यह जुगुल जोड़ी है। दोनों का जीवन मंत्र एक हो गया है। दो देह, एक प्राण ही मानो। दोनों इस हद तक एक रूप हो गयी हैं कि जब उनसे खास परिचय नहीं था तब कौन-सी कान्ता, कौन-सी हरविलास यह पहचानना मुश्किल हो जाता। कई बार नामों में गड़बड़ हो जाती। जिनका उनसे अधिक परिचय नहीं है, उनका भी ऐसा ही अनुभव है। दो व्यक्तियों का परम पुनीत संगम हुआ है। दोनों ने अब **साझे की जीवन यात्रा आरंभ** की है। ●

८

समाज सेवा के क्षेत्र में

गुजरात में तब नगरों को जोड़ती हुई एक पैदल नगरयात्रा चल रही थी। कान्ता-हरविलासबहन ने इस नगरयात्रा में शामिल होकर अपने सामाजिक कार्य का आरम्भ किया । बम्बई छोड़कर दोनों ११ जून १९५७ को बड़ौदा के नजदीक पांदरा पहुँचीं। उस दिन नगरयात्रा का पड़ाव वहाँ था।

कान्ताबहन ने उस दिन की डायरी में लिखा है, "१९५७ का वर्ष! जिंदगी में एक नया मोड़ आया है। विचार, भावनाएँ, अरमान सभी का कायाकल्प हो गया है। घर तो बरसों पहले छूट गया था। अब परिचित निज का स्थान भी छूट गया। रोज नयी जगह, पूरा समाज अपना घर । विनोबाजी ने जैसा कहा है चरैवेति, चरैवेति।"

इस नवजीवन को दैनंदिनी में शब्दबद्ध करने का प्रयत्न दोनों ने किया है। बिलकुल परिपूर्ण नहीं, टुकड़ों में १९५७ से १९६१ तक की डायरियाँ मौजूद हैं। इसलिए उन चार वर्षों का विवरण अधिकतर उन्हीं पर आधारित है।

समाज सेवा का पहला पाठ

डायरी कह रही है, "दोपहर को दो-ढाई बजे पांदरी पहुँचे। दोनों के पास सामान के तीन-तीन थैले थे। स्वयं उठाने की खास आदत नहीं थी। पड़ाव स्टेशन से काफी दूर था। सामान ढोने के लिए किसी को साथ ले लें ? नहीं, वह ठीक न होगा, पदयात्रा में अपना सामान स्वयं ही उठाना है तो आज ही से क्यों न आदत डालें? रास्ते में ५-६ जगह जरा आराम करते हुए पहुँचे – दोपहर का समय था। गला सूख रहा था। दोनों कंधों पर थैले लटक रहे थे, हाथ में एक थैली भी थी। देखने लायक दृश्य था। बम्बई का कोई परिचित देखता तो शायद पहचान भी न पाता। लेकिन मन में ऐसा अदम्य उत्साह था कि बोझ का भार नहीं

लग रहा था। वेशभूषा ऐसी थी कि हँसी छूट जाये। जैसे-तैसे पहुँच ही गये पड़ाव पर।"

मनोबल दृढ़ कर गयी थीं दोनों, इसलिए आदत पड़ती गयी और चलना सहज होता गया। "पांदरा से बड़ौदा दस मील की यात्रा थी। हम तो बम्बई वासी, कभी इतना चले नहीं थे। इसलिए अन्य साथी समझाने लगे कि हम बस से बड़ौदा पहुँच जायें। किन्तु हमारा निश्चय अडिग था। अगर अभी से बस में चढ़ने लगे तो भूदान का काम कर चुके। उत्साह, आनन्द से भरे हम बड़ौदा पहुँचे। बड़ौदा से टुंडाव सोलह मील। सुबह ५ बजे चलना शुरू किया। रास्ते में इतने सारे जामुन के पेड़ थे। जहाँ-तहाँ जामुन बिखरे थे। जामुन खाते-खाते, हँसते-खेलते चलते रहे। दोपहर को बारह बजे टुंडाव पहुँचे —आज पाँव में सख्त दर्द था। सूजन हो गयी थी और तलुए में जलन हो रही थी। सभी ने आग्रह किया कि बस में चढ़ जायें किन्तु मन नहीं मान रहा था। मन में एक ही दलील थी कि तिरसठ वर्ष के वयोवृद्ध अल्सर के रोगी विनोबा रोज बारह-पन्द्रह मील चलते हैं और तेरे पाँव जरा से क्या दुखे कि तुझसे चला नहीं जाता! इसलिए निश्चय कर लिया कि बस में तो नहीं ही बैठना है।

और भी बहुत-सी आदतें डालनी थीं, खुले में नहाना। बड़ी मुश्किल होती। आज तो हाथ-पाँव धोकर काम चला लिया-- नदी में नहाये किंतु जमा नहीं। पानी गंदा था। कपड़े धोने का पत्थर बड़ा छोटा-सा था। बालटी या छोटे टब जैसा कुछ था ही नहीं कपड़े धोने के लिए। खैर, अब तो इन सारी असुविधाओं की आदत डालनी थी। परेशान हो जायेंगे, तो कैसे चलेगा ?"

थाली पर बैठकर तो अभी और पाठ पढ़ने थे। "भूख ऐसी तेज लगती है कि स्वाद की फिक्र किये बिना जो मिले पेटभर खा लेते हैं। जिस अस्वाद वृत्ति को घर में विकसित नहीं कर सके, और जो खासी कठिन लगती थी, यहाँ अपने-आप ही सध रही है। कभी-कभी खाना बड़ी देर से मिलता—कसकर भूख लगती। कभी तो हँसकर भूख को सहना पड़ता। गरीबों की रोज बरोज की भूख के आगे हमारी २-४ घंटे की भूख की क्या चिंता ?-- ग्राम पंचायत की आफिस में दो बजे के बाद खिचड़ी और प्याज की सब्जी का भोजन मिला। प्याज खाने की आदत नहीं थी हर्षा को (कान्ता द्वारा हरविलास को दिया हुआ प्यार का नाम) लेकिन वह भी अब रसपूर्वक खा लेती है। आज दरिद्रनारायण के पकवान का स्वाद चखना था! रोंगटे खड़े हो जायें और आँखों में पानी आ जाय ऐसी तीखी तमतमाती दाल और

भात खाया—खाया क्या चखा। किन्तु उस भोजन की मिठास अनोखी थी। उन किसान पति-पत्नी ने अपार स्नेह से हमें खाना खिलाया था।"

कभी स्वयं पाकी बनना पड़ता, "आज हमने स्वयं रसोई बनायी। दो बजे खाना निपटा। चूल्हे पर खाना कभी बनाया नहीं। रांदेर में कभी 'चूल्हे पर पानी भी गरम करना पड़ता तो चिढ़ जाती, आज तो चूल्हे पर खाना बनाया।"

कभी विचित्र अनुभव होते, "गाँव के अग्रणी बाहर गये हुए थे। और किसी का तो हमारी ओर ध्यान ही नहीं था। एक अग्रणी के गाँव में, हम उनसे मिलने गये। उन्होंने हमें दूसरों के घर भेजा। उनके पास पहुँचे तो उन्होंने कोई उत्साह नहीं बताया। खाने वगैरह का तो किसी ने पूछा नहीं। हमारे कार्यक्रम की जानकारी तो उन्हें मिली थी। खैर, खाना न मिले, सभा तो करनी ही है। गाँव में घूमे, लोगों से मिले। सभा अच्छी हुई।"

सभा में बोलने का अभ्यास नहीं था। इसकी आदत भी डालनी थी। "आज हर्षा पहली बार किन्तु बहुत अच्छा बोली। घबराहट का कोई चिह्न चेहरे पर नहीं था। हम दोनों में यह एक बड़ी भिन्नता है। मुझे घबराहट जरूर होती—यहाँ एक सभा में मुझे बोलना था। काफी घबरायी। फिर भी आधे घंटे भाषण दिया। साथी कह रहे थे स्पीड बहुत थी। वैसे बोलना शुरू करने के बाद हिम्मत आ गयी थी।"

लोक-संपर्क में तो भिन्न-भिन्न लोगों से भेंट होती, "एक व्यवसायी सज्जन से काफी चर्चा हुई। वे बड़े तेवर से चर्चा करते रहे। उनके साथ पूरी टक्कर ली इससे मन में संतोष हुआ।"

लोगों के प्रति भाव में ज्वार-भाटा आता रहता है, "शिविर का समय साढ़े सात का तय किया था। आठ होने आये। फिर भी किसी के दर्शन नहीं। निराशा होने लगी। क्या शिविर में कोई नहीं आयेगा? किंतु धीरे-धीरे संख्या बढ़ने लगी। काम और प्रचार अच्छे प्रमाण में होंगे, ऐसी आशा बँधी।

लोगों के मन में कुतूहल तो होता ही, 'शादीशुदा हैं या कुँवारी'? यह प्रश्न तो जरूर ही पूछते। कान्ता की बात तो उनकी समझ में आती है, किन्तु मैं कुँवारी हूँ, इस पर उनका विश्वास न बैठता। लड़की कभी कुँवारी देखी है? एक शिक्षक ने कहा—यहाँ स्त्रियाँ आपको क्रिस्ती मानती हैं इसलिए सभा से लौटकर कुछ स्त्रियाँ स्नान कर लेती हैं। ठंड में माथे पर सफेद कपड़ा बाँधती हैं, कपड़े तो सफेद हैं ही इसलिए स्वाभाविक है कि क्रिस्ती मान लें। चूड़ी-मुक्त हाथ कुंकुम-मुक्त ललाट, देखकर गाँव के लोगों को आश्चर्य होता।

परन्तु मन मस्त हुआ, फिर क्यों डोले? मन में अनेक तरंग उठते रहते हैं। कैसा आनन्द। रोज नये घर में भोजन, रोज नये मकान में रहना, रोज नयी जगह शयन, रोज नये-नये लोगों से परिचय। ऐसा आनन्द और ऐसी मौज राजा-महाराजाओं के नसीब में ही होगी क्या?

कर्मठता और कर्मकुशलता की झलक

एक संत भ्रमण कर रहा है। उसका क्रान्ति-संदेश घर-घर पहुँचाना है। उसके लिए 'भूमिपुत्र' के ग्राहक बनाना, साहित्य का प्रचार करना है। साहित्य-बिक्री काफी हुई। जन संपर्क हुआ। सभा में भी पुस्तकें बेचीं --आज तो ऐसी जगह गये जहाँ जिन्दगी में कभी गये नहीं थे। प्रथम तो एक पान-बीड़ीवाले भाई से मिले। उन्हें विचार समझाया। दो-तीन किताबें उन्होंने ली। फिर होटलवाले के यहाँ गये। बाद में लाजवाले की लाज में तथा नाई की हेयर कटिंग सैलून में गये। २-४ जगह संपत्तिदान का विचार समझाया, पत्रक भी दे आये। आज साहित्य-बिक्री का एक नया प्रयोग किया। एक ठेले में पुस्तक भर कर हम कुछ साथी बाजार बिस्तार में घूमे। हर दुकान पर विनोबाजी का विचार समझाने गये, और किताबें बेचते गये। अच्छे प्रमाण में काम हुआ। पड़ाव पर पहुँचकर रात को बारह बजे तक किताबों का गिनना, बाँधना, हिसाब चलता रहा। आज सुबह कोई बोल पड़ा, ग्रेज्युएट लड़कियाँ ठेला चलायें क्या यह क्रान्ति नहीं है? सुनकर मन प्रसन्न हुआ। लेकिन हृदयदेव ने झट मन की लगाम को काबू में किया – ऐसे अहंकार को पास फटकने न दो वरना कर्तव्यच्युत होने में देर न लगेगी। जागृत रहना चाहिए।

साहित्य का झोला उठा-उठाकर खूब घूमना हुआ। विचार क्रान्ति के लिए विचार फैलाना जरूरी है। १९६० में इन्दौर जाना हुआ। वहाँ भी एक स्थानीय कार्यकर्ता को साथ लेकर साहित्य प्रचार का कार्य किया। साहित्य के ६ बंडल उठाकर बाबूभाई के घर पहुँचे। साहित्य का काम बड़ी मेहनत का है। आज बहुत थक गये। वर्षा ऋतु है इसलिए पुस्तकों के लाने-ले जाने में भी कठिनाई होती है।

उन्हीं दिनों विनोबाजी की पदयात्रा में शामिल हुए। विनोबाजी का पड़ाव था भिंड शहर में। "कान्ता साहित्य प्रचार के लिए शहर में चली गयी है, मुझे लिखना था, इसलिए पड़ाव पर रुकी हूँ। वह करीब १२८० रुपयों की साहित्य-बिक्री करके लौटीं। महादेवीताई को पता चला। उन्होंने बाबा (विनोबा) से कहा। बाबा ने हमें बुलाया और पूछा कि इतना सारा साहित्य कैसे बेचा? कान्ता ने बताया कि दयानिधि कार्यकर्ता को साथ लेकर स्कूल-कालेज, बाजार वगैरह में

घूमी। किताबों के कुछ सेट बनाये हैं। इसलिए इतनी बिक्री हो सकी। बाबा ने कहा कि युक्तिपूर्वक काम करें तो वह आसान हो जाता है। इतने से समय में इतना ज्यादा काम किया, यह देखकर बाबा बहुत प्रसन्न हुए थे।"

इनके काम में एक अनोखी कर्मठता और कर्मकुशलता आरम्भ से ही झलकती थी। करीब सभी शिक्षक 'भूमिपुत्र' के ग्राहक बने। हमारे साथ घूमनेवाले मूलदेवभाई भी उत्साही हैं, काम करवाने का तरीका भी जानते हैं। इसलिए काम में सफलता हासिल होती है। 'भूमिपुत्र' के ग्राहक बनाने की कला कान्ता को हस्तगत हो गयी है.....'भूमिपुत्र' और साहित्य प्रचार के इस काम में परिश्रम काफी करना पड़ता है। किन्तु इस उपाय से सर्वोदय विचार हर घर में पहुँच सकता है।

परिश्रम से वे कभी घबरायी नहीं। पाँच-छह महीने नगर-यात्रा में रहने के बाद खेड़ा जिले को अपना कार्यक्षेत्र बनाया। बालासिनोर को केन्द्र स्थान बनाया। पूरे जिले में सतत घूमती रहीं। फिर विनोबाजी गुजरात आये। २२ सितम्बर १९५९ के दिन उन्होंने सोनगढ़ से गुजरात में प्रवेश किया और १४ जनवरी १९५९ को कसाणा से विदा ली। गुजरात में ११५ दिन उनकी पदयात्रा चली। दोनों बहनें विनोबाजी की गुजरात यात्रा में साथ रहें, ऐसा तय किया गया था। तब उन्होंने 'भूमिपुत्र' और साहित्य प्रसार का कार्य किया। खेडा जिले की यात्रा की पूर्व तैयारी की, सर्वोदय पात्र का काम किया। इन सबके कारण दोनों का पूरे गुजरात में परिचय हुआ।

इन चार छह महीनों में एक पराक्रम ही कर दिखाया इन दोनों ने। इतने अल्प समय में 'भूमिपुत्र' के ११ हजार ग्राहक बनाये। अजमेर सर्वोदय सम्मेलन में कान्ताबहन ने इस कार्य की जानकारी दी थी।

"बाबा महाराष्ट्र के बाद गुजरात आये थे, यह जानकर बहुत खुशी हुई। साथ ही अपनी जिम्मेदारी का अहसास हुआ। पंढरपुर में बाबा ने इच्छा व्यक्त की थी–'भूमिपुत्र' के पचास हजार ग्राहक होने चाहिए। भूमिपुत्र के द्वारा आध्यात्मिक विचार लोगों तक पहुँच रहे हैं, और आज उसने बापू के **'हरिजन'** का स्थान ग्रहण किया है। यह बात मेरे मन में रम गयी थी। बाबा की इच्छा तो मेरे लिए एक चुनौती थी। मन ही मन संकल्प कर लिया था कि भले ही मेरी शक्ति अल्प हो ११ हजार ग्राहक बनाऊँगी।

"खेड़ा जिले से आरम्भ किया। घर-घर जाकर लोगों को समझाती। कोई यदि

कहते कि बजट नहीं है, तो मैं उन्हें चाय, पान, बीड़ी के लिए होनेवाले खर्च की गिनती करवाती और कहती–भाई, उन सबके लिए बजट है और इसके लिए नहीं। मेरी बात का उन पर असर होता। कोई कहते 'भूमिपुत्र' आफिस में आता है, स्कूल में आता है। मैं समझाती कि घर में पड़ा होगा तो कभी बच्चे पढ़ेंगे, पत्नी पढ़ेगी, पड़ोसी या मित्र भी पढ़ सकेंगे। और वे मेरी बात मान जाते। कुछ लोग कहते–विनोबाजी आ ही रहे हैं, उनके दर्शन करेंगे, उनका स्वागत करेंगे। मैं समझाती–विनोबाजी का सच्चा स्वागत तो उनके विचारों के स्वागत से होगा न! इसलिए भूमिपुत्र का ग्राहक तो बनना ही चाहिए। हाई-स्कूल के विद्यार्थियों ने काफी योगदान दिया था। उन्हें विनोबा के विचार समझाती, दलित पीड़ित, शोषितों के लिए काम करने की प्रेरणा देती। विद्यार्थी स्वयं भी ग्राहक बनते और अन्य ग्राहक बनाने में उत्साह से मदद करते।

"सौराष्ट्र में एक अन्य प्रयोग किया। समृद्ध सज्जनों से मिलकर उन्हें विचार-प्रचार में मदद करने की अपील करती। उनसे कहती आप स्वयं ग्राहक बनें और अन्य दस-पन्द्रह व्यक्ति या संस्था, जो सक्षम नहीं है, उनके लिए आप चंदा भर दीजिए। इस तरह काफी सफलता मिलती। जिला लोकल बोर्ड के पास पहुँचती, उनसे विनती करती कि वे अपने सभी स्कूलों में 'भूमिपुत्र' भेजें। मेरी माँग वे खुशी से स्वीकारते और इस तरह काफी संख्या में ग्राहक बना सकी।"

लोक हृदय से एकत्व

इस तरह व्यापक विचार-प्रचार के कार्य में दोनों पूरी तरह से डूब गयीं। विनोबाजी की गुजरात यात्रा के बाद मुख्य रूप से खेड़ा जिले में घूमती रहीं। गुजरात के अन्य कार्यक्रम में भी हिस्सा लेती रहीं। किन्तु इस तरह भ्रमण करते रहने के साथ ही कहीं एक जगह स्थिर रहकर काम करने की इच्छा भी मन में जागती। डायरी में लिखा है :

"पहाड़ी की तलहटी में बसा हुआ आज का यह देहात बहुत सुन्दर लगा। इस गाँव में प्रवेश करते ही पहली नजर में ही प्रिय लगा। छोटी से (भूदान के साथ भगवानभाई कान्ता को बड़की और हरविलास को छोटी कहते) कह बैठी कि कोई ऐसा गाँव ढूँढ़कर, वहाँ स्थिर होकर कुछ दिन रहेंगे–जिन दरिद्रनारायणों के लिए काम करने चल पड़ी हूँ, उन के जीवन का असली प्रत्यक्ष परिचय तो अभी खास हुआ नहीं है। अभी तक जीवन तो शहरी ही है। काम यांत्रिक होता जाता है। गाँवों में जाकर गरीबों की कुटिया में पहुँचने की तमन्ना जागी है।"

यही तमन्ना मनोमंथन का कारण बनी। "कई दिनों से हम सोच-विचार कर रहे थे कि जिले में किस तरह काम करें, रहने का स्थान कौन-सा पसन्द करें, किंतु कुछ तय नहीं कर पा रहे थे—अब पक्का कर लिया है कि वाडासिनोर तहसील को जिले का केन्द्ररूप बना कर काम करें.... व्यापक विचार-प्रचार का महत्त्व हम समझते हैं किन्तु साथ ही कुछ प्रत्यक्ष ठोस काम भी करना चाहिए, ऐसा मन में आता है। हम अपनी सीमा समझते हैं। ग्राम विस्तार में रहकर कोई महान् क्रान्तिकारी परिवर्तन हम करेंगे, ऐसी महत्वांकाक्षा हमारी नहीं है। बस, एक बात मन में है कि लोगों से घनिष्ठ संपर्क द्वारा तादात्म्य साध्य करेंगे। हर महीने कुछ दिन व्यापक विचार-प्रचार के लिए भ्रमण करेंगे, बाकी दिन बलियादेव में रहेंगे, ऐसा अभी तो तय किया।"

बलियादेव बाडासिनोर से पाँच छह किलोमीटर दूर २०-२५ झोंपड़ोंवाला छोटा-सा गाँव है। अधिकतर लोग बारिया जमात के, चार-पाँच झोंपड़ियाँ हरिजनों की हैं। सितम्बर १९५९ के अंत में दोनों बहनों ने वहाँ अपना पड़ाव डाला।

"यों तो अक्सर भिन्न-भिन्न गाँवों में रहना हुआ है। किन्तु अपना घर सजाकर दोनों अकेले रहने का यह पहला मौका था। इस दृष्टि से आज का दिन हमारे लिए महत्त्वपूर्ण था—विधवा पंछीबहन अपने दो बेटों के साथ हैं। उन्होंने अपनी मिट्टी की झोंपड़ी हमें रहने के लिए दी है। खुले बरामदे में रहना है। एक पेटी में हमारा सारा असबाब समा गया है। दो झोले लटक रहे हैं, उनमें हैं हमारे कपड़े, और किताबें। पत्थर का चूल्हा, लकड़ियों का ईंधन है पकाने के लिए। जरा दूर एक कुँआ है, वहाँ से पानी लाते हैं। कुएँ में साँप देखा, बड़ा डर लगा। कहीं घड़े में न घुस जाये, इसका ध्यान रखना पड़ता है।......खटिया एक ही है, साथ ही सोते हैं दोनों। रात को कुत्ते के भौंकने से कभी चूहे की उछलकूद से नींद टूटती रही।

ग्रामजनों के जीवन से एकरूप होना है इसलिए उनके साथ खेत में काम करने लगे। खेती का काम सीखने की इच्छा तो थी ही। आज दोपहर को डोलीबा के खेत में कुछ काम किया। बाजरे और धान की कटाई सीखी। धूप सहन करने की आदत पड़ रही है.....आज मोघीबहन के खेत में चारे की कटाई करने गये थे—जितना ढो सके, माथे पर ले कर आये। उनके जीवन में प्रवेश करने के लिए काम का माध्यम उत्तम है... दादुभाई के खेत में सुबह निराई की। शरीर को खासी

कसरत मिल रही है ... आज बारह से पाँच तक का समय मंछाबहन के खेत में धान-कटाई में लग गया। पूरे दिन काम में व्यस्त रहते हैं, इससे संतोष होता है। स्फूर्ति भी रहती है। हालाँकि शारीरिक श्रम जरा ज्यादा ही हो रहा है, शरीर दुखता रहता है।

गाँव में पढ़ा-लिखा कोई नहीं। प्राइमरी स्कूल का शुभारंभ अब हो रहा है और वह भी राम भरोसे चलना है। ऐसी परिस्थिति में पुस्तकें किस काम की? काम द्वारा ही लोक-संपर्क और लोक-शिक्षा का काम करना था: "सब घरों के खेतों में जा आये। अब गाँव की सफाई और चौपाल बनाने का काम हाथ में लिया है..... चौपाल के लिए मिट्टी ढोने का काम तीन घंटे किया। अब श्रम करना उतना भारी नहीं पड़ता। आज दोपहर से चौपाल के पीछे पड़े हैं। बबलीबहन उत्साही हैं। जरा से काम में भी यहाँ तो काफी मेहनत करनी पड़ती है। स्कूल के बच्चे को लेकर एक चौगान की जगह साफ की । नन्हे-नन्हे बच्चे भी समूह में अच्छा काम कर सकते हैं। डेढ घंटे में तो काफी सफाई हो गयी। दोपहर को कताई करने मोंघीबहन के घर गये। कुछ बहनें इकट्ठी हुई थीं। बात से बात निकली और फिर तो कितनी ही बातें हुईं।"

गाँव में रहने लगे, इसलिए गाँव की परिस्थिति को समझने लगे: "जमीन बहुत ही कम है। कई लोग तो नजदीक क्वोरी में मजदूरी करते हैं। हरएक के पास जानवर हैं। दूध क्वोरी में बेचते हैं। परिवार में सभी, ६-७ वर्ष के बालक से लेकर वृद्ध तक, काम करते हैं, तब कहीं गुजर होती है।--भोजन में बाजरी की रोटी, राब या खिचड़ी, कुछ दूध। घी रोज के भोजन में नहीं। जानवर दरवाजे पर ही बाँधते हैं, इसलिए गंदगी बहुत होती है ... तीन-चार दिन से या कुछ लोग तो हफ्ते के बाद कपड़े धोते हैं। ... सफाई के अभाव में चमड़ी के रोग काफी हैं। कुछ अस्वच्छता तो जुगुप्सादायी है ... बच्चे एकदम गंदे और निर्वस्त्र रहते हैं ... गाँव की डेड़ सौ-दो सौ बीघा जमीन क्वोरी में चली गयी इसलिए सबकी जमीन कम हो गयी है।"

यों तो चौमासा खत्म होने पर था किन्तु पिछली बारिश ने अपना रंग दिखाया: "चौगान साफ करने का तय किया था, किन्तु अचानक मेघराज पधारे। कुछ दिन से बारिश नहीं थी, इसलिए कीचड़ सूख गया था। फिर सब पिचपिच हो गया। हमारे बरामदे में ४-५ जगह चूने लगा । टूटी-फूटी झोंपड़ियों में रहनेवाले गरीबों का जीवन नजर के सामने आया। शहर की पक्की सड़कों पर घूमनेवाले हमारे पाँव

जब जानवरों के गोबर-मूत्रभरे कीचड़ में या सँकरी गली में धँसते हैं, तो जी कैसा हो जाता है। किन्तु दो-चार बारिशें उस घृणा को भी धो डालेंगी।''

उन दिनों एक बार बम्बई में हरविलासबहन की माँ बीमार पड़ीं। उनके बुलावे की चिट्ठी लेकर वाडासिनोर से मनहरभाई आये। वाडासिनोर का तालाब छलका हुआ था। कच्चा रास्ता। कंधे-कंधे पानी में से चलकर वाडासिनोर पहुँचना पड़ा। मनहरभाई ने अपने दोनों हाथों से दोनों को पकड़े रखा और बड़े धैर्य तथा कुशलता से पार कराया था।

बलियादेव में रहकर आसपास के देहातों से भी संपर्क किया। दोपहर को परवडिया जाकर आये। एक बहन के बरामदे में चरखा खोलकर बैठे। इसलिए स्त्रियाँ और बच्चे इकट्ठा हो गये। फिर तो उनकी प्रश्नोत्तरी चली..... कल नजदीक के बोडोली गाँव जाना है, संपर्क के लिए, इसलिए वहाँ के शिक्षक से भेंट कर आये। वे शिक्षक हरिजन हैं, बुनकरवाडे में रहते हैं। उनसे मिलकर खेत में काम करने पहुँचे तो वहाँ की स्त्रियाँ हमसे लौट जाने को कहने लगीं। हमें आश्चर्य हुआ। तब एक स्त्री बोली – बहन, आप ढेड के घर गयी थीं ना, इसीसे मना कर रहे हैं। हम अपने तरीके से उन्हें समझाने लगे। कुछ बहनें हमारी बातें समझ सकीं और हमें काम करने दिया। हालाँकि दो-चार स्त्रियाँ तो हमसे दूर रहकर ही काम करती रहीं। दोपहर को भोजन का सवाल उठा। आज तो हमने रसोई बनायी नहीं थी। उनके साथ खेत में ही भात खाने की बात हुई थी। हमारे मन में शंका जागी कि काम तो साथ किया किंतु शायद साथ में खाने से इन्कार कर देंगे। लेकिन आश्चर्य कि सारी स्त्रियों ने हमारे साथ बैठ कर आनन्द से भोजन किया।

उनमें से दो चार स्त्रियाँ, जो हमारी बात समझ सकी थीं, वह रात्रिशाला का परिणाम था। आज शाम को हरएक के घर जाकर आये। रोज रात को एक घंटा भजन, पठन और प्रौढ़ शिक्षा के लिए इकट्ठे होने की बात कही...अब तो स्त्री वर्ग ८ से १० दो घंटे चलने लगे हैं। सोने में रात के ग्यारह बज जाते हैं... शिक्षा के साथ-साथ विनोबाजी की और अन्य कई बातें होती रहती हैं ... दिनभर की थकान के कारण शुरू में तो आलस आता, लेकिन स्त्रियों का उत्साह देखकर हमारा आलस और थकान भाग जाते। रात के वर्ग में बहनों की संख्या पुरुषों की संख्या से अधिक है .... रात्रिशाला नियमित चल रही है। बड़ी उम्र की अच्छी प्रगति कर रही हैं। आज १०-१५ स्त्रियों को लेकर डाकोर घूमने गये। उन्होंने तो पहले कभी गाँव से बाहर पाँव ही नहीं धरा था। उन्हें राजी करने में काफी

कठिनाई हुई थी। बाद में सब इतनी खुश हुईं कि हमें दोबारा ले जाइयेगा, ऐसा कहती रहीं। अब तो अन्य स्त्रियाँ भी बाहर जाने के लिए उत्सुक हुई हैं।

इस तरह ग्राम जीवन और ग्रामजनों के साथ एकरूप हो रही थी। काम से भी संतोष था: "हर बात में मन की मस्ती को टिकाये रखा है....यहाँ आने के बाद सूर्योदय और सूर्यास्त का दर्शन नियमित हो सका है। यह दर्शन अत्यन्त आनन्ददायी है। भलाभाई की पत्नी से काफी स्नेह संबन्ध जुड़ गया है। हम उन्हें माँ कहकर पुकारते हैं। दिनभर में ५-१० मिनट उनके पास बैठे बगैर चैन नहीं पड़ता। बहुत प्रेमल और मधुर स्वभाव की हैं। शाम को उनके पास गये थे। वे भी हमारी राह देखती रहती हैं। निखालस प्रेम से ऐसे मीठे संबन्ध बँधते हैं।

उस समय विनोबाजी **'सर्वोदयपात्र'** के काम को बहुत महत्त्व दे रहे थे। कार्यकर्ता का जीवन-निर्वाह सर्वोदयपात्र के द्वारा हो, ऐसी अपेक्षा व्यक्त करते थे। बलियादेव में दोनों बहनों का अधिकांश जीवन-निर्वाह वाडासिनोर में स्थापित सर्वोदयपात्रों के आधार पर हुआ। वाडासिनोर के मित्रों ने तथा मूक सेवक मनहरभाई गांधी ने इस जिम्मेदारी को निभाया। मनहरभाई बीच-बीच में अनाज इत्यादि जरूरी चीजें भी पहुँचा जाते।

पारिवारिक स्नेह संबंध

इस जुगल जोड़ी ने अपने सामाजिक कार्य के आरम्भ से ही कई परिवारों से प्रेम का रिश्ता जोड़ लिया था। बहुत से परिवारों में इनका प्यारभरा स्वागत होता था। स्वजनों की तरह वे सब इनको स्नेह से सँभालते थे, फिक्र करते थे। दोनों बहनों की सादगी, हार्दिकता और पवित्रता का अच्छा असर होने लगा था। अपना घर छोड़ा तो अन्य अनेक घरों के दरवाजे प्रेम से खुलने लगे थे।

"वाडासिनोर में पारिवारिक स्नेह का अनुभव होता है। शशिभाई का अपरंपार प्रेम मुग्ध करता है। लीलाबहन भी सगी बड़ी बहन जैसी लगती हैं। उनके आग्रह के कारण इस बार उनके घर रहे, आश्रम में नहीं गये। उनका पूरा परिवार अत्यंत भावनाशील और उदार दिल का है। अन्य कई कुटुम्ब भी हमारा ध्यान रखते हैं। घर छोड़कर निकलनेवालों को ऐसा प्यार का आधार न मिले तो अपने कार्य में सफलता मिलना कठिन हो जाये।

"आणंद भानुबहन के घर आये हैं। उन्होंने तो हमारी खबर ले ली। पूरे दो ढाई महीनों के बाद दर्शन हो रहे हैं, कोई चिट्ठी पत्री भी नहीं। भानुबहन को दीदी कहें या माँ! उनका और डा० दोशी का घर तो मानो हमारा पीहर है। आज

भी रोटी पर खूब मक्खन चुपड़कर खिलाया। हम तो सोने के लिए जल्दी ही छत पर चले गये थे–नींद से जगाकर दूध पिलाया! उन्हें तो ना भी नहीं कर सकते, डाँट जो पड़ जायेगी। उनके जैसी उदार अन्नपूर्णा बहुत कम होती हैं। ऐसे स्नेही उदार कुटुम्ब बिना घरबार के कार्यकर्ताओं को टिकाये रखते हैं।"

बड़ौदा से चलकर रात को दस बजे अहमदाबाद पहुँचे। सीधे हेमेन्द्रभाई के घर गये। हेमेन्द्रभाई और विमलाबहन दोनों बड़े भावनाशाली हैं। उनके पूरे कुटुम्ब से हमारी दोस्ती हो गयी है। खूब प्रेम से हमारी आवभगत करते हैं। अहमदाबाद में तो उनके घर जाना ही होता है। वे सब हमारी राह देखते रहते हैं।

लुणावाडा पहुँचे। प्राणलालभाई सात-आठ दिन से बीमार हैं। हम अपने सगे भाइयों को छोड़कर आये हैं, किन्तु उनसे भी बढ़कर जो भाई हमें काम के दौरान मिले हैं, उनमें से प्राणलालभाई एक हैं! वकील हैं! बड़े ही प्रेमल, नम्र, शान्त और बुद्धिमान। आज भी कहने लगे–"इस घर के द्वार आपके लिए सदा खुले हैं .... तीन वर्ष पहले अगस्त में नग के संग लुणावाडा आये थे –वह स्मरण ताजा हुआ। उससे जुड़ी घटनाएँ–सम्बन्ध स्मृतिपट पर उभर आये।"

यह घटना तब की है, जब दोनों बहनों को गुजरात आये दो महीने हुए थे। नगरयात्रा पहुँची थी लुणावाडा। छात्रालय में पड़ाव था। दोनों एक कमरे में सोयी थीं। आधी रात के बाद गाँव में कहीं भूत-प्रेत भगाने के लिए डुगडुगी बजी होगी। बम्बईवासियों के लिए तो यह नयी बात थी। कान्ताबहन के मन में बचपन से जमी हुई भयग्रंथि एकदम जाग गयी। उनके मन पर काफी असर हुआ और भूत-प्रेत का डर बैठ गया। कुछ दिन तकलीफ रही।

उस समय लुणावाडा में प्राणलालभाई ने दो-तीन दिन इन्हें बड़े प्रेम से अपने घर पर रखा। फिर वाडासिनोर में घनश्यामभाई के घर तथा बाद में कुछ दिन बौचारुण आश्रम में रहीं। फिर बोरसद से नगरयात्रा में जुड़ गयी। उन दिनों बड़ौदा के कार्यकर्ता जगदीशभाई ने बहुत प्रेम से सेवा की। उनके साथ भी दोनों बहनों का निकट का स्नेह संबन्ध जुड़ा, और वह उत्तरोत्तर विकसित होता गया। इस घटना का और रिश्तों का ऊपर उल्लेख किया है।

फिर डायरी में आगे लिखा है:

"जिस स्थान पर (लुणावाडा में) मानसिक शक्ति को तोड़नेवाली कुछ घटनाएँ घटित हुईं, उसी स्थान पर मनःशक्ति को मजबूत बनाकर काम करने का निश्चय भी दृढ़ हुआ।"

जमीन को पकड़ती जड़ें और विकसित होता कलेवर

सच में तो दोनों बहनों की जीवनयात्रा में दृढ़ मनोबल की कमी भी नहीं रही। हर मुकाम पर दृढ़ मनोबल के कारण अनेक व्यवधानों और मुसीबतों को पार करती हुई उनकी जीवन-यात्रा निश्चित दिशा में अनवरत आगे बढ़ती रही।

प्रवाह में ऐसे ही बहना नहीं किन्तु अपने विचारों का अनुसरण करना, बात गले न उतरे तो जबर्दस्ती मानना नहीं; चाहे जितनी टीका-टिप्पणी हो, उन के बीच अपने सिद्धांत पर टिके रहना, ऐसी दृढ़ता उनके व्यवहार में, बर्ताव में दृष्टिगोचर होती है। वे चाहे हर बात में अपना मन्तव्य जोर-शोर से प्रस्तुत न करें या दलीलबाजी न करें, किन्तु उनके विचार में दृढ़ता होती ही है। उनकी बाह्य साम्यता और स्वस्थता आंतरिक दृढ़ता का रूप है। कार्यकर्ता और लोकसेवकों के रहन सहन के बारे में सामाजिक जीवन के आरम्भ से उन्होंने पूरा विचार किया। इन चार वर्षों की डायरी में उसके उदाहरण मिलते हैं।

सेवकों को अपने त्याग, सादगी, संयम इत्यादि का दिखावा नहीं करना चाहिए, उसका ढिंढोरा नहीं पीटना चाहिए। सबके बीच हम असाधारण हैं, यह दिखाने के मोह से बचें, यह बात डायरी में अच्छी तरह लिखी है :

लोगों के बीच काम करते समय कदम-कदम पर अपनी विशेषता असाधारणता को आगे नहीं करना चाहिए। लोक-संपर्क में उससे विक्षेप खड़ा हो जाता है—साथ ही अपनी विशेषता ऐसी भी न हो कि लोगों को नापसन्दगी हो।

हमारे व्रत-नियम काम में बाधक न बनें, उसमें लचीलापन रखें :

"३० जनवरी को गांधीजी की हत्या हुई थी इसलिए हर महीने की ३० तारीख को हम उपवास रखते हैं। किन्तु अब पदयात्रा के दौरान या प्रवास में इस तरह उपवास करना उचित नहीं। इससे दूसरों को तकलीफ होती है। ऐसे मौकों पर व्यावहारिक दृष्टि से उपवास न करें, किसी महीने, किसी दिन कर लें ... अब ३० तारीख के उपवास के बदले हर शुक्रवार को एक समय खाने का रखा है। बिना फलाहार के उपवास से आजकल कमजोरी लगती है और गर्मी बढ़ने से आँखों में जलन होने लगती है। इसलिए यह मार्ग निकाला है।"

"आज गृहिणी को हमारे लिए फिर से रोटी बनानी पड़ी, यह अच्छा नहीं लगा। बहुत दुःख हुआ। उनके यहाँ भोजन में लड्डू बने थे। हमारा तो मिठाई न खाने का व्रत है। हमने बहुत कहा कि दाल भात काफी है, और कुछ नाश्ता हो

तो वह ले लेंगे, लेकिन गृहिणी नहीं मानी। इसलिए मन में आता है, कि मीठा न खाने का व्रत भी छोड़ दें। सहज रूप से जो थाली में परोसा जाय, खा लें। कम खाने से तो कोई हमें रोक नहीं सकता। और जहाँ पूर्व सूचना दे सके, वहाँ सादे भोजन का आग्रह रखें।"

अस्वाद के बारे में भी सही विचारधारा के दर्शन डायरी में होते हैं: "यहाँ आश्रम में देखा कि नाश्ते और दोनों समय के भोजन में काफी कतरब्योंत करते हैं। स्वाद का तो कोई ख्याल नहीं। यह ठीक नहीं लगा। मँहगा नहीं, परन्तु सादा फिर भी पौष्टिक और जरूरतभर का खाना तो उपलब्ध होना चाहिए।"

मोरबी पहुँचे। डायरी में लिखा है पहले दिन: "काम इतना था कि शहर में घूमने न जा सके, किंतु उसका अफसोस भी नहीं। घूमने का, देखने का मोह दिनों दिन कम होता जा रहा है।" दो दिन के बाद की नोंध:

"शाम को नारायणभाई के साथ सब समूह में घूमने गये। झूलता पुल देखने पहुँचे, लेकिन उसके लिए एक आने का टिकट लेना जरूरी था, अतः नहीं देखा। भूदानवाले पैसे का ऐसा खर्च कैसे करें। किंतु इस तरह देखने लायक चीज देखें नहीं, यह भी योग्य नहीं लगता। फिर दूसरी दृष्टि से विचार करती हूँ, तो इन सबका महत्त्व कम लगने लगता है।"

सादगी के नाम से सौन्दर्य दृष्टि को खत्म करना भी उन्हें ठीक नहीं लगता। "आज आश्रम में पड़ाव था। वातावरण अत्यन्त पवित्र था। गुलाब और मोगरे के अनगिनत फूल खिले थे। मेरी डायरी में फूलों का उल्लेख बार-बार इसलिए होता है कि फूल मुझे अतिशय प्रिय हैं। आखिर में मैंने और हर्षा ने फूलों की वेणी बनाकर पहनी थी।"

इनके दूध जैसे उजले कपड़े सबकी नजर में आते। उस पर टीका-टिप्पणी भी चलती। उसका प्रति भाव यों लिखा है: "आज... भाई हमारे कपड़ों की बहुत चर्चा में पड़ गये। हमें अच्छा न लगा। हमने भी अपनी बात दृढ़ता से कही। ठीक से और पूरी फिक्र न करें तो ऐसे उजले कपड़े नहीं पहन सकते। हम कोई धोबी से तो धुलवाते नहीं, इस्त्री भी करवाते नहीं। किन्तु कपड़े स्वयं धोने का आग्रह, तथा धोने की बालटी, जगह, सुखाने की डोरी वगैरह साफ है या नहीं, इसकी सावधानी, पानी का ठीक से उपयोग इत्यादि बारीक चीजों का ध्यान तो रखना ही पड़ता है। दिनभर उठते-बैठते भी ध्यान रखना पड़ता है। चाहे जैसी जगह पर बैठ

जायेंगे तो धब्बे लग जायेंगे। सादगी के नाम पर कपड़ों की बेदरकारी या गंदगी हमें पसंद नहीं। रंगीन कपड़े भी मैले तो होते ही हैं, उनका मैल दीखता नहीं, इतना ही। सफेद कपड़ा तो हमारे कान ऐंठता है और कहता है अरे, हम गंदे हो गये हैं। सादगी स्वच्छता से अधिक शोभायमान होती है, ऐसा हम मानते हैं। सफाई में खुदाई ऐसा हम कहते हैं न? .... इस तरह आज तो आखिर हमने सफेद कपड़ों पर लेक्चर झाड़ दिया। खैर, जरा उग्रता आ गयी थी, वह न आयी होती तो अच्छा होता।''

दोनों में से किसी की विवेकभूल हो जाय तो दूसरी सँभाल लेती है। रविशंकर महाराज का अनुसरण करके कान्ता ने बीच में चप्पल पहनना छोड़ा था। ''सोचा था उससे अधिक हिम्मत आ गयी है। बिना चप्पल चलने की। काँटे-कंकर काफी प्रमाण में हैं, फिर भी पाँवों की रक्षा हो ही रही है—अहमदाबाद जैसे शहर में डामर की सड़क पर धूप में चलना जरा कठिन पड़ता है। धीरे-धीरे आदत हो जायेगी।

किन्तु हरविलास को यह बिलकुल मंजूर नहीं। ऊँची पहाड़ी पर चढ़ना था। रास्ता पथरीला था। बिना चप्पल चलनेवाली कान्ता की कसौटी थी। सहनशक्ति के सहारे चढ़ गयी। चप्पल न पहनने में उसकी चाहे जितनी ऊँची भावना हो, मुझे तो यह बिलकुल पसन्द नहीं। उसके पाँवों की पीड़ा देखकर मेरा दिल भर आता है। उस पर कभी नाराज भी हो जाती हूँ। उसकी उच्च भावना की कद्र करती हूँ, लेकिन यह जरा भी पसन्द नहीं मुझे।''

—और फिर बार-बार कहकर हरविलास ने ५-६ महीने में ही कान्ता को फिर से चप्पल पहनवा दी।

इसी तरह शरीर की परवाह किये बिना काम में मरते रहना हरविलास को जँचता नहीं। उस बारे में उसका आर्डर तब से अभी तक चल ही रहा है:''काम करने की धुन में जीवन एकदम ही अनियमित हो जाये, यह खटकता है। अधिक लम्बे समय तक यदि काम करना हो तो अनियमितता बाधक होती है। .... दस-बारह घंटे की रखडपट्टी हो जाती है। थकान भी काफी आ जाती है। मानसिक रूप से भी हल्कापन नहीं रहता। यह ठीक नहीं ..... कान्ता जरूरत से ज्यादा खींच रही है अपने को। उसकी तबीयत की हमेशा चिंता रहती है ... वह अपने स्वास्थ्य की जरा भी परवाह नहीं करती, इसलिए ज्यादा तकलीफ पाती है। ... ऐसी ही आदत रखेगी तो जिन्दगीभर परेशान होगी ... शरीर के प्रति बेदरकारी मुख्य कारण है खराब स्वास्थ्य का। अतिशय काम का लोभ और कमजोर शरीर इन दोनों का

मेल कैसे बैठेगा? हर व्यक्ति का जीवन उसके अपने स्वभाव के मुताबिक चलता है, उसमें परिवर्तन करना अति कठिन काम है। ... रात कान्ता को काफी दर्द रहा। सुबह मुझे जो योग्य लगा, उसकी तबीयत के बारे में, मैं कहे बिना रह न सकी। हम दोनों को यदि समाज सेवा करनी है, अच्छी तरह करनी है, तो विवेक रखना होगा, शारीरिक शक्ति की मर्यादा को समझकर काम करना होगा। यदि वह शारीरिक शक्ति की मर्यादा का उल्लंघन करके इस तरह काम करेगी तो मुझे सत्याग्रह करना ही पड़ेगा। आज तो मुझे बड़ी चोट पहुँची। मेरी भावना की उसके पास जैसे कोई कीमत ही नहीं। सत्याग्रह का मार्ग अपनाकर ही उसके काम को मर्यादित करूँगी। मैंने इस बारे में बबलभाई से बात की। उन्होंने भी उसे समझाया।''

इस तरह बम्बई से भावनाओं का भंडार लेकर आयी हुई इन दो बहनों पर समाज सेवा का रंग चढ़ रहा था, और धीरे-धीरे उनका स्वस्थ स्वरूप प्रकट हो रहा था। गांधी बिरादरी के उत्तम सेवक और गुजरात के मार्गदर्शक रविशंकर महाराज तथा बबलभाई का स्नेह भी ये दो नवोदित समाज सेविकाएँ संपादित करने लगी थीं। बबलभाई ने १९६० में प्रकाशित अपनी पुस्तक **'जीवन सौरभ'** इन दोनों बहनों को अर्पण की है।

बबलभाई के प्रति इन दोनों बहनों के मन में अपार स्नेह और पूज्य भाव था:

''पूज्य बबलभाई के सत्संग का लाभ मिला। उनके साथ जीवन के कई प्रश्नों की दिल खोलकर चर्चा की। उनकी जीवन तपश्चर्या से हमें बहुत प्रेरणा मिली है। छोटी-छोटी बातों के बारे में भी बबलभाई बहुत सावधान रहते हैं। उनके जीवन में पुरुष और स्त्री दोनों के गुणों का समन्वय हुआ है। .... बबलभाई आज बलियादेव आये थे। बहुत-सी बातें हुईं। उनकी एक बात मन में बस गयी है। कार्यकर्ताओं में वृक्ष जैसी स्वतंत्र शक्ति होनी चाहिए। हरएक की जड़ें भिन्न-भिन्न हों तो हर कोई डटकर सीधा खड़ा रह सकता है।

बबलभाई बलियादेव आये थे। उसी दिन की डायरी में ऐसी भी नोंघ है: ''बबलभाई आये थे। उनसे बहुत-सी बातें करनी थीं इसलिए आज खेत में काम करने न जा सके। उनके जाने के बाद मंछीबहन कहने लगीं–बहन, आप तो मेहमानों के साथ बहुत देर बैठ गयीं। हमारे यहाँ तो मेहमान यदि आवें तो वे अपने बैठे रहते हैं और हम अपना काम करते रहते हैं। कैसा बारीक निरीक्षण करते हैं लोग! कितनी भी कोशिश करें, हम उनसे अलग पड़ जाते हैं। इसीलिए विनोबाजी

ने प्रयोग किया था आठ घंटे कताई करना, अन्य कत्तिनों जितना मुआवजा लेकर उसी में अपना गुजारा करना। उसके बिना हमारा श्रम वगैरह शौक रह जाता है।''

आत्म प्रतीति और समत्वदृष्टि

इन चार वर्षों के विहंगावलोकन से स्पष्ट दीखता है कि दोनों बहनें सामाजिक जीवन में अपना विशिष्ट स्थान बना रही थीं। उनका जो विकास होता रहा, उसकी झाँकी पर्याप्त मिलती है। उनके मूल तत्त्व का उद्दीपन दीखता है। डायरी में कई जगह उनकी आत्म प्रतीति के उदाहरण हैं। उन्होंने जीवन के प्रति जो समत्वपूर्ण दृष्टिकोण अपनाया, उसकी झलक भी है।

''संकल्प और सहजता का संतुलन देख सकते हैं यहाँ: किसी बात का संकल्प करें या न करें, इसके बारे में हरएक का मत भिन्न-भिन्न होता है। किसी को संकल्प-मुक्त जीवन अधिक सहज लगता है, किसी को जीवन की सहजता प्राप्त करने के लिए संकल्प शक्ति जरूरी लगती है। विवाह न करने का संकल्प किया, तब से बहुत निश्चिंत हूँ। पहले निश्चिंत नहीं थी, ऐसा नहीं, किन्तु मन पशोपेश में रहता था। संकल्प के कारण डाँवाडोल स्थिति से मुक्त हुई। संकल्प करने के बाद उसका भी कोई भार नहीं लगा। सहजता से ही जी रही हूँ।''

और कहीं लिखा है : ''कई बार मन में आता है कि फलाना संकल्प करूँ, वैसा संकल्प ले लूँ। किन्तु जब उसका चिंतन करती हूँ तो लगता है संकल्प बन्धनकारक हो जाता है। उससे तो सहज जीवन में ज्यादा आनन्द है। सहजता जीवन को अधिक सरल बनाती है।''

द्वन्द्वों को पार करने से ही जीवन सत्य का दर्शन होगा न!

व्यक्ति-निष्ठा और विचार-निष्ठा के बीच भी संतुलन रखा है। विनोबाजी के प्रति उनकी भक्ति को कौन नहीं जानता? डायरी में लिखा है: ''धीरे-धीरे बाबा की भव्यता, महानता, दिव्यता के अधिकाधिक दर्शन हो रहे हैं। आज उनकी वाणी सुनते हुए लगा ओह, ये मनुष्य हैं या देव! कैसा निर्मल हृदय है! जीवन के प्रति कैसी अद्भुत जागृति।''

एक जगह विनोबाभक्त से बात करने के बाद लिखा है; ''-... बहन से काफी बातें हुईं। भक्ति और निष्ठा से वे विनोबाजी का कार्य कर रही हैं। शक्तिशाली और आशास्पद कार्यकर्ता हैं। उनके हिसाब से उनकी निष्ठा विनोबाजी के प्रति अधिक है। यों तो सर्वोदय के कार्य में विचारनिष्ठ की अपेक्षा व्यक्तिनिष्ठ

कार्यकर्ता अधिक हैं। हालाँकि यह निश्चित बात है कि व्यक्तिनिष्ठा की अपेक्षा विचारनिष्ठा ही हमें टिकाये रखती है।"

फिर लिखा है: "बम्बई में भूदान में रुचि रखनेवाले कईं मित्रों के साथ आंदोलन के बारे में काफी चर्चा हुई। प्रत्यक्ष कार्य में चाहे न लगे हों, सर्वोदय विचार का उनका अभ्यास गहरा है। अच्छा विश्लेषण करते हैं। कोई भी काम करें, उसका पूरा विचार और चिंतन होना चाहिए वरना काम सतही रह जाता है। उसमें गहराई नहीं आ सकती।"

आत्मप्रतीति की बात: ब्रह्मचर्य दुष्कर है, किन्तु असंभव नहीं। कर्मयोग के साथ-साथ ब्रह्मविद्या की दिशा में प्रयाण करने का शुभ संकल्प किया है। तीव्रता के साथ पुरुषार्थ भी जोड़ना है। ... कुछ आध्यात्मिक पठन से मन की भूमिका ऐसी बनी है कि मूल बात समझ में आ गयी है। उसी से आत्मानन्द प्राप्त करने का प्रयत्न करना है। इधर-उधर भटकने से क्या मिलेगा?

आत्मैक्य की गहरी अनुभूति

काम के साथ-साथ इन दोनों के मन में ज्ञान और साधना की भूख बनी रही है। १९५९ में विनोबाजी ने बहनों के लिए पवनार में **ब्रह्मविद्या मंदिर** की स्थापना की। गुजरात की साथी कार्यकर्ता ऊषाबहन उसमें दाखिल हुईं। तब इन दोनों में से एक के मन में वहाँ दाखिल होने की तीव्र लालसा जागी थी। विनोबाजी के मार्गदर्शन में ज्ञानप्राप्ति और साधना का अनोखा मौका था। किन्तु दूसरी की ऐसी इच्छा नहीं थी। उसे लगता – आत्म साधना तो हर जगह हो सकती है। परमात्मा का स्मरण तो अभी भी सतत हो रहा है। साथ ही गरीबों के लिए, समाज के लिए उपयोगी काम कर रहे हैं। यह सब छोड़कर एक स्थान से क्यों बँधें?

काफी मंथन चला। एक जाये और एक न जाये, इसका तो प्रश्न ही नहीं था। जायें तो दोनों वरना कोई नहीं। '**एकत्व**' का बलिदान देकर वहाँ नहीं जाना था। साथ बैठकर गहराई से विचार-विमर्श करें, फिर जो निर्णय अधिक ठीक लगे, उसे दोनों ग्रहण करें।

गहरे सोच-विचार के बाद दोनों को लगा कि हम अभी जो कर रहे हैं, वही ठीक है। **सामाजिक कार्य के साथ आध्यात्मिक साधना** करते रहेंगे। व्यावहारिक दृष्टि से भी यही ठीक लगा। समूह बड़ा होगा तो समस्याएँ भी अनेक होंगी। नाहक का झमेला क्यों? उसके बदले अपने क्षेत्र में रहकर एकत्व की साधना जारी

रखें। आश्रम जीवन के चुस्त अनुशासन की अपेक्षा आज का मुक्त वातावरण अधिक माफिक है। इसलिए ब्रह्मविद्या मंदिर में शामिल न होने का निर्णय किया।

ब्रह्मविद्या मंदिर में जाने की अपेक्षा दोनों साथ रहें, इसका महत्त्व अधिक माना। यह निर्णय परस्पर समर्पण, एकात्मता और दोनों के व्यक्तित्वों के पवित्र संगम का द्योतक था। दोनों दिलों के पवित्र संगम की झाँकी डायरी में कई बार होती है:

"बम्बई में साथ नहीं रहते थे। अब साथ रहने का अवसर मिला है तो कभी अलग न हों ऐसी इच्छा है। छोटी और मैं काफी करीब आ गये हैं। अब एक-दूसरे के बिना काम करना अशक्य लगता है ... रोज-रोज नजदीकी बढ़ रही है–कुछ समय की जुदाई भी अखरती है।"

कार्य की दृष्टि से कई बार जुदा होना पड़ता था, तब एक-दूसरे की बहुत याद आती थी: मैं यहाँ अकेली हूँ, मेरा क्या होता होगा? यह सोचकर छोटी को बहुत चिन्ता होती होगी। लेकिन क्या करें ... अब तो दिन बीतते ही नहीं, एक एक करके गिन रही हूँ। छोटी की खूब याद आती है ... आठ महीने से भूदान का काम कर रहे हैं, पहली बार इतने लम्बे समय के लिए अकेली पड़ गयी–– अकेलापन बहुत अखर रहा है। ... रास्ते में चलते हुए कान्ता की याद आती रहती है .... दो दिन से बहुत याद आ रही है उसकी। क्या सोच रही होगी वह? अकेली-अकेली परेशान हो रही होगी। प्रत्यक्ष रूप से दूर हूँ लेकिन ऐसा लगता है मानो उसके बिलकुल नजदीक हूँ–

विरह के बाद मिलन कितना मीठा लगता है! कान्ता आज लौटी। जब भी मिलते हैं, हमारी बातें खत्म ही नहीं होतीं। कई बरसों बाद मिले हों, ऐसा लगता है ... डेढ घंटे बैठे रह गये, कुछ पढ़ा, बातें कीं, हँसे।

प्रेम का गणित निराला है–उसमें एक और एक का जोड़ दो नहीं होता–बाइस गुनी शक्ति का अनुभव होता है: "पहली ही बार हम दोनों की टुकड़ी बनी है। साथ काम करने में बड़ा आनन्द है। बोलने की शक्ति भी खूब खिल रही है, क्योंकि हम दोनों साथ होते हैं तो एक-दूसरे की गलतियाँ सुधार सकते हैं। ... आपस में करीब आ गये हैं। दिनोंदिन आत्मीयता बढ़ रही है। 'तू अपने दिल का दीपक बन जा' यह भजन सुमनभाई से सुना। अपने दिल का दीपक स्वयं बनूँगी ही। साथ ही मैं कान्ता के दिल का और कान्ता मेरे दिल का

दीपक बनेगी न? दोनों को मिलकर बहुत काम करना है, लोगों के हृदय तक पहुँचना है। हे अंतर्यामी! तू हमारे साथ है न!"

प्रेम एक-दूसरे के मात्र गुण देखे बिना, अच्छाई देखे बिना एक-दूसरे को स्वयं से अधिक प्रेम करता है। ऐसे ही प्रेम से एकत्व पुष्ट होता है। "हर्षा मेरे इन्तजार में बैठी रही। खाना भी नहीं खाया। कितना प्यार करती है वह मुझे। उसके प्रेम की ऊष्मा मुझे कितना आनन्द देती है। प्रभो! हमारे विचारों में सदैव समानत्व रहे, हम जिन्दगीभर साथ रहें, मुझे कम-से-कम प्रसिद्धि मिले, इस तरह मुझे जींना है। इस तरह जीने में काफी मनोमंथन होता है। प्रसिद्धि का मोह छोड़ना आसान नहीं। मन में एक ही इच्छा रहती है कि कान्ता खूब-खूब आगे बढ़े, उसके लिए यथा संभव हर प्रयत्न मैं करूँ, हालाँकि आगे बढ़ने में उसकी अपनी ही शक्ति काम आयेगी। फिर भी मेरा मन उसके विकासार्थ ईश्वर से प्रार्थना किये बिना रह नहीं सकता।

यही है न आध्यात्मिक साधना? प्रार्थना की। फिर कताई कर रही थीं, तब कान्ता ने विनोबाजी का प्रवचन पढ़कर सुनाया। विनोबाजी कहते हैं, "ब्रह्मविद्या के मानी हैं, आपका और मेरा दिल एक हो और आप सबके लिए मेरे मन में उतना ही प्यार हो, जितना प्यार मुझे अपने लिए है। मुझमें और दूसरों में कोई भेद नहीं है, इसका जिसे अहसास हुआ, उसे ब्रह्मविद्या का स्वाद चखने को मिला। इसी ब्रह्मविद्या की तरफ इन दिनों मेरा सारा ध्यान है।" बाबा के ये शब्द सुनकर हम दोनों के हृदय भावविभोर हो गये। ब्रह्मविद्या अर्थात् आत्मैक्य का अनुभव! दूसरों के साथ कितनी एकता सधेगी पता नहीं, कठिन काम है। किन्तु मैं और कान्ता तो ऐसे आत्मैक्य का अनुभव करते ही हैं।

इस तरह दोनों बहनों ने सामाजिक जीवन के प्रारम्भ से ही गुण-विकास की क्षमता प्राप्त की थी। सेवा कार्य उनके जीवन में आत्मसात् होता गया और वे दोनों एक-दूसरे में ओतःप्रोत होती गयीं। सामाजिक क्षेत्र में समाज सेवा के पाठ भी सीखीं और आत्मैक्य की आराधना भी करती रहीं। ●

९

एकत्व - निश्चय पर दिव्य मुहर

विनोबाजी की प्रेरणा से अपार शक्ति का अनुभव होता। अब तक तो दूर रहकर उनकी प्रेरणा प्राप्त करते रहे। अब करीब जाकर प्रत्यक्ष परिचय की लालसा दोनों के मन में जागी थी। बम्बई छोड़ा, तब तक तो विनोबाजी को सम्मेलनों में केवल देखा, सुना और पढ़ा था, और फिर सीधे आंदोलन में डूब गयीं। गुजरात में बाबा की यात्रा में साथ तो रहीं – लेकिन तब इतना ज्यादा काम रहता कि बाबा के पास शान्ति से बैठने का, बात करने का अवकाश ही न मिलता। एक बार चलते-चलते पाँच मिनट का समय मिला था, तब एक सवाल पूछा था– "बाबा, आत्मा के कल्याणार्थ दीक्षा लेनी जरूरी है क्या?" विनोबाजी ने जवाब दिया था, "दीक्षा लेने से मात्र आत्मा का ही कल्याण होगा। समाज सेवा के साथ-साथ आध्यात्मिक साधना करते रहें तो आत्मा के कल्याण के साथ समाज का कल्याण भी कर सकते हैं।"

प्रेरणास्रोत के प्रत्येक परिचय की लालसा

बस, इतनी ही बात हुई थी – प्रश्न भी ऐसे ही पूछ लिया था। बाकी, इस बात को समझकर ही तो दीक्षा के बदले समाज-सेवा की दीक्षा ली थी। तीन-साढ़े तीन महीने बाबा की यात्रा में रहकर भी उनसे निकट परिचय नहीं हो सका था। बाद में भी गले तक डूबी रही काम में। किन्तु अब बाबा के सान्निध्य की तीव्र भूख जागी थी। अब इजाजत माँगी कि उसके साथ एकाध महीना रहना है। इजाजत मिलते ही बलियादेव से विनोबाजी की पदयात्रा में पहुँच गयी।

डायरी, अलीगढ़, ता० २७-४-१९६०: "गोधरा से देहरादून एक्सप्रेस में चढ़े, आगरा पहुँचे। दो-तीन घंटे का समय था इसलिए शाहजहाँ के प्रेमपुष्प ताजमहल के दर्शन कर आये। फिर टुंडला होते हुए अलीगढ़ पहुँचे। महेश्वरी कालेज में बाबा का मुकाम था। पहुँचकर सो गये।"

दूसरे दिन सुबह विनोबाजी के दर्शन हुए : "बाबा का स्वास्थ्य काफी सुधरा है। उनमें स्फूर्ति दिखाई देती है। बालभाई, जयभाई, मनोहर और राजम्मा उनके साथ हैं। महादेवीताई भी आज आयीं... बाबा ने हमें बुलाया। कुछ परिचय पूछा। यात्रीदल की सभी बहनों से कहा कि आगरा तक तुम सब साथ रहना, बाद में डाकुओं के प्रदेश में जानेवाला हूँ। वहाँ अधिक लोगों की व्यवस्था करने में तकलीफ होगी इसलिए आगरा से सब बहनें विदा लें—हमने कहा कि हम तो इतने बरसों के बाद खास तौर पर आपके निकट रहने आये हैं। उन्होंने हमें यात्रा में रहने की सम्मति दी। उन्होंने कहा व्यवस्था की दृष्टि से तुम्हें जाने को कह रहा था। खैर, तुमने अपनी बात हमसे मनवा ली।"

चम्बल प्रदेश में विनोबाजी की यात्रा जैसे-जैसे अधिक अन्दरूनी हिस्से में पहुँचती गयी, वे यात्रीदल की संख्या घटाते गये : "अधिक से अधिक बागी आत्मसमर्पण कर सकें, इसके लिए बाबा ने यहाँ की यात्रा का कार्यक्रम और एक सप्ताह बढ़ा दिया है। अधिक अन्दर के हिस्से में जाना है। आज बाबा ने हमसे कहा—तुम लोग भी अब भिंड से विदा लो, क्योंकि अतिशय गर्मी है, मेहनत भी अधिक करनी होगी। खाने में दूध इत्यादि भी बिलकुल नहीं मिलेगा। हमने हँसते हुए कहा, "इन सारे कारणों का हमें कोई डर नहीं। अभी और आठ-दस दिन रहना चाहते हैं।" बाबा ने कहा—चलो, तुम्हारे आग्रह के सामने मेरा आग्रह खत्म। बाबा अत्यन्त प्रेम से, स्नेह से एक पिता की तरह बात करते हैं।"

बाद में मन में विचार आया कि मीठे फल की जड़ को नहीं चूसना चाहिए : "कल जो बातचीत हुई थी, उसको स्पष्ट किया। हमने कहा कि हमारा विचार महीने-डेढ़ महीने रहने का था, किन्तु हम बोझ नहीं बनना चाहते। हम तो आपके सैनिक हैं, आप हमारे सेनापति—आप जो कहेंगे, हम तैयार हैं। हमारा कोई आग्रह नहीं।" यह सुनकर बाबा बोले, "तुम बोझरूप नहीं हो। यदुनाथ सिंह कह रहे थे तुम उनके साथ गाँवों में घूमना चाहती हो, तो जाओ, गाँवों में घूमो। मैं सेनापति हूँ किन्तु साथ ही बाबा भी तो हूँ। बेटियों के नाते अपने मन की बात कहने का तुम्हें अधिकार है।"

इस तरह इन दोनों को एक ऐतिहासिक घटना के समय विनोबाजी की यात्रा में रहने का सौभाग्य मिला। विनोबाजी के निकट आने के लिए जब गुजरात से चली थी, ऐसी कोई कल्पना भी नहीं थी। बस, विनोबाजी के साथ कुछ दिन रहना है; उनका निकट परिचय पाना है, इतनी ही बात मन में थी। जो सोचा था

वह तो हुआ ही, किन्तु एक ऐतिहासिक दिव्य घटना में अनायास शामिल हुए।

ऐतिहासिक दिव्य घटना के साक्षी

वह एक अभूतपूर्व घटना थी। विनोबाजी अपनी कश्मीर-यात्रा पूरी करके मई १९६० में इंदौर की तरफ बढ़ रहे थे। मार्ग में चम्बल प्रदेश से गुजरना था। वहीं से आगरा-इन्दौर का पैदल रास्ता था।

चम्बल के बीहड़ों का यह पूरा प्रदेश डाकुओं के जुल्मों से ग्रस्त था। यहाँ डाकू स्वयं को बागी कहते हैं। अर्थात् हम चोर डाकू नहीं हैं बल्कि अन्याय और जुल्म के विरोध में बगावत करनेवाले हैं। बागी बनने के अनेक कारण होते हैं। लेकिन ये बागी सैकड़ों खून करते, गाँवों पर हमला बोलते और लोगों पर भयंकर जुल्म ढाते। लोग बेहद परेशान और डरे रहते। इस समस्या को सुलझाने में पुलिस भी कामयाब नहीं हो रही थी।

इस प्रदेश के प्रसिद्ध डाकू मानसिंह के पुत्र तहसीलदार सिंह ने जेल से विनोबाजी को पत्र लिखा था और बागी समस्या को सुलझाने की विनती की थी। मध्य प्रदेश के डी० एस० पी० श्री कोहिली ने भी ऐसी भावना व्यक्त की थी कि शायद संत चरण रज के प्रताप से चम्बल के घाव भर जायें, हमारी शक्ति की अब मर्यादा आ गयी है।

चम्बल मे प्रवेश करते समय विनोबाजी ने स्पष्ट शब्दों में कहा था : ''बागी – समस्या को सुलझाना यह मेरा विषय नहीं है और मेरी जिम्मेदारी भी नहीं। किन्तु सर्वोदय-विचार तो गंगा जैसा है। इसमें डुबकी लगा कर कोई अपने पाप चाहे, तो जरूर धोये।''

मेजर यदुनाथ सिंह और अन्य साथियों ने बहुत मेहनत की। दूर-दूर अन्दर-अन्दर के जंगलों में जाकर बागियों से संपर्क किया। उनके परिवारों से मिलकर बागियों पर दबाव डलवाया और स्वेच्छा से आत्म समर्पण करने के लिए समझाया। जिनके नाम मात्र से बच्चा-बच्चा काँपता था, उन बागियों ने अपनी बन्दूकें संत के चरणों में धर दीं और जेल जाना स्वीकारा। अहिंसा, प्रेम और करुणा की यह विजय थी, एक दिव्य घटना!

जीवन के हर क्षण हरिस्मरण में डूबे रहनेवाले विनोबा को भी इस पूरी घटना के पीछे ईश्वरी संकेत का अनुभव हुआ। आकाशवाणी के संवाददाता को मुलाकात देते हुए उन्होंने कहा : "The whole atmosphere was Surcharged with

God's presence" सारे वातावरण में ईश्वरानुभूति की बिजली-सी कौंध गयी। माचिस की तीली में अग्नि अव्यक्त है, रगड़ते ही प्रकट होती है। अव्यक्त बिजली को सिर्फ सूक्ष्म बुद्धि जान सकती है, किंतु वह एक बार प्रकट हो जाये तो उसका सामर्थ्य हर कोई देख सकता है। मनुष्यता के दीप जगमगाती ऐसी घटनाएँ अव्यक्त रूप से बिराजे ईश्वरी तत्त्व को व्यक्त करती हैं।

इन दोनों का यह परम सौभाग्य था कि वे इस दिव्य घटना की साक्षी बनीं, उसमें शामिल हुईं : "कल से हमें मुकाम के आस-पास के गाँवों में जाना है। खास तो बागियों के परिवार की बहनों से भेंट करनी है। उनके घर की, जीवन की जानकारी हासिल करनी है और बाबा का संदेश उन तक पहुँचाना है..... सुबह लताबहन के साथ सात-आठ गाँवों में घूमे। कई जगह लोगों से समूह में मिले, और कई घरों में भेंट की।"

बागियों से मिलना-जुलना हुआ : "आज ग्यारह बागियों का दल आत्म-समर्पण के लिए आया। उनके कंधे पर बन्दूकें लटक रही थीं। उनका सरदार है लोकमन – लुक्का! लुक्का ने अपनी सत्तर हजार रुपयों की राइफल कंधे से उतार कर संत के चरणों में धर दी। रास्ते में हमने भी उससे कुछ बातचीत की.... सारे बागियों को दो चार दिन बाबा की यात्रा में रहने देंगे, फिर पुलिस को सौंपेंगे.... बंबई से एक बागी आया है। जिस पर पाँच हजार का इनाम है.... आज और तीन बागियों ने समर्पण किया। सबसे परिचय हो रहा है। उसकी शान्त-नम्र मुद्रा देखकर उन्हें डाकू कहने का जी नहीं करता। उन प्रिय भाइयों ने तो हमें छोटी बहन बना लिया था। फुर्सत मिलते ही निःसकोच उनके पास बैठकर बातें करते। उनके परिवार, जीवन के बारे में अनेक प्रश्न पूछे। वे सब प्रेम से हमारे साथ बातें करते। लुक्का का सदैव हँसता, तेजस्वी, खुमारीभरा चेहरा देखकर तो लगता है यह कोई शूरवीर है। —आज हम दोनों और गौतम लुक्का के घर गये थे। उसकी पत्नी, बच्चे, माँ सबसे भेंट की। सब बड़े खुश थे।"

आखिर तो उन्हें पुलिस को सौंपना ही था : "हमारे इन प्रिय बन्धुओं को आज सायं प्रार्थना के बाद विदा करना था। हम समझ नहीं पा रहे थे उनके प्रति अपना स्नेह कैसे व्यक्त करें। रक्षाबंधन का ध्यान आया। प्रभु इन्हें सच्ची वीरता और आत्मशक्ति दे। इन्होंने जब अपने दुष्कृत्यों का पश्चात्ताप किया है तो अब प्रभु इनकी रक्षा करे। जल्दी जेल से मुक्त हों और नव-जीवन का आरम्भ करें। हमारी ये सारी भावनाएँ हम राखी के माध्यम से व्यक्त करना चाहते थे – यदुनाथ

सिंह जी ने सम्मति दी और बाबा की सम्मति भी मिली। तुरन्त हाथ कते सूत की राखियाँ बनायीं।''

आत्म समर्पण का समारम्भ भिंड में आयोजित किया था : ''ऊपर छत पर सब इकट्ठे हुए। बागी विद्यारामभाई ने सुन्दर कीर्तन किया – सब उसमें शामिल हुए। रोज की प्रार्थना हुई। फिर कार्यक्रम का आरम्भ हुआ। सर्व प्रथम लुक्का ने बाबा के चरणों में सिर नवाया। बाबा ने आशीर्वाद दिये - आत्म समर्पण करके आपने उत्तम कार्य किया है। दो - चार दिन आप हमारे साथ रहें। सबसे प्रेमपूर्वक मिले। जैसा कि आप से पहले ही कहा था – अब आपको जेल जाना होगा। वहाँ रहकर भगवान की भक्ति करें, भगवान आपको सद्बुद्धि दें! कान्ता ने उसे कुंकुम तिलक लगाया, मुँह मीठा करवाया और कलाई में रक्षा (राखी) बाँधी । बड़े भाई ने छोटी बहन को स्नेहपूर्वक प्रणाम किये । निर्मल प्रेम का कैसा अद्भुत दृश्य था – फिर एक - एक करके सभी ने बाबा से आशीर्वाद लिये, हमने उनके माथे पर तिलक किया और हाथ में राखी बाँधी ... तिलक और रक्षा बन्धन की छोटी - सी विधि ने पूरे वातावरण को अधिक पवित्र, मधुर और गम्भीर बना दिया था।''

अब विदा की वेला आ गयी : ''विधि पूरी हुई, सब नीचे गये। पुलिस एक ट्रक लेकर हाजिर थी । बागीभाई एक के बाद एक ट्रक में चढ़ने लगे। बागी भगवान सिंह हमारे पास आये और कहने लगे – ''बहनो, क्या आप हमें जेल तक छोड़ने नहीं आयेंगी?'' उसने तो यदुनाथ सिंह जी की इजाजत भी माँग ली। हम तो चाहते ही थे। तुरन्त ट्रक में चढ़ गये। जेल के दरवाजे पर जाने का यह पहला प्रसंग था ... जीभर के सबसे मिले। उन्हें जेल भेजने का दुःख था हृदय में — आखिर विदा किया — हम वापस लौटे। बाहर के दरवाजे पर आये तो देखा अन्दर से ताला बन्द था। हमारे चेहरे देखकर कलेक्टर बन्धु हँसने लगे, आपको भी जेल में बन्द कर दिया है हमने तो। हमने कहा, हमें कोई हर्ज नहीं, आप साथ हैं, हम तैयार हैं। हमारे बाहर निकलने पर फिर वे लोहकपाट बन्द हो गये।''

तब से ये दोनों लड़कियाँ उन बागियों की बहनें बन गयीं। तीन-चार बार जेल में उनसे भेंट कर आयीं, पत्रव्यवहार द्वारा भी सम्पर्क बनाये रखा। हर रक्षाबंधन पर उन्हें राखी भेजती रहीं। लुक्का के साथ तो तीस-बत्तीस वर्ष के बाद भी ऐसा सम्पर्क बना हुआ है।

अखिल भारत सेवकत्व की दीक्षा

दोनों बहनों की विनोबाजी के साथ की यह चम्बल - यात्रा उनके जीवन का

एक शिखर बन गयी। बागी-समर्पण की घटना तो यादगार थी ही, उसमें से जीवन के लिए अमूल्य पाथेय भी मिला। विनोबाजी के साथ निकट परिचय हुआ। इसलिए व्यक्तिगत जीवन में और सामाजिक कार्य में विनोबाजी का प्रेमभरा प्रत्यक्ष मार्गदर्शन मिलने लगा।

बम्बई से गुजरात पहुँचकर तीन साल में इन्होंने जो काम किया था, उसकी विस्तृत जानकारी विनोबाजी ने प्राप्त कर ली। फिर बलियादेव में धूनी लगाकर बैठने की बात भी उन्होंने जानी। समग्ररूप से विचार करके विनोबाजी ने दोनों का मार्गदर्शन किया।

डायरी : "अभी किसी गाँव में या क्षेत्र में तुम स्थिर न बैठो। वह तो गढ़ा बन जायगा। तुम तो भ्रमण करती रहो। निष्कलंक, निर्भय, निर्विकार, निर्वैर बनने का प्रयत्न करो। तपस्या बारह वर्ष बैठकर भी हो सकती है, भ्रमण करते-करते भी हो सकती है। तुम लोग घूमते-घूमते करो। अभी तो तुम्हारी उम्र उनतीस-तीस की है। बयालीस की उम्र तक घूमती रहो। अभी बैठना अपना काम नहीं, चलते रहो और समाज में आग लगाती रहो।"

इस तरह बलियादेव की तो छुट्टी हो गयी। वहाँ अभी सात-आठ महीने पहले गये थे। उसमें भी बाहर तो जाते ही थे। अब बाबा ने उसे एकाएक छोड़ने की बात कह दी। इसे पचाना जरा भारी था लेकिन अब बहनों के लिए बाबा का मार्गदर्शन लगभग आदेश बन गया था।

अनेक कामों में से किस काम पर विशेष ध्यान दिया जाय? बाबा ने कहा कि तुम सब दुविधाएँ छोड़कर व्यापक विचार-प्रचार का कार्य करो – 'भूमिपुत्र' और साहित्य। बढ़ई बढ़ईगीरी करता है, लुहार लुहारी, तुम 'भूमिपुत्र' का काम करो। मीरा गाती थी न— **'संसारी नु सुख एवुं, झांझवाना नीर जेवुं रे, एने तुच्छ करी फरीए रे!'** अन्य कामों को गौण मानो, इस काम पर विशेष ध्यान दो। जब उलझन लगे तो चार-पाँच महीने में एक बार मेरे पास आ जाया करो। वह गुजराती कविता सुनी है न! ... **'मने वहालुं (प्रिय) लागे दादा रामजीनु नाम!'** इस बात को हृदय में धरकर घूमती रहो।

इस बात के बाद तीन महीने में एक प्रश्न खड़ा हुआ : "पूर्णचन्द्रजी ने चम्बल के शिविर और यात्रा में आने का न्योता दिया। आशादेवी ने शान्तिसेना के काम के लिए आसाम आने का आग्रह किया। इधर हम गुजरात में 'भूमिपुत्र' के काम में लीन हैं। अब बीच में ऐसे अन्य काम आयें तो क्या करें", हमने बाबा से पूछा।

बाबा ने कहा, 'भूमिपुत्र' का काम तो तुम्हारा है ही, किन्तु इस तरह प्रसंग आने पर गुजरात से बाहर निकलो, काम के लिए विशाल क्षेत्र भी मिलेगा और नये-नये अनुभव भी, अतः मेरी सलाह है कि कभी-कभी अन्यत्र भी जाओ।"

इससे यह स्पष्ट हुआ कि विनोबाजी नहीं चाहते थे कि दोनों किसी क्षेत्र से या कार्य से बिल्कुल बँधी रहें। विनोबाजी की अपेक्षा थी कि दोनों व्यापक क्षेत्र में जायें, विशाल अनुभव प्राप्त करें, विविध कार्यों में निपुणता हासिल करें और इस तरह दोनों के व्यक्तित्व का समग्र विकास हो।

विनोबाजी की एक और इच्छा थी। वे अक्सर कहते कि नेतृत्व का युग तो समाप्त हो गया, अब सेवकत्व का युग है। गांधी-युग में अखिल भारतीय नेता बहुत से हुए। अब अखिल भारतीय सेवक खड़े होने चाहिए। अनेक विविधताओं-वाले इस महाद्वीप से विशाल देश की भावात्मक एकात्मता को बनाये रखने का कार्य ऐसे सेवक ही कर सकते हैं। उत्तर का सेवक दक्षिण में जाकर काम करे, दक्षिण का उत्तर में जाकर। पूर्व-पश्चिम में भी ऐसा हो। इसलिए वे बार-बार ऐसे कार्यक्रम अभियान खड़े करते रहे। उनकी ख्वाहिश थी कि सर्वोदय सेवकों की एक ऐसी जमात खड़ी हो जो देश के किसी भी कोने में काम कर सके। ऐसे सर्वोदयी चाहे जिस कोने में पहुँचें, वहाँ की स्थानीय जनता को अपने लगें, उन पर जनता को पूरा भरोसा हो, प्रेम हो। दोनों बहनें भ्रमण करती रहें, उसके पीछे विनोबा की यही दृष्टि थी।

आज पलट कर देखें तो खयाल आता है कि दोनों ने विनोबाजी की इस इच्छापूर्ति का पूरा प्रयत्न किया। आन्दोलन-कार्य के निमित्त वे सारे प्रान्तों में घूमीं। पूरे देशभर के लोग उन्हें गुजरात की एक अनुपम जुगलजोड़ी के नाते प्रेमपूर्वक याद करते हैं।

१९६० के अन्त में दोनों का डेढ़ महीने के लिए आसाम जाना हुआ कुछ काम से। उस समय बंगालियों और असमियों के बीच बड़ा तनाव चल रहा था। काफी दंगे हुए थे। विनोबाजी की प्रेरणा से तब आशादेवी आर्यनायकम् के नेतृत्व में असम में शान्ति सेना का काम शुरू किया गया। उस काम के लिए गुजरात के जो चार लोग गये, उनमें से ये दोनों बहनें थीं।

डायरी : "आसाम पहुँचने में तीन दिन और चार रातें लगीं। गाड़ी में भीड़ से काफी परेशानी हुई। बहुत थक भी गये–सिलीगुड़ी वगैरह स्टेशनों पर बंगाली निराश्रित जहाँ अपनी टूटी-फूटी गृहस्थी लिये पड़े थे–देश के विभाजन के समय

ऐसे ही दृश्य दीखते होंगे--शरणिया आश्रम में शिविर हुआ – वहाँ के गुजराती समाज से संपर्क का काम हमें सौंपा गया... यहाँ के हाई कोर्ट जज श्री मेहरोत्रा से भेंट की। यू० पी० के हैं... दोपहर को गर्ल्स कालेज में गये थे... जिला कांग्रेस प्रमुख के यहाँ प्रार्थना सभा में गये... यहाँ के युवक कार्यकर्ता भुवनचन्द्रभाई से भेंट की... बिहारी सज्जनों की ओर से हनुमान मंदिर में आयोजित प्रार्थना सभा में गये... कल से पंजाबी लोगों से संपर्क करना है। दो स्थानीय बहनें हमारे साथ घूमेंगी। खाना भी उन्हीं के घर रखा है... यहाँ की व्यवस्था उतनी ठीक नहीं... सामूहिक जीवन में सहिष्णुता का अभ्यास तो करना ही होगा... बस में गौहाटी से नौगाँव के लिए चले... सोनाइवली गाँव में एक मुस्लिम के घर प्रार्थना सभा में गये... शाम की सभा बहुत अच्छी हुई। जनादादा और कान्ता बोले – इस गाँव में भी चुन-चुनकर बंगाली घर जला दिये हैं। तीन दिन तक गुंडाराज ही था... घर हो या दिल, जब टूटता है तो उसे फिर जोड़ना बहुत मुश्किल है... नाव से ब्रह्मपुत्र पार की... लौटते समय ट्रेन में, बरौनी तक पूरे चौबीस घंटे बोगी में हम दो ही थे।"

बम्बई से शिक्षिका की नौकरी छोड़कर निकल पड़ी थीं ये दो लड़कियाँ, तब सोचा भी नहीं था कि अखिल भारत सामाजिक सेविका बन जायेंगी। कान्ताबहन अपनी डायरी में लिखती हैं : "कुएँ की मर्यादित दीवारों के बदले अब अछोर सागर सामने था। स्थिर जल के बदले लहरों के थपेड़े भी थे। किन्तु इन लहरों के झूले में झूलते-झूलते हमारा चित्त भी असली मंजिल की ओर सफर कर रहा था।"

अनासक्त संन्यासी का मधुर वात्सल्य

विनोबाजी की प्रेरणा और वात्सल्य के कारण यह सब हो सका। दोनों बहनों का यह परम सौभाग्य है कि वे विनोबाजी की स्नेहपात्र बनीं। विनोबाजी तो औलिया अनासक्त साधक, किन्तु दोनों बहनें कहती है : "लोगों ने भले ही उन्हें सूखे-सूखे संन्यासी के रूप में देखा, हमें तो वे वत्सल संन्यासी ही लगे। उन्होंने हमें जैसा प्रेम दिया है, वैसा माँ-बाप नहीं दे सकते। साधारणतः अलिप्त भासित होने-वाले इन संत के मधुर वात्सल्य का ही अनुभव हमें हुआ है।"

ऐसी अनुभूति अन्य लोगों को खासकर बहनों को हुई है। ब्रह्म विद्या मन्दिर की सभी बहनों ने विनोबाजी का यह वात्सल्य भरपेट पाया है। इन दोनों बहनों की चम्बल-यात्रा की पूरे महीने की डायरी बाबा के वात्सल्य से सराबोर है।

डायरी : "आज बाबा ने कहा वैसे जवान लोगों के साथ तो मैं रास्ते में चलते

ही बातें करता हूँ, लेकिन तुम दोनों अपवाद हो। तुम तो मुकाम पर जब चाहो अपना परिचय देकर, जिस विषय पर बातचीत करना चाहो, कर सकती हो। इससे तुम्हें मेरा यदि डर लगता हो तो वह दूर हो जायेगा। तब मैंने कहा हमें आपका डर नहीं लगता। सुनकर बाबा ने कहा कि शेर के बच्चे शेर ही होते हैं। दूसरे कई लोग मुझसे घबराते हैं। आजकल बाबा कार्यकर्त्ताओं के व्यक्तिगत जीवन में खासकर बहनों की बातों में अधिक रस लेते हैं। यात्रीदल की बहनें मानो उनकी बेटियों की तरह अक्सर उनके पास जाती रहती हैं। बाबा एक पिता की तरह उनसे बातचीत करते हैं। राजम्मा पर बहुत स्नेह रखते हैं।

बाबा ने दोनों का परिचय पूछा : "कान्ता ने संक्षेप में अपना परिचय दिया और ब्रह्मविद्या के प्रति हमारी जिज्ञासा व्यक्त की। उनके मार्गदर्शन की अपेक्षा है ऐसा भी कहा । फिर बाबा ने बोलना शुरू किया।

"ब्रह्मविद्या मंदिर की दस-बारह बहनें और इस काम में लगी हुई तथा अन्य संस्थाओं में काम करती हुई कुल मिलाकर पूरे भारत की पैंतीस-चालीस बहनों का समूह मेरे ध्यान में है। बहनों को पुरुषों के बीच काम करना हो, तो आध्यात्मिक शक्ति विकसित करनी ही होगी। मैं अपनी युवावस्था में बहनों के लिए कुछ नहीं कर सका, अब उनकी शक्ति बढ़ाने का काम करना चाहता हूँ। कोईं मुझसे पूछे कि आप क्यों जी रहे हैं तो जवाब होगा कि मैं स्त्रियों के लिए जी रहा हूँ।

"मेरी माँ त्यागवृतिवाली और भक्तहृदय थी। पिताजी योगी और विज्ञानी थे। हम चार भाई बहनों में से तीन भाई ब्रह्मचारी निकले। किंतु हमारी छोटी बहन को तो दुनियादारी की दृष्टि से संसार बसाना पड़ा। तब से मेरे मन में विचार आया कि मेरी बहन ब्रह्मचारिणी क्यों नहीं बन सकी? क्योंकि हमारा समाज पुरुष-प्रधान है। हम तीनों भाई घर छोड़कर निकल गये, माता-पिता भी चुप रहे, समाज भी चुप रहा। किन्तु क्या मेरी बहन इस तरह घर छोड़कर निकलती तो कोई चुप रहता? ढूँढ़-ढाँढ़ कर उसे पकड़ लाते और ब्याह देते।

"मैं घर छोड़कर निकला तब मेरा शरीर कमजोर थां। मैंने अपने निश्चय के बारे में पिताजी से कहा। माँ ने शांति रखी, क्योंकि वह जानती थी कि यह लड़का अडिग निश्चयी है, इसलिए समाज में रह सकेगा। किन्तु मेरे जैसी निश्चयी कोई बहन हो तो उसके बारे में ऐसा विश्वास नहीं किया जाता। मेरे जैसा साधारण शक्तिवाला जो कर सका, वह सिर्फ साधारण शक्तिवाली स्त्री नहीं कर सकती, कोई असाधारण स्त्री ही कर सकेगी।

"मीरा असाधारण स्त्री थी, इसलिए इतना सब कर सकी। किन्तु मीरा तो सिर्फ भक्ति मार्ग में असाधारण रही। हमें तो स्त्री को समाज के बीच अनेक क्षेत्रों में खड़ा करना है। साधारण स्त्री भी पुरुष के समकक्ष खड़ी रह सके, इसके लिए उसकी स्वतंत्र शक्ति का विकास करना होगा। स्त्री को आध्यात्मिक अधिकार दिलवाने हैं। जो स्त्रियाँ ब्रह्मचारिणी रहने की इच्छुक हों, समाज सेवा करना चाहती हों, उन्हें पुरुषों जैसी प्रखरता प्राप्त करनी होगी। स्त्रियों में मृदृता, भक्ति, त्याग, संयम तो हैं ही, किन्तु उन्हें बुद्धि की प्रखरता तथा अन्य पुरुषोचित गुणों से भी संपन्न होना पड़ेगा। गीता में ज्ञान, कर्म और भक्ति तीनों को ब्रह्मविद्या की साधना के साधन कहा है। कर्मयोग का अनुभव करते-करते भी ज्ञान और भक्ति की साधना हो सकती है।"

इस तरह हम देखते हैं कि विनोबाजी ने दोनों बहनों के व्यक्तिगत जीवन में गहरी रुचि ली और दोनों पर अपार वात्सल्य बरसाया। बाबा ने कान्ताबहन के जीवन संघर्ष, अविरत पुरुषार्थ और पराक्रम के बारे में सुना तथा दोनों बहनों ने दस साल से साथ रहने का निर्णय किया है और घर-बार छोड़कर आंदोलन में कूद पड़ी हैं, यह सब जाना। स्त्री शक्ति के परम उत्कर्ष की लालसा रखनेवाले इस संन्यासी के मन में इन दोनों के लिए स्वाभाविक वात्सल्य का झरना फूट पड़ा। दोनों के जीवन में उनकी गहरी रुचि हुई। उन्होंने इन बहनों की साधना का मार्ग प्रशस्त किया।

सहजीवन, सहयोग और सहचिन्तन द्वारा सामूहिक साधना

"तुम दोनों की मित्रता मुझे बहुत प्रिय लगी। मनुष्य को जीवन में प्रेम और आधार चाहिए, वह परस्पर मैत्री में मिलता है। पुरुष और स्त्री विवाह द्वारा आधार और प्रेम प्राप्त करते हैं और उसके मोहकचक्र में फँस जाते हैं। परन्तु दो स्त्रियाँ अथवा दो पुरुष मित्र के नाते साथ जियें तो उनकी शक्ति बढ़ेगी और समाज को भी उसका लाभ मिलेगा। दोनों के बीच मतभेद भले ही रहे किन्तु चित्त सामूहिक हो, हृदय एक हो। पवनार की बहनों से भी मैं यही कहता हूँ कि चित्त सामूहिक बनाओ। देखने में आता है कि हम सामूहिक काम तो कर लेते हैं किन्तु सामूहिक चित्त नहीं बना सकते। हमें यह साध्य करना है।

फिर बहनें यात्रा से जल्दी चली जायें, ऐसी जो बात हुई थी, उसे याद करके बोले: "तुम सबके बारे में अपनी विशेष जिम्मेदारी समझता हूँ। व्यवस्था की

अड़चन के कारण जाने को कह रहा था, लेकिन जीत तुम्हारी हुई है। अब अधिक समय साथ रहोगी इसलिए समय निकालकर बातचीत करेंगे।''

डायरी में आगे लिखा है: ''बाबा करीब पन्द्रह मिनट तक उपरोक्त बातें करते रहे। बाबा को सुनने में बहुत ही आनन्द आता है। तुरन्त बाद में कार्यकर्त्ताओं की मीटिंग की। उसमें भी बाबा ने इस विषय पर कहा कि स्त्रियों की सुषुप्त शक्ति को जागृत करना है, स्त्री की आध्यात्मिक अक्षमता दूर करनी है।''

इन बहनों की बात बाबा के दिल में बस गयी थी:

''हमारी बात जानने के बाद बाबा कार्यकर्त्ताओं की सभा में और कभी सार्वजनिक सभा में भी हमारा उल्लेख करते थे। वे हमारी कद्र कर रहे हैं, यह उनके लिए स्वाभाविक है किंतु हमें यह सुनकर अहंकार से बचना है।''

इसके बाद हरविलासबहन ने अपना संक्षिप्त परिचय लिखकर दिया :

''आज रास्ते चलते-चलते बाबा से बातचीत हुई। अपना परिचय देकर मैंने उनका मार्गदर्शन माँगा।'' बाबा ने कई बातें कहीं : ''तुमने साथ रहना तय किया है, वह मुझे बहुत पसन्द आया है। कुछ कारणों के चलते ब्रह्मविद्या मन्दिर में दाखिल होने के बदले सह साधना का तुम्हारा निर्णय उत्तम है। सहयोग, सहजीवन और सहचिन्तन द्वारा साधना करना चाहती हो यह अच्छा है। तुम दो साथ रहो या तीन साथ रहो–सामूहिक साधना करती रहो।''

उनकी एकत्व की भावना को तथा उसके कारण ब्रह्मविद्या मन्दिर न जाने के निर्णय को भी बाबा के प्रेमपूर्वक आशीर्वाद मिले। सामूहिक साधना के कई व्यावहारिक पहलुओं की उन्होंने चर्चा की–

''साधना के प्रारम्भ में दूसरे के गुणों का चिन्तन करने के बदले गुण ग्रहण करें। दोष तो गुण के छाया रूप हैं। बाजार से लाये अनाज का कचरा हम साफ करते हैं। पकाने में कुछ निःसत्व हिस्सा पेट में जाता है सो मल रूप में निकल जाता है। बाकी में से शुद्ध खून बनता है। दूसरों के गुण-दोष दोनों का दर्शन होगा। विवेक के सहारे दोष दूर रखें और गुण ग्रहण करें। हम दोष परिहारी और गुणग्राही बनें। बापू के ग्यारह व्रतों में एक है अहिंसा। अहिंसाव्रत में अनिन्दाव्रत समाया है। फिर भी अनिन्दा को अलग से बारहवाँ व्रत मानना चाहिए। जीवन में हर कदम पर विवेक रखें। शारीरिक रूप से साथ रहते हैं, वह ठीक है, लेकिन सच्ची एकता तो आत्मा की है, उसे ही हर घड़ी दृढ़ करते रहना है।

साधना के लिए अमूल्य पाथेय

साधना के लिए व्यावहारिक मार्गदर्शन के साथ स्नेहपूर्ण सूचनाएँ भी दीं—

"शरीर हमारा साधन है। वह चले इतना पोषण तो मिलना ही चाहिए। उसके लिए परिश्रम भी करना चाहिए।"

"परंधाम में बहनों को रखने के पीछे मेरा उद्देश्य यही है कि उनमें विकर्म वृत्ति का विकास हो। कुछ समय तक वहाँ साधना करने के बाद वे प्रत्येक्ष क्षेत्र में काम कर सकती हैं और क्षेत्र की बहनें वहाँ जाकर भी रहं सकती हैं।"

आखिर में विनोबाजी ने कहा, "मैं किसी का गुरु नहीं हूँ, सबका मित्र हूँ। मित्र के नाते आपके लिए सब कुछ करूँगा।"

डायरी में लिखा है: "इस तरह बाबा से बहुत बहुत पा रहे हैं। उनकी बातें सुनकर अनोखी तृप्ति का अनुभव होता है।"

विनोबाजी ने प्रथम बैठक में स्त्री के लिए पुरुषरूप बुद्धि की प्रखरता की बात कही थी। अब इन दोनों ने देखा कि हम वैसा दावा तो कर नहीं सकते – यह तो हमारी कमी रही न! इन दोनों ने प्रांजलभाव से यह बात बाबा से पूछी: "बुद्धि की प्रखरता कैसे आये? वह तो कुदरती है न ? हम जैसे साधारण बुद्धिवाले क्या प्रयत्न करने से ऐसी प्रखरता प्राप्त कर सकते हैं?"

प्रश्न सुनते ही बाबा ने गीता के दसवें अध्याय के दो श्लोक समझाये :

तेषा सततयुक्तानां भजतां प्रीतिपूर्वकम्।
ददाभि बुद्धियोगं तं येन मामुपयान्ति ते॥
तेषामेवानुकम्पार्थमहमज्ञानजं तमः।
नाशयाम्यात्मभावस्थो ज्ञानदीपेन भास्वता॥

भगवान की भक्ति में जो सतत युक्त रहता है, उसे भगवान बुद्धि देते हैं। भगवान सदैव भक्त के साथ रहते हैं, और उसका अज्ञान ज्ञान रूपी दीप से दूर करते हैं। अतः निःस्वार्थ भाव से भगवान को भजते रहें। तुम दोनों साथ हो, इसलिए स्वाध्याय में भी एक-दूसरे की मददगार बनो। कोई तीसरा भी शामिल हो तो अच्छा ही है। बीच-बीच में मेरे पास भी आती रहो। रोज प्रभात समय एकान्त में, स्नान करने के बाद भोजन से पहले, तथा दोपहर आराम के बाद कुछ देर – इस तरह दिन में तीन बार थोड़ा-थोड़ा स्वाध्याय करती रहो।

चौथी बैठक में बाबा ने एक और बात कही: "आज दोपहर को बाबा के पास बैठे थे। आजकल जब भी बाबा के पास जाते हैं, वे किसी न किसी श्लोक का अर्थ समझाते हैं। आज कठोपनिषद् का एक श्लोक विस्तार से समझाया –

"देव व असुरों के बीच लड़ाई हुई। उसमें देव जीते। इसलिए देवों को घमंड हो गया कि वे अपने बल पर जीते। परमेश्वर ने जब यह जाना तो आकर वे देवों के समक्ष खड़े हो गये। देव परमेश्वर को पहचान न सके। उन्होंने अग्निदेव को बुलाकर कहा, इन्हें पहचानिए तो। अग्निदेव वहाँ आये। परमेश्वर ने अग्नि से पूछा – तुम कौन हो। उसने कहा – "मैं अग्नि हूँ। मुझमें पूरे संसार को भस्त करने की शक्ति है।" परमेश्वर ने कहा, "अच्छा मैं एक तिनका रखता हूँ यहाँ", जरा भस्म करके बताओ।" अग्नि ने बहुतेरा प्रयत्न किया, तिनके को जला न सका — इसी तरह वायु देव तिनके को उड़ा न सका। परमेश्वर को पहचान न सके। इन्द्र आया उसने भी नहीं पहचाना। आखिर उमा ने कहा कि आपने अपनी विजय पर अभिमान किया, इसलिए आपको पाठ पढ़ाने के लिए स्वयं ब्रह्म आये थे कि तुम्हारी विजय तुम्हारी नहीं, परमेश्वर की विजय है।"

इस पर से बाबा ने कहा कि हम जो भी काम करें उसकी सफलता का यश परमेश्वर को सौंप दें। अपनी जीत को परमेश्वर की जीत मानें।

"एक महत्त्व की बात, कठोपनिषद् में उमा अर्थात् एक स्त्री गुरुरूप में है। उसके मुख से ब्रह्मविद्या दी गयी है। राजम्मा को मैंने यही श्लोक लिख भेजा है। मैं चाहता हूँ कि तुम सब ब्रह्मविद्या-दायिका बनो।"

इस तरह विनोबाजी ने अत्यन्त वात्सल्यपूर्वक बहनों को अनमोल पाथेय दिया। इसका निमित बहनें बनीं। वैसे उनकी सीख हर साधक के लिए अमूल्य है। हमारे साथ, हमारी नजरों के सामने जीनेवाले एक परम साधक की यह अमूल्य देन है। हम सबके लिए उपयोगी है।

दोनों के एकत्व - निश्चय में ब्रह्मविद्या

और भी बहुत-सी बातें होती रहतीं; डायरी में नोंध है:

"शाम की सभा के बाद बाबा एकाध घंटा बाहर खुले में बैठते हैं, और जनरल बातें करते हैं। आज फिर से हमारे नाम पूछे, उस पर कुछ बातें कीं — विष्णुसहस्रनाम के बाद बाबा के पास बैठे थे, तब फिर हमारे नाम की चर्चा चलायी। उनके अर्थ समझाये, नाम कुछ लम्बे हैं ऐसा भी कहा।

सुन्दर संध्या उतरी थी। पड़ाव की छत पर बाबा बैठे थे। गपशप चल रही थी। हम भी वहाँ थे। हमें पास बुलाया और फिर हमारे नाम पूछे। हमने जब कहा–कान्ता और हरविलास। तो, कान्ता की तरफ देखकर बोले, "तुम्हारा नाम कान्ता नहीं हो सकता।" बात सही थी। जब हमने कहा कि मूल नाम तो चन्द्रकान्ता है किन्तु संक्षेप में कान्ता प्रचलित हो गया है, तब वे बोले, हाँ अब ठीक है–हमें बड़ा आश्चर्य हुआ कि बाबा ने कैसे जाना कि मूल नाम कान्ता नहीं!"

वहाँ से विदा होने तक भी नाम का रहस्य सुलझा नहीं।

चम्बल-यात्रा की डायरी में आखिर में लिखा है : "कल यात्रा से विदा लेनी है, इसलिए बाबा से भेंट करने गये। उन्होंने पूछा–पत्र तो लिखोगी न? हमने कहा कि हाँ, नियमित पत्र लिखेंगे और आपके मार्गदर्शन की अपेक्षा रखेंगे। हमारा मन होगा, तब आपके पास आयेंगे। सुनकर बोले, दोनों साथ आओगी न?"

संतजनों के हृदय अत्यन्त संवेदनशील होते हैं।

कोई सूक्ष्म संवेदन-स्पन्दन या कोई अमुक गुण उनके मन में बस जाये तो वे उस पर चिन्तन करते रहते हैं। एक तरह का जपयज्ञ-सा करते रहते हैं। दोनों बहनों के परिचय में सबसे खास बात जो उनके हृदय को छू गयी, वह थी दोनों के एकत्व की। इसलिए 'आवजो' कहते समय भी पूछा, "दोनों साथ आओगी न?"

गुजरात लौटकर दोनों ने उन्हें पत्र लिखा। ता० २३-५-१९६० को भींड़ से विदा हुई थीं। गुजरात से पत्र लिखा। उसका तुरन्त जवाब आया। निम्न पत्र पूरा गुजराती में लिखा था।

मध्यप्रदेश यात्रा

ता० १०-६-१९६०

चि० हरिश्चंद्र,

पत्र मिला। तुम दोनों मिलकर एक मनुष्य हो, ऐसा समझकर यह नाम दिया है। दोनों के नाम का पूर्ण मिश्रण इसमें आ जाता है।

मेरे सहवास में तुम्हें लाभ हुआ, यह तो अपेक्षित था, किन्तु हरिश्चंद्र का निश्चय मुझे बहुत सुहाया, और उसका मुझे भी लाभ हुआ। दोनों के एकत्व निश्चय में ब्रह्मविद्या छिपी है।

इस पहले परिचय में भी मुझे ऐसा नहीं लगा कि किसी अपरिचित से परिचय हुआ हो। ऐसा ही लगा कि किसी चिरपरिचित का परिचय ताजा हुआ। इस युग में आत्मकथा लिखने का रिवाज हो गया है। लिखते हैं शरीर-कथा। आत्मकथा तभी लिखी जा सकती है, जब उसके अनेक प्रवाहों (जन्म-जन्मांतर) का ज्ञान हो। उसके बिना इस अन्तिम हिस्से की कथा अधूरी ही रहेगी। कई लोगों से पहले परिचय में गाढ़ा स्नेह का अनुभव होता है। उस पर से पूर्व ज़न्म के परिचय का अनुभव कर सकते हैं।

मुझसे मार्गदर्शन की अपेक्षा तुम्हें है, वह योग्य ही है, ऐसा कबूल करता हूँ। वह कितने अंश में पूरी होगी, इसका आधार नसीब पर है। नसीब अच्छा रहा तो लिखित और अलिखित जवाबों से मार्गदर्शन मिलेगा।

यहाँ सब तुम्हें याद करते हैं। मैं समझता हूँ कि वे हमारे डाकू भी करते हैं।

— विनोबा का जयजगत्

बार-बार नाम पूछने का रहस्य इस पत्र से खुला। दो देह किन्तु एक जीवरूप में विचरण करनेवाली इन भगिनीद्वय का नाम भी एक ही होना चाहिए, ऐसी विनोबा की भावना थी। तत्काल न सूझा वह पत्र में प्रकट हुआ। दोनों के साझा व्यक्तित्व को एक नाम मिला – **हरिश्चंद्र !**

"दोनों के एकत्व-निश्चय में ब्रह्मविद्या छिपी है" यह एक ब्रह्मविद् के पवित्र आशीर्वाद थे। किसी पूर्वजन्म के ऋणानुबंध के कारण १९५१ में स्वयंभू आरम्भित इनकी एकत्व-साधना को, एकत्व-निश्चय को, मानवजाति के एक अनन्य समन्वयाचार्य की यह दिव्य मुहर लगी।

१०
एकत्व का साक्षात्कार

कान्ताबहन कहती हैं : "मुझे बचपन से ही रामनाम की लगन थी। उससे श्वासोच्छ्वास जैसा संबन्ध था। बीच में कुछ समय ऐसा भी आया, जब रामनाम के सिवाय सब असह्य हो गया था।"

तीनों बातें : अंनोखी लगन की, श्वासोच्छ्वास से संबन्ध की और रामनाम के सिवाय सब असह्य होने की–अब विस्तार से कहनी हैं। मूल 'नेगेटिव' को एन्लार्ज्ड करना है ठीक से। कान्ताबहन की कुछ आध्यात्मिक अनुभूतियों का वर्णन करना है, उनका विश्लेषण करना है।

सर्वप्रथम इस बारे में कुछ स्पष्टता करनी जरूरी है। ऐसी अनुभूतियों की चर्चा कहाँ तक उचित है, यह प्रश्न बहुत बार उठता है। इसलिए इस बारे में मेरी भूमिका स्पष्ट करना चाहता हूँ। पाठकों से निवेदन है कि इस प्रकरण के संदर्भ में नीचे के मुद्दे ध्यान में रखें–

(१) मेरा अभिगम

(१) सबसे पहले तो है कान्ताबहन की अपनी बात। वे अपने तईं ऐसी कोई बात या चर्चा करने के लिए तैयार नहीं हैं। उन्हें यह पसन्द ही नहीं। वे कहती हैं, भगवान का नाम लो, भगवान का काम करो, भगवान के मार्ग पर चलते रहो। चर्चा करने से क्या फायदा? यह तो साक्षात् अनुभूति की बात है। जो चाहे, स्वयं ऐसी अनुभूति प्राप्त करे। मैं तो नाम-स्मरण मानती हूँ। बुद्धि से यह सब समझना नहीं चाहती, शायद समझा भी नहीं सकती। वैसे भी मुझे साधारण मनुष्य ही बने रहना है, मुझे असाधारण नहीं बनना है। मैं एक समाज-सेविका हूँ–मुझे 'माताजी' के रूप में पूजा-अर्चा नहीं चाहिए। ये सारी घटनाएँ तो साधनामार्ग के अनेक मुकामों में से हैं, उसके सोपान हैं। इनसे क्या चिपके रहना? हमें तो आगे और आगे बढ़ते रहना है। यह तो एक अनंतयात्रा है, पर्वतारोहण जैसा है। जैसे-

जैसे चढ़ते हैं, नये-नये शिखर दृष्टिगोचर होते जाते हैं। ईश्वर को संपूर्ण रूप से पाना हमारे लिए संभव नहीं। इन सब चर्चाओं में पड़कर शायद मूल तत्त्व ही छूट जाये, एवं असलियत ही भूल जायें, तो मृगजल के पीछे ही दौड़ते रह जायेंगे।

यह है कान्ताबहन की भूमिका! ज्ञान मार्ग की नहीं, अपितु भक्तिमार्ग की साधिका होने की वजह से उनकी ऐसी भूमिका उचित है, ऐसा मैं नम्रता से स्वीकार करता हूँ। शुरू से आज तक उनकी भूमिका यही रही है, मैं उसका साक्षी हूँ।

(२) उनकी अनुभूति के बारे में हम भी किसी तरह की चर्चा करें तो उन्हें बहुत संकोच होता है। उन्हें पसन्द भी नहीं। इस संदर्भ में मैंने उनसे विनती की है कि इस अध्याय के लिए 'कान्ता' इस नाम को किसी विशेष व्यक्ति का नाम मानने के बदले यह एक साधारण नाम है, किसी एक साधक का नाम है, ऐसा मानकर चलें। अनेकानेक साधक हो गये, वैसे ही एक साधक की जीवन-घटनाओं का विवरण है, ऐसा मानें। ऐसी अनुभूतियाँ शब्दांकित हो जायें, तो मनुष्य के क्षितिज – विस्तार में, भौतिकवाद की कैद से मुक्त करवाने में, इन्द्रियों की मर्यादा को पार करके इन्द्रियातीत क्षेत्र में अवगाहन करने में, ईश्वरनिष्ठा दृढ़ होने में, जरूर उपयोगी हो सकती हैं।

पाठकों से खास निवेदन है कि इस अध्याय में 'कान्ता' नाम को विशेष नाम के बदले सामान्य नाम मानकर चलें। कभी व्यक्ति को केन्द्र से हटाकर घटनाओं तथा प्रसंगों को तटस्थ रूप से देखना, जाँचना और आँकना जरूरी होता है, जिससे तथ्यों का सार निकालने में समन्वयपूर्ण दृष्टि रख सकें। व्यक्ति और समाज की तालीम तथा **नूतन क्षेत्रों की खोज** इसी तरह होती है।

(३) यों भी इस विषय में लोग अक्सर पूछते रहते हैं। सुनी-सुनाई बातों पर से आधी-अधूरी चर्चा भी चलती रहती है। कान्ताबहन ने और हमने अभी तक अक्सर मौन ही रखा है। कभी किसी ने सच्ची जिज्ञासा से पूछा तो मैंने या हरविलासबहन ने थोड़ा बहुत कहा है, यथासंभव तो टालते रहे हैं। अब ये बातें असली स्वरूप में समाज के समक्ष रखी जायें, यह इष्ट है। यह विज्ञान का युग है, विज्ञान तथ्यों पर आधारित है। किसी क्षेत्र में ख़ास संशोधन के लिए उपयोगी तथ्य जिनके पास हों, उन्हें उन तथ्यों को समाज में सर्व सुलभ कर देने चाहिए, कोताही नहीं करनी चाहिए। बल्कि इसे अपना कर्तव्य समझना चाहिए।

आध्यात्मिक अनुभूति, साक्षात्कार इत्यादि की चर्चाओं में विनोबाजी अधिक

रुचि नहीं रखते थे। प्रत्यक्ष जीवन में उतरें-इसी पर उनका जोर था। फिर भी प्रसंग आने पर आध्यात्मिक अनुभूति की बातें करने में छुआछूत भी नहीं रखी। बल्कि कह देते कि यह कोई चोरी का माल थोड़े ही है जो छिपाते फिरें?

सच में तो अन्य महत्त्व की बातों की तरह ऐसी आध्यात्मिक अनुभूतियों के बारे में भी खुलकर चर्चा-विचारणीय होनी चाहिए। ऐसे साधक भी साथ बैठकर अपने अनुभवों का आपस में आदान-प्रदान करें, छानबीन करें। ऐसे चिन्तन-मंथन से साधकों के लिए सर्वसुलभ मार्गदर्शिका तैयार हो सकती है।

(४) आज एक तरफ ऐसी अनुभूतियों के नाम पर अनेक पाखण्ड पुष्ट होते हैं। दूसरी ओर इसकी प्रतिक्रिया में कोवुर कुल के तथाकथित सत्यशोधक मंडल गेहूँ के साथ घुन भी पीसकर सत्य-शोधन का मार्ग ही बन्द कर देते हैं। किन्तु **'अंध-श्रद्धा' जितनी गलत है, 'अंध-अश्रद्धा' भी उतनी ही गलत है**। हमें दोनों से बचना है।

इन दोनों अतिरेकों की अपेक्षा सत्य-शोधन का मार्ग बिलकुल भिन्न है। उस पर पूर्ण समत्व से, विवेकपूर्वक, निरंतर चलते रहना चाहिए। आज तो इस दुनिया में, खासकर पश्चिम के देशों में इन्द्रियातीत अनुभव तथा योगमार्ग के बारे में काफी वैज्ञानिक संशोधन चल रहे हैं। ऐसी परिस्थिति में हजारों वर्षों से विविध आध्यात्मिक साधनाओं से पुष्ट एक अद्वितीय संस्कृतिवाले हमारे देश में योग का विज्ञान खोजने में ढील नहीं होनी चाहिए। उसी प्रकार आध्यात्मिक अनुभूतियों की गंगोत्री तक पहुँचने में भी सुस्ती नहीं करनी चाहिए।

(५) 'चमत्कार आज भी होते हैं'—ऐसा डंका पीटने में या 'माताजी की जय हो'—ऐसी धूनी रमाने में मुझे कोई रस नहीं। बल्कि, ऐसी बातों को मैं 'चमत्कार' कहना ही नहीं चाहता। यह तो मानवदेह में स्थित अनेकविध पोटेन्शियालिटी में से, संभावनाओं में से एक है। इसका विज्ञान पातंजल योगसूत्र में मिलता है और वैसे इसकी शोध तो होती ही रहेगी। विनोबाजी कहते हैं कि इस सृष्टि में पंचेन्द्रिय-युक्त मनुष्य तक पहुँचकर ही उत्क्रांति का क्रम ठप नहीं हो गया है। दूसरे किसी ग्रह पर ६ या ७ इन्द्रियोंवाले मनुष्य हो सकते हैं या पृथ्वीनिवासी मनुष्य का भी ऐसा हो सकता है। **आगे और विकास संभव है।**

इसलिए अभी पंचेन्द्रिय के सीमित ज्ञान में जो न समाये, उसका मजाक बनाने की या झूठ मानने की बालिशता नहीं करनी चाहिए। कुछ ठोस हकीकतें हमारे सामने आयें, तो उन्हें वैज्ञानिक दृष्टिकोण से समझें।

आखिर, वैज्ञानिक दृष्टिकोण का अर्थ? अपनी परोक्ष मान्यताओं की अपेक्षा प्रत्यक्ष प्रमाण को अधिक महत्त्व देना और उसके कार्य-कारण संबन्ध को खोजने का प्रबल करना—यह वैज्ञानिक दृष्टिकोण का एक मुख्य तत्त्व है। विज्ञान का विकास इसी तरह हुआ है। यहाँ तो हम उलटा ही करते हैं कि अपनी परोक्ष मान्यताओं के आधार पर प्रत्यक्ष को झूठ-असम्भव मानकर उड़ा देते हैं, उन्हें बेकार समझते हैं। यह अभिगम अवैज्ञानिक है। इसे बदलना होगा। प्रत्यक्ष प्रमाण यदि निर्विवाद लगे, पूर्ण रूप से आधारभूत लगे तो अपनी परोक्ष मान्यताओं को बदलने की तैयारी रखें, उसके संशोधन में लगें—यही वैज्ञानिक अभिगम है।

(६) आदिकाल से मानव इस देह के, इस सृष्टि के, इस जीवन के रहस्यों की खोज में लगा है। इसके लिए उसने कभी अंतःकरण का उपयोग किया है, कभी बाह्य कारणों का। एक में से अध्यात्म पनपा, दूसरे में से विज्ञान। अध्यात्म का अपना भी एक विज्ञान है। उसका स्वरूप, उसके मूलभूत तत्त्व भौतिक पदार्थ विज्ञान से भिन्न हैं। इसलिए भौतिक पदार्थ विज्ञान के तराजू से अध्यात्म को तौलने का वृथा प्रयास नहीं करना चाहिए। उसके बदले अध्यात्म का विशेष विज्ञान विकसित करना चाहिए। मेरी एक मुग्ध मान्यता यह है कि मनुष्य ने अंतःकरण से जो पाया है और आगे भी पायेगा, उसकी यथासंभव कसौटी बाह्य कारणों से करने की कोशिश वह करता रहेगा।

—कान्ताबहन की आध्यात्मिक अनुभूतियों की बात करने के पीछे मेरा यही अभिगम है। मैंने जो कुछ प्रत्यक्ष देखा-समझा और अनुभव किया है, उसे समाज के सामने प्रस्तुत करना चाहता हूँ। इस क्षेत्र के संशोधन में शायद उपयोगी हो। हमारा सह-अध्ययन, सह-चिन्तन चले।

कान्ताबहन की आन्तरिक साधना-प्रक्रिया की कुछ झलक उनकी तब की डायरी में मिलती है। बाद में उनकी अनुभूतियों के समय हरविलासबहन और मैं हाजिर थे। हमने अपनी नजरों से सभी घटनाएँ देखी हैं, साक्षी भाव से अनुभूति की हैं। हरविलासबहन की डायरी में भी उन घटनाओं का कुछ वर्णन है। सबसे अधिक और आधारभूत सामग्री है विनोबाजी को लिखे पत्रों में। जब जहाँ जो घटित होता था, उसे तभी विस्तार से विनोबाजी को पत्र में लिख देते, और उनका मार्गदर्शन प्राप्त करते। उन पत्रों की नकलें तत्कालीन डायरी का काम करती हैं। फिर भी स्मृति से भी कुछ लिखना पड़ेगा। वह पूरी सावधानी के साथ पेश करने की कोशिश रहेगी।

एक बात और। साधारणतः ऐसी आध्यात्मिक साधना एकान्त में और किसी गुरु या ज्ञानी के मार्गदर्शन में चलती है। कान्ताबहन का किस्सा बिलकुल अलग है। हमारे कार्यों की पूरी जिम्मेदारी वहन करते-करते उनकी साधना चली है। यह सब जब पहली बार हुआ, तब हम बड़ौदा में दस-पन्द्रह कार्यकर्ता-साथियों के समूह में रहते थे। कुछ समय को छोड़कर कान्ताबहन स्वयं भी सामाजिक कामों में डूबी रहती थीं। साधना के दौरान किसी का सीधा मार्गदर्शन नहीं था। पूज्य मोटा, दादा धर्माधिकारी, विमलाताई ठकार और गुरुदयाल मल्लिक के पास बीच-बीच में जाकर कुछ उलझनों के बारे में मार्गदर्शन पाया। अलबत्ता, दूर रहकर पत्रों द्वारा और अभिध्यान द्वारा विनोबाजी का मार्गदर्शन लगातार मिलता रहा।

बाकी, हम तीनों में से किसी को इसके बारे में रत्तीभर भी जानकारी या अनुभव नहीं था। ऐसी साधना के बारे में शास्त्रीय दृष्टिकोण से हम अनभिज्ञ हैं। कान्ताबहन के भीतर से मानो कोई दिव्य मार्गदर्शक चलता रहता था। हरविलासबहन और मैंने उसमें यथा-संभव साथ दिया।

संक्षेप में, हमें जो कथा कहनी है, वह किसी चमत्कार की नहीं है। यह कथा किसी प्राप्ति के लिए शास्त्रोक्त विधि से की हुई साधना की भी नहीं है। यह तो एक साधारण व्यक्ति द्वारा साधारण जीवन जीते हुए तीव्र, तीव्रतर, तीव्रतम ईश्वर-स्मरण की कथा है। ईश्वर-स्मरण की पराकाष्ठा द्वारा सधी हुई अनन्य भावावस्था की कथा है। इस भावावस्था में हुई आंतरिक अनुभूतियों की ओर उसके प्रसाद रूप कुछ प्रकट निष्पत्तियों की कथा है।

(२) रामनाम की अनन्य लगन

कान्ताबहन कहती हैं: बचपन से ही मुझे रामनाम की लगन थी। ६-७ वर्ष की उम्र होगी तब। माँ की अंतिम प्रसूति थी। घर में ही हुई थी। रात से बहुत खून जाने लगा था। सब घबरा गये थे। लोग आ कर आश्वासन दे जाते, भगवान सब ठीक करेंगे।

"कोमल मन पर छाप पड़ी कि यह कोई तारनहार, मुसीबत में मदद करने-वाला है। और भगवान अर्थात् राम। बच्ची ने मन ही मन रामजी की प्रार्थना की, मेरी माँ को बचा लो तो पाँच हजार बार तेरा नाम जपूँगी। किसी तरह माँ बच गयी, और राम नाम ने मेरे मन में लंगर डाल लिया।

"इस तरह नासमझ उम्र से ही राम का नाम स्मरण करने लगी। उसका आरम्भ भय से हुआ। डर लगते ही रामनाम रटने लगती। दहिसर-बोरीवली के

सुनसान रास्ते जाते-आते मुँह में रामनाम रहता।

"फिर उसमें स्वार्थ जुड़ा, लालसा जुड़ी। परीक्षा में पास करोगे तो रामनाम लूँगी, पिताजी इस बात पर नहीं डाँटेंगे तो रामनाम लूँगी, फलानी वस्तु दिलवा दोगे तो रामनाम लूँगी, ऐसा सतत चलता रहता। कभी तो विशेष सौदेबाजी भी होने लगी। रामजी हर परीक्षा में पास होते गये, और रामनाम पर मेरी श्रद्धा कभी टूटी नहीं।

"इस तरह रामनाम का कारभार थोक में चलता, कभी तो सिर पर कर्ज चढ़ जाता। अभी पाँच सौ रामनाम रटना बाकी है, अभी हजार बाकी। इस चक्कर में कभी रामनाम भुला जाता और गिनती चलती रहती; मुंडी हिलती रहती। रात को बिस्तर में रामनाम जपती। लेटे-लेटे नींद आ जायेगी इस डर से कभी सब के सो जाने पर बिस्तर में बैठकर नाम-जप करती। बच्ची ही थी। आँकड़े गिनते-गिनते नाम भूल जाती, लेकिन भोले हृदय में नाम-जप भी चलता ही रहता शायद।

"धीरे-धीरे बड़ी होने लगी। मेरे संजोग अधिकतर प्रतिकूल ही थे। ऐसे संजोगों में रामनाम से कौटुम्बिक रिश्ता बँध गया। आंतरिक शक्ति के लिए, मन की शान्ति के लिए, अनेक प्रतिकूलताओं में स्वस्थता बनाये रखने के लिए रामनाम के सिवा मेरा कोई सहारा नहीं था। रामनाम जीवन के ताने-बाने में रच गया।

"समय के साथ समझ आयी कि रास्ते चलते नाहक समय बर्बाद करने के बदले नाम स्मरण करूँ। फुर्सत में रामनाम जपूँ, काम करते समय भी रामनाम रटूँ। हाथ-पाँव काम में व्यस्त हों, तब मन को क्यों रिक्त रखूँ? रामनाम लेते रहें तो शरीर-मन ताजा और प्रफुल्लित रहता है, ऐसी श्रद्धा बरसों से पुष्ट हुई थी, इसलिए रामनाम सतत चलता रहता। शायद कोई सोचे कि यह तो पागल है—भले सोचे! मुझे तो इससे बहुत शान्ति मिलती, तृप्ति होती और आनन्द का अनुभव होता।

"रामनाम लेते-लेते कभी आसपास का भान भूल जाती। जहाँ जाना होता, उससे आगे निकल जाती। रास्ते में कोई परिचित नजदीक से गुजर जाये, मुझे खबर न होती। बाद में कोई उलाहना भी देते—तुम तो बड़ी एबसन्ट माइन्डेड हो!

"एक प्रसंग याद आता है। तब मैं भूदान का काम करने लगी थी। दहिसर जा रही थी। विरार लोकल चूक गयी। बोरीवली से ट्रेन की पटरी पर चलने लगी, साथ में रामनाम तो चल ही रहा था। धड़धड़ाती ट्रेन आ रही थी डीलक्स, लम्बा नाला था मैं उस पर से गुजर रही थी। ट्रेन की कई सीटियाँ बजीं। आसपास के

लोग जोरों से पुकारने लगे। लेकिन यहाँ सुनता कौन? अंतिम क्षण कुछ भान आया। किंतु अब दौड़कर जाऊँ भी तो कहाँ? कूदकर नाले के पुल के गडर पर सिमटी खड़ी रह गयी। गडर दो-एक फीट चौड़ा होगा, नीचे गहरा नाला। रेल की पट्टी एक दो फुट दूर। गाड़ी तो फटाफट निकल गयी क्षणभर में। जाको राखे साइयाँ ...।"

इस तरह रामनाम के साथ श्वासोच्छ्वास सा सम्बन्ध हो गया था। बम्बई छोड़कर आंदोलन से जुड़ी, तब वह लुणावणावाला प्रसंग बना था। साथियों की प्रेमभरी तीमारदारी और उनके प्रयत्न से उस भयग्रंथि से मुक्त हुई थी। तब की बात कान्ताबहन की डायरी में लिखी है :

"आज जीवनमार्ग में नयी पगडंडी मिली। यह पगडंडी है ईश्वरशरणता की, प्रभुभक्ति की, प्रभुलीनता की, सर्वत्र हरिदर्शन करने की... आज से निश्चय किया है कि राम की दासी बनना है। पूर्ण श्रद्धा से, अटूट विश्वास से, भरपूर भावना से रामनाम जपूँगी। भजन गाऊँगी और एकाग्र चित्त से ध्यानपूर्वक भजन के अनुसार आचरण करूँगी। **आज से जीवन का ध्येय है ईश्वर प्राप्ति**। इस जन्म में, नहीं तो अगले जन्म में, उसके बाद के जन्म में। प्रयत्न आज से, अभी से। रामधुन आज से ही जीवन में उतारूंगी। मुझे भयग्रस्त करने में शायद प्रभु की कोई शुभ कामना, शुभ संकेत हैं ऐसा मानूँगी... यह जीवन इसी के लिए मिला है, प्रभु की यही मर्जी होगी। संसार में पड़ी होती तो घर की चहारदीवारी से बाहर न निकल सकती। अल्प काल के लिए संसाररूपी रंगमंच दिखाकर उसने मुझे धीरे से हटा लिया और जगत् के सेवाकार्य में लगा दिया। इसके पीछे भी अन्तर्यामी का शुभ हेतु होगा, ऐसा अब स्पष्ट दिखाई देता है। प्रभु के प्रति अडिग श्रद्धा ऐसी अडिग ही बनी रहे, यही आज से मेरी प्रार्थना होगी।"

वह घटना सीमाचिह्न बनी। उसके निमित्त से कान्ताबहन के अंतःकरण में मानो एक दृढ़ निश्चय हो गया। उस अर्से की डायरी में यह भावना बड़े भाव से बार-बार दुहारायी गयी है :

"साधारणतः चलते-चलते लगातार मैं गा नहीं सकती, लेकिन जाने कैसे आज गा सकी। श्वास बिलकुल न चढ़ा। रास्ते में धूल इतनी ज्यादा थी कि पाँव टखने तक अंदर घुस जाये। मुझे ऐसी धूल से बड़ा संताप होता है। किन्तु आज उस धूल में भी ईश्वर के अस्तित्व का ख्याल रहा, इसलिए वह बुरी न लगी। उस बारे में मन में नापसंदगी भी नहीं जागी... रास्ता बहुत ही खराब था—काँटे और

बबूल की शूल-सी सीकें बिछी थीं। मैं बिना चप्पल चल रही थी। फिर भी काँटों से बची रही। किसने बचाया? उस सर्वव्यापी सर्वज्ञ प्रभु ने ही तो! रामनाम के स्मरण से शान्ति का अनुभव करती हूँ, आनन्द भी। लौटते समय रामधुन भी मैंने गवायी। अब भगवान के भजन गवाने में बड़ा अच्छा लगता है—मैं तो रोज-रोज तेरी प्रार्थना करूँगी, भजन गाऊँगी और तेरे चरणों में लोटूँगी... रात को ग्यारह बजे सभा पूरी हुई। तीन मील चल कर १२ बजे वाडसोर पहुँचे। रात्रि का घोर अंधकार, हाथ में एक लालटेन और मुख में रामनाम का जप ! उस धुन में चलने की गति इतनी बढ़ गयी कि साथ में और लोग हैं इसका ख्याल ही न रहा। पाँवों में खूब शक्ति आ गयी थी। भाई लोग भी मेरी गति से नहीं चल पा रहे थे। शायद राम नाम रटन की शक्ति होगी! ... 'मेरे हठीले श्याम' ... बहुत ही सुन्दर भजन है। इस भजन को गाने का अधिकार भगवान के सच्चे भक्त को ही मिल सकता है... गुस्सा आये, तब रामनाम का रटना हो, तो काम आसान हो जाये। आजकल सुबह-शाम एकान्त मिलता है तब रामनाम ही याद आता है। 'हारे को हरिनाम', हे हरि! यह तेरा नाम भुलाना नहीं... खाते-पीते, उठते-बैठते, नहाते-धोते, या अकेले हों, तब रामनाम ही याद आता है। रामनाम का जप बहुत ही आह्लादक है, मन को आनन्द देता है... एकतारा हाथ में लेकर भजन गाने में वर्षों से अतृप्त रही इच्छा कौन जाने कब पूरी होगी? ... रात को उषाबहन ने मुझसे दो भजन गवाये– 'एक सहारो' और 'प्रेमल ज्योति।' भजन गाना बहुत अच्छा लगता है। मन को अपार शान्ति मिलती है। ... रामनाम ही सच्चे सुख की प्राप्ति का सही रास्ता, राजमार्ग बनेगा। रामनाम-रश्मि जीवन को प्रकाशित करेगी, उजासित करेगी। राम... राम... राम! ... हे राम! हृदय में धौंकनी-सी चल रही है। प्रेरणा स्रोत को अस्खलित बहाते रहना!''

१९५८ के इस अर्से में कान्ताबहन के मन में रामनाम और भजन धुन सवार थी। रामनाम अब जीवन में ओतःप्रोत हो गया था– बिलकुल श्वासोच्छ्वास की तरह। वह भीतर और भीतर पहुँचकर अन्तर् के द्वार खोल रहा था। मानो मुख में बसा रामनाम, अंतर में अलख जगाने लगा था।

क्यों धारण किया है यह मानव देह? किसलिए है यह जिन्दगी? मानव का अन्तिम लक्ष्य, ईश्वर-प्राप्ति या ईश्वर-साक्षात्कार ही हो सकता है। चाहे जहाँ काम करते हो, इस ध्येय की याद रहनी चाहिए। इस ध्येय तक पहुँचने का सर्वोत्तम साधन जन-सेवा के अलावा क्या हो सकता है! मुझे तो जन सेवा द्वारा ही ईश्वर को पहचानना है। एक बात समझ में आ गयी है, ईश्वर न तो स्वर्ग में

है और न पाताल में, वह तो हरएक के भीतर बसा है। जड़-चेतन सर्व में ईश्वर-दर्शन कर सकते हैं। हे अन्तर्यामी! यह सब तेरे हाथ में है। शक्ति देना, सच्ची राह दिखाना। मार्ग भूलूँ तो उँगली पकड़कर सही मार्ग पर ले जाना! ... छोटी-मोटी फालतू बातें छोड़नी पड़ेंगी अब, उसमें शक्ति का व्यय करना ठीक नहीं। 'पिता छोड्या, बन्धु छोड्या, छोड्या सगासोई' ... ऐसी कृष्णप्रिया मीरा की आदर्श मूर्ति को नजर समक्ष रखूँगी ... ईश्वर-अस्तित्व के प्रति मेरी निष्ठा रोज-रोज अधिक दृढ़ होती जा रही है। दया रूप में, प्रामाणिकता रूप में, नम्रता रूप में, त्याग रूप में, सत्य रूप में, अहिंसा रूप में, वह मानवमात्र के भीतर बसा है। और मानवमात्र में ही क्यों? वह तो प्राणीमात्र के रोम-रोम में बसा है। उसके नित्यचिन्तन से, मनन से, स्मरण से, उसके सातत्य का अनुभव करती हूँ।"

यह सिर्फ शब्दों की रंगोली या कल्पना का स्वैर विहार नहीं जान पड़ता। इसमें तो **भक्त हृदय की आर्त पुकार** सुनाई देती है। यह मात्र मुग्ध मनोरथ नहीं, ईश्वर दर्शन की तीव्र-तीव्रतर तड़पन है, लालसा है। अन्दर की मंथन प्रक्रिया सहज ही डायरी में प्रकट हो गयी है। बाह्य कर्म यथाक्रम चलते रहते, अन्तर् ईश्वरमय हो रहा था। इस ईश्वरमय का रंग बाह्य कर्मों पर भी अवश्य चढ़ता।

विनोबाजी के आंदोलन की बुनियाद भी ऐसी ईश्वरमयता ही थी। इसलिए कान्ताबहन के हृदय में छलकती ईश्वरमयता उनके आंदोलन-कार्यों में प्रकट होती। इन कामों में कान्ताबहन अपनी काया निचोड़ती रहीं, अपना हृदय सींचती रहीं। खेड़ा जिले का काम, 'भूमिपुत्र' के ग्यारह हजार ग्राहक बनाना, बलियादेव में लोक-हृदय से एकरूप होने की जहमत -- यह सब हृदय की भावना का साकार रूप था। ईश्वर आराधना थी।

इस अर्से का एक यादगार प्रसंग ता० १-२-१९५८ की डायरी में लिखा है: "आज का पड़ाव था 'ऊँची मांडल' गाँव में। सुन्दर जगह है, ऐसा सुना था। पहुँचने पर देखा कि कल्पना से भी कहीं अधिक सुन्दर गाँव था। मोरबी तहसील में ऊँचे टीले पर बसा यह सुघड़, स्वच्छ और रमणीय नंदनवन ही है। चार सौ की बस्तीवाले इस गोकुल को देखकर अनहद आनन्द हुआ। सच्चा गोकुल है यह तो। विनोबा के आंदोलन की, समानता की, ग्राम सुधार की और ग्राम के नव निर्माण की बातों की तो यहाँ आवश्यकता ही नहीं। मन में आया आज रात को कहूँगी -- यह सुन्दर नंदनवन तो आपका गोकुल है। कृष्ण खड़े हैं बाहर। बंसी बजाने की राह देख रहे हैं। ग्रामदान हो तो कृष्ण गोकुल में प्रवेश करेंगे बंसी बजाते हुए!

...यहाँ कोई भेदभाव नहीं देखा–यहाँ हरिजन बेधड़क मन्दिर में जा रहे थे। रात को देखा हरिजन की बेटी के ब्याह में अन्य सब शामिल हुए। सच, अपनी आँखों से यह सब देख कर हृदय नाच उठा है। जैसे भी हो, छोटी और छुटकु दोनों को एक बार यहाँ लाना ही होगा—रात को प्रार्थना और भजन के बाद भाषण की शुरुआत की —कृष्ण इन्तजार में खड़े हैं गाँव की सीमा पर-बस, यह वाक्य मुँह से निकला और उस दो-तीन सौ की सार्वजनिक सभा में, सबके बीच मेरी आँखों से टपटप आँसू बरसने लगे। रुदन को रोक न सकी। कृष्ण का स्मरण हुआ और भरी सभा में रो पड़ी। गहरे में सोचने लगी, भगवान की याद तो सदैव आती ही रहती है, किन्तु अभी तक कभी ये आँखें उसकी याद में नम भी नहीं हुई थीं। और आज जाने क्या हुआ कि जाहिर सभा में, भाषण के बीच इस तरह बरसने लगीं।"

सतत ईश्वर स्मरण से हृदय अत्यन्त आर्द्र हो गया था, मुलायम हो गया था, विनोबाजी के आंदोलन में ईश्वरमयता पुष्ट हो रही थी। उसके बाद विनोबाजी की गुजरात यात्रा के साढ़े तीन महीने संत की ईश्वरमयता का प्रत्यक्ष दर्शन हुआ। उसी में से निकट संपर्क की भूख जागी और उत्कर्ष पर पहुँची।

चम्बल-यात्रा में एक महीने तक विनोबाजी का अत्यन्त निकट सान्निध्य मिला, भरपूर वात्सल्य मिला, व्यक्तिगत मार्गदर्शन मिला। यात्रा में रोज ही मानवता के दीप प्रकट होते देखे। ईश्वर स्पर्श से उसके बंदे को हृदय-परिवर्तन का जादू करते देखा। ईश्वर भक्त को मगन होकर नाचते देखा। बागियों के दिल में बसे 'राम' के भी मंगल दर्शन हुए। समस्त वातावरण में ईश्वर-उपस्थिति की बिजली कौंध गयी थी। कान्ताबहन के ईश्वरमय हृदय पर इस घटना का विशेष असर हुआ। हृदय-जल से ईश्वराभिषेक होता रहा। हिन्दी के प्रसिद्ध लेखक श्री कृष्णदत्त भट्ट भी तब बाबा की यात्रा में थे–उन्होंने अपनी पुस्तक 'चम्बल के बीहड़ों में' में लिखा है :

"कान्ताबहन से मैंने पूछा, आखिर इतना क्यों रो रही है? बहुत देर तक तो वह सिसकती रही, बोल ही न पायी। बाद में रुक-रुक कर बोली : "इतना लोभ, इतना मोह भरा है इस शरीर में। भगवान का दर्शन हो तो कैसे? भगवद् दर्शन के लिए पागल भोली भावुक लड़की !"

हरविलासबहन की चम्बल-यात्रा की ९-५-१९६० की डायरी के पन्ने पर लिखा है, "शाम की सभा में बाबा ने कहा कि तुलसी रामायण तो सर्वोदय की

प्रथम पाठ्यपुस्तक है, उसे घर-घर ले जाओ। आज बाबा खूब ही मगन हो गये थे। रामायण की दो पंक्तियाँ सबने दुहरायी, बाबा मस्ती में, खेलते-खेलते आनन्द से गवाते रहे। लोग भी भक्ति भाव में आकंठ डूब रहे थे। बाबा के आज के भाषण का कान्ता पर बहुत असर हुआ –भावावेश में घंटों रोती रही।[५]

भीतर क्या हो रहा है खबर नहीं थी, किंतु कुछ अवश्य हो रहा था। ईश्वर प्राप्ति के लिए तड़पते कान्ता के हृदय को इस ईश्वरमय वातावरण में कोई अनोखी अनुभूति हो रही थी, वह अधिक परिशुद्ध हो रहा था, परम स्पर्श के काज सज्ज हो रहा था। आगे बड़ौदा में जो घटित होना था, उसकी पूर्व भूमिका बन गयी थी। कृष्णदत्त भट्ट के शब्दों में- एक "भोली भावुक लड़की भगवद् दर्शन के लिए पागल हो रही थी।"

यह सब अनायास होता रहा। उन्हें स्वयं उसकी कोई सभानता तब रही होगी, ऐसा नहीं लगता। कान्ताबहन को तब के कोई खास स्पन्दनों की याद नहीं है। किन्तु अब सिंहावलोकन करें तो उस समय उनके मन की अदृश्य-अगोचर प्रक्रिया की झाँकी मिलती है। ईश्वर की इस सृष्टि में अचानक तो कुछ होता नहीं। हर वस्तु क्रम से खिलती है, विकसित होती है, प्रकट होने से पहले भीतर ही भीतर पनपती रहती है, आकार धारण करती रहती है।

(३) दर्शन की अनुभूति

यह घटना है २१ जनवरी १९६१ की। इसका और अन्य प्रसंगों का सविस्तार वर्णन हरविलासबहन ने विनोबाजी को २७-२-१९६१ के पत्र में लिखा था :

"आजकल कान्ता को अनोखे अनुभव हो रहे हैं, आपके मार्गदर्शन हेतु उनकी जानकारी दे रही हूँ।

"सामान्य रूप से हर वर्ष सर्दियों में कान्ता को क्रोनिक कोल्ड के कारण सरदर्द तथा पहलू में असह्य दर्द होता है। दस-पंद्रह दिन बिस्तर से उठ नहीं सकती। अब तक एस्प्रो-एनासिन छह-छह, सात-सात लेकर जैसे-तैसे सहन करती। इस बार मैंने उसे गोलियाँ लेने से आग्रहपूर्वक मना किया। दस-बारह दिन सख्त सिरदर्द रहा। दर्द इतना असह्य था कि दीवार पर माथा पछाड़ने का मन हो। कमजोरी भी बहुत आ गयी। चक्कर इतने आते हैं कि दिन में दो-चार बार गिर पड़ती। दिन-रात नींद का नाम नहीं। चिड़चिड़ी हो गयी थी, टची भी।

"अभी हम बड़ौदा में हैं समूह के साथ। स्वाभाविक ही सब कान्ता की बीमारी

के बारे में अपने-अपने मन्तव्य प्रकट करते रहते हैं। एक दिन किसी ने कह दिया कान्ताबहन की बीमारी तो 'मानसिक' है। सेक्सुअल सप्रेशन के कारण ऐसा होता है। कान्ता के कान पर जब इस बात की भनक पड़ी तो उसे बहुत ही चोट लगी। दो दिन तक लगातार खूब खूब रोती रही वह।

"इतनी पूर्व भूमिका के बाद मूल बात। २१ जनवरी को एक घटना हुई। तब मैं और एक भाई उसके बिस्तर के पास थे, हमने जो देखा और सुना, उसका वर्णन लिख रही हूँ।

"रात को वह लेटी तब अस्वस्थ थी। कुछ देर बाद उसे नींद आ गयी। रात के १२ बजे होंगे। नींद में ही वह बोलने लगी। मुझे जुकाम की वजह से यह सब हो रहा है फिर लोग क्यों ऐसी बातें करते हैं? मुझे और कोई भूख नहीं। लेकिन अब दिल को चीरकर कैसे बताऊँ? हे भगवान। तुझे तो सब खबर है न? छह-सात वर्ष की थी, तब से तुझे याद कर रही हूँ–क्या तू मेरे अन्तर की बात नहीं जानता? तू क्यों मुझे इस तरह बार-बार बीमारी में धकेलता है? देख, अब दो दिन में मेरा सिरदर्द मिटा देगा तभी तू सच्चा! अगर ऐसा नहीं करेगा तो अपनी पटेगी नहीं। दो दिन में, सिर्फ दो दिन में ठीक होना ही चाहिए। हे रामडे! बस तू इतना कर। नहीं तो तेरे साथ कुट्टी।

"इतना बड़बड़ाकर चुप हो गयी। फिर अचानक खूब उत्साहित दीखने लगी, ऐसा वर्णन करने लगी मानो स्वयं देख रही हो। उस वर्णन को शब्दबद्ध करना तो संभव नहीं–किन्तु वह दिव्य स्वरूप का वर्णन कर रही थी। उसके स्पर्श का अनुभव कर रही थी, आनन्द विभोर हो रही थी। बैटरी के प्रकाश में उसका चेहरा देखा–उस पर अनोखे भाव छाये थे।

"फिर बोली, रुको तो जरा, मुझे तेरी पूजा करनी है, साष्टांग दंडवत करना है। वह उठने लगी तो हमने रोका, कहीं वह गिर न जाय इसलिए उठने न दिया। फिर वह नींद में बोलने लगी कि मुझे तेरे पास आना है किन्तु कोई रोक रहा है। हमने उसे उठने दिया। खड़े होकर उसने हाथ जोड़े, आनन्द विभोर प्रार्थना की, फिर जमीन पर साष्टांग प्रणाम किया–फिर खड़ी हुई। इस तरह दो बार किया।

"और तो अब याद नहीं, लेकिन यह सब करीब तीन घंटे चला। बीच में एक बार जागकर अर्ध जागृति में हमसे पूछा, "तुम्हें कुछ सुनाई देता है? वह सुर सुनाई दे रहा है न? कुछ दिखता है तुम्हें? भावावेश में ऐसा पूछते-पूछते फिर सो गयी। अब कुछ स्वस्थ नींद आयी। उसके चेहरे पर हल्की मुस्कान-सी फैली थी।

"दूसरे दिन उठी तो बेहद खुश थी। कहने लगी देखा, मेरा दर्द-वर्द चला गया। शरीर हल्का लग रहा है। बस, थकान बहुत लग रही है। लेकिन अच्छा-अच्छा-सा लग रहा है। बिस्तर से उठी और काम में लग गयी। अभी कल रात पानी पीने के लिए खड़ी हुई तो धम से गिर पड़ी थी। और आज सुबह कमजोरी तो जैसे गायब ही हो गयी। मुझे पूछने लगी—तुम्हें कैसा लग रहा है। मुझे तो खूब अच्छा लग रहा है, लेकिन अच्छा नहीं भी लग रहा है। जाने कुछ पाया और खो गया। फिर कुछ तंद्रा में ऊक-चूक-सी रही।

"दूसरे दिन रात को मुझे कुछ कहने जा रही थी, अचानक जीभ खिंचने लगी। एकदम घबराहट होने लगी। शरीर के कपड़े खींचकर हटा दिये। चेहरा भयानक-सा हो गया। साँस रुकने-सी लगी। पन्द्रह मिनट ऐसे ही बीते, हम सब डर गये।" राम-राम करते रहे, आखिर वह शान्त हुई। नींद में फिर बड़बड़ाने लगी, "इस एक से तो कहने दूँ न!" "ना, नहीं कहना। किसी से भी नहीं कहना। यदि कहोगी तो जीभ खिंच जायेगी।" "आप कौन होते हैं मुझे रोकनेवाले?" "हाँ, राम? मेरे भगवान, आप? अच्छा, नहीं कहूँगी किसी से हाँ।" यह संवाद आधे घंटे चला होगा।

फिर उसे दूसरा 'अनुभव' हुआ। उस दिन भी स्वरूप का वर्णन करती रही, खड़े होकर साष्टांग दंडवत् किये। फिर कहने लगी, अब बार-बार बुलाकर परेशान नहीं करूँगी। बाद में पूरे दिन खोयी-खोयी सी रही। घर के छोटे-मोटे काम करती रही। खाने-पीने का कोई भान नहीं था। कभी बिलकुल चुपचाप सुन्न-सी हो जाती, कभी चौधार आँसू रोने लगती।

"उसे ऐसी अवस्था में समूह के बीच सम्भालना पड़ता। बार-बार कहती—मुझे तो दूर जंगल में या गरजते समुद्र के किनारे जाना है। वहाँ जाकर क्या करना है पता नहीं। लेकिन चूँकि हम दोनों ने साथ रहना तय किया है इसलिए मुझे छोड़कर कहीं नहीं जायेगी, ऐसा कहा। उसे रोज दो घंटे बाहर घूमने ले जाती। रात को चाँद-सितारे देखकर बावरी-सी हो जाती, भजन गाती, हमसे भी गवाती। भावों के उद्रेक में या कभी कुछ कहते-कहते निद्राधीन हो जाती।

"ये सारे दिन हर्षोल्लास के सैलाब में, परेशान विह्वलता में व्याकुल अवस्था में, तंद्रामय मस्ती में बीते। एक बार गुरुदयाल मल्लिक बड़ौदा आये थे, तब उनके प्रवचन सुनकर कान्ता एकदम भावावेश में आ गयी थी। हमने उन्हें कान्ता से मिलवाया भी। तब कान्ता उन्हें कुछ कहने गयी और उसकी जीभ खिंचने

लगी—नींद आ गयी। जब वह जागी, मल्लिकजी ने उसे प्यार से कुछ समझाया भी।

"९ फरवरी को कान्ता चार घंटे तक अर्ध जागृति में सतत लगातार रामनाम का रटन करती रही । उस दिन रात को जब हम घूमने गये, तीसरा अनुभव हुआ। भजन सुनते-सुनते सो गयी। फिर एकाएक हर्ष विभोर होकर बोलने लगी : दिव्य प्रकाश। अद्भुत ! अनुपम, अद्वितीय, अवर्णनीय! खड़ी होकर पूजा करने लगी, साष्टांग दंडवत् किया। उस दिन उसे कोई स्वरूप नहीं, ज्योति दिखाई दी।

"१० फरवरी की रात बारह बजे चौथा अनुभव हुआ। वैसा ही हर्षोल्लास! उस दिन मुरली को नाचते देखा। उसकी तान में अत्यन्त आनन्द का अनुभव किया।

"नौ तारीख को दर्शन के बाद नींद में बोल रही थी कि राम, मैंने तो तुमसे कुछ माँगा नहीं था, तुमने ही अपनी इच्छा से दिव्य प्रकाश दिखाया। तृप्त हो गयी हूँ। अब मैं नहीं बुलाऊँगी। जब इच्छा हो, तब दर्शन देना।

"दस तारीख को नींद में ईश्वर से प्रार्थना की कि आनन्द को पचाने की शक्ति देना। क्रोध को जीतने की शक्ति देना। अब मैं क्या करूं समझाना। अगर तू कुछ सिखायेगा नहीं तो मात्र दर्शन देने से क्या लाभ? तू मुझे भर-भर के प्यार देना, फिर मैं वह प्रेम सब में बाँटूंगी।

उपरोक्त अनुभवों के बाद स्थिति कुछ नार्मल हो रही है। अपने आपको कुछ काबू में रख पाती है। जीभ खिंचना वगैरह अब नहीं होता। उसके बदले अब अपने अनुभवों की बात खुलकर करती है हमारे सामने। खास वर्णन नहीं करती, उल्लेख भर करती है। साधारणतः खुश रहती है। अभी बाहर के कामों में चित्त नहीं है, किन्तु मूड हो तो ढेर सारा काम कर डालती है।

"धीरे-धीरे सब समझने का प्रयत्न कर रही है। स्वस्थ चित्त से सब सुनती है। बात को समझती है; विचार करती है, उस पर चिंतन करती है। प्राप्त ईश्वर कृपा को नम्रतापूर्वक याद करती है, कहती भी है—जिसने इतना दिया है मुझे वह काम की निश्चित दिशा भी दिखायेगा ही। उसने भले ही भिन्न-भिन्न स्वरूप में दर्शन दिये, किन्तु सबमें दिव्य शक्ति तो एक ही है न? उसी शक्ति का संचार है सर्वत्र। सर्वत्र रहनेवाली अव्यक्त शक्ति का स्मरण करते हुए भगवद् कार्य करना चाहिए—यह समझती तो हूँ, फिर भी मन उसे ही बार-बार याद करता है और उसकी याद में बावला होकर बाकी सब भूल जाता है।

"अभी तो इतना ही याद है, इस पर से आप योग्य मार्गदर्शन करें। इस पत्र को और कोई न पढ़े तो अच्छा। हो सके तो इसे पढ़कर फ़ाड़ दें। पत्र का जवाब तुरन्त दें।

"करीब दस बरस से कान्ता के साथ हूँ। उसमें सेक्सुअल वृत्ति का असंतोष जरा भी नहीं है, यह निश्चित रूप से जानती हूँ। उसका उसे दमन वगैरह भी नहीं करना पड़ा है।"

आज तीस-बत्तीस वर्ष के बाद इस घटना को स्मृति के सहारे शब्दांकित करना पड़ता तो यथावत् वर्णन शायद न हो पाता। परन्तु हरविलासबहन के विनोबाजी को लिखे तब के पत्र डायरी की कमी महसूस नहीं होने देते। ये पत्र हमें आधारभूत जानकारी उपलब्ध करा देते हैं।

यह वास्तव में एक दिव्य घटना थी। इन्द्रियातीत अनुभूति थी। तब जो देखा, वह अन्तर्चक्षु से देखा, जो कुछ सुना, वह भीतर के कानों से सुना, जो अनुभव किया, वह भीतर हुआ। किन्तु इतने से ही यह चमत्कार नहीं बन जाता या वह ऐसी घटना नहीं है कि जिसका हमें आकलन न हो सके, या जिसे हम समझ ही न सकें। आज शान्ति से सोचने पर और सूक्ष्म अवलोकन करने पर पूरी बात दीपक की तरह स्पष्ट दिखाई देती है। यह घटना और कुछ नहीं बल्कि बचपन से नाम स्मरण की **आदत और अभ्यास से पायी अन्तः शुद्धि और चित्त शुद्धि का परिणाम** थी। खास रूप से १९५८ से १९६० इन तीन वर्षों में एक विशिष्ट भावावस्था सधती जाती थी। उसी के परिपाक रूप यह घटना घटित हुई। एक जीव की ईश्वर-साक्षात्कार, आत्म-साक्षात्कार की गहरी तड़पन ही इस घटना का कारण है। उसके लिए यह घटना परमशक्ति प्रदत्त आश्वासन रूप थी, आशीर्वाद रूप थी और ईश्वर अनुग्रह थी।

इसमें एक और महत्त्वपूर्ण बात नजर आती है कि जो कुछ हो रहा था उसका संचालन भीतर से हो रहा था। मैं और हरविलासबहन तो मात्र शारीरिक ध्यान रख रहे थे। अन्यथा इस बारे में हम तो संपूर्ण अनभिज्ञ थे, इसलिए अन्य किसी तरह की मदद का सवाल ही नहीं था। उन्हें भीतर से ही मदद मिल रही थी, भीतर से मार्गदर्शन और समझ के द्वार भी भीतर से ही खुल रहे थे।

भीतर के किसी अन्तस्थ दिव्य रहबर ने ही उन्हें सिखाया था कि बार-बार ऐसी अनुभूतियों की लालसा न करें, इनमें डूबे रहकर सब कुछ भूलें नहीं। यह तो था परम शक्ति का एक प्रकट स्वरूप। इसके द्वारा **राममय परम शक्ति का संचार**

सर्वत्र अनुभव करें। इन अनुभूतियों को हृदयस्थ रखें और भगवद्कार्य में लग जायें।

इस क्षेत्र के परम ज्ञाता और परम साधक विनोबाजी ने इस बात को बहुत स्नेह से विवेकपूर्वक कान्ताबहन के मन से दृढ़ कर दी, उन्हें आत्मसात् करवा दी। हरविलासबहन का उपरोक्त खत मिलते ही बाबा का जवाब आया। उनका वह पत्र ज्यों का त्यों नीचे दिया है–

मा० शरणिया आश्रम

गौहाटी - आसाम

ता० ५-९-१९६१

चि० हरविलास,

तुम्हारा ता० २४-२ का लिखा और २७-२ का रवाना हुआ पत्र आज मुझे मिला। और आज ही मैं इसका जवाब लिखवा रहा हूँ। आज असम में हमारा प्रवेश हुआ है।

तुम्हारा पत्र पढ़कर बहुत खुशी हुई कि हमारी प्यारी लड़की कान्ता को भावसृष्टि में एक बार भगवान का दर्शन हो ही गया। जिस अवस्था का तुमने वर्णन किया है, वह भावावेश से जब चित्त अभिभूत होता है, तो प्रथम झाँकी ऐसी अनेकों को होती है। अब उसका संग्रह हृदय में कैसे करना, यह सोचने का विषय है। जैसे होमियोपैथी में दवा में दुग्ध-शर्करा डाल करके दवा को घोटते हैं, उस पर संपुट चढ़ाते हैं, और उसकी पोटेन्सी बढ़ाते हैं, वैसा ही भक्ति में करना होता है। ऐसे भगवान तो सृष्टि में भरे हुए हैं और इष्ट देवता के रूप में आश्वासन के लिए एक दफा वे दर्शन दे चुके, तो अब उसी स्वरूप को दुनियाभर में देखना है। इसी क्रिया को संपुट चढ़ाना कहते हैं। इसी का दूसरा नाम निदिध्यासन है। तो अब इस दर्शन को चित्त में गुप्त रखना चाहिए, और उसको जीवन में उतारने की चेष्टा निदिध्यासन द्वारा होनी चाहिए। उसके लिए भावावेश काम का नहीं। विवेकयुक्त चिन्तन का अध्याय अब शुरू होना चाहिए।

तुम दोनों को जब से मैंने देखा है, मेरे हृदय में तुम्हारी मूर्तियाँ अंकित हो गयी हैं। याद भी तुमको किया करता हूँ। खबर तो मुझे तुम्हारी बीमारी की मिली थी, लेकिन कान्ता को जाड़े में तकलीफ हुआ करती है, इसका मुझे ज्ञान नहीं था। तुम दोनों ने एक-दूसरो को न छोड़ने का तय किया है, इसको आध्यात्मिक दृष्टि से मैं बहुत महत्त्व देता हूँ। कान्ता का हृदय बहुत निर्मल और कोमल है,

और भावाविष्ट है। तुम्हारा हृदय वैसा ही निर्मल पर विवेक-प्रधान है। दोनों एक-दूसरे की पूर्ति करोगी। जिस रामजी को कान्ता ने भावावस्था में देखा है और जिसको अब सारी सृष्टि में और प्राणीमात्र में देखना है; उसको विशेष रूप में तुम दोनों एक-दूसरे में देखो। तुम्हारे लिए वह 'राम' और उसके लिए तुम 'राम' यह अभ्यास करो।

सप्रेशनवाली बात बिलकुल फिजूल है। तुम में से किसी को वह कतई लागू नहीं है, यह मैं निश्चित कह सकता हूँ। तुम दोनों 'सम्यक्-व्यवसित' हो। याने तुम्हारे चित्त का सम्यक् निश्चय हो चुका है।

इसलिए अब घबराने की जरूरत नहीं। रामजी तो तुम्हारे साथ ही रहेंगे। शरीर को स्वस्थ रखो।

एक सुझाव देता हूँ, कभी भी पंद्रह दिन, महिना, जरा सामाजिक कार्य से अलग रहने की इच्छा हो, तो परंधाम ब्रह्म विद्या मन्दिर में जा सकती हो।

मैं तो अभी जरा स्थूल रूप से दूर ही जा रहा हूँ, फिर भी पास ही हूँ, ऐसा समझ लो। मुझे लिखा करो। जहाँ कुछ लिखने की जरूरत मुझे महसूस होगी, मैं फौरन लिखूँगा। इधर भी मैं तुम लोगों को बुला सकता हूँ, लेकिन अभी नहीं बुलाता। मेरे पत्र का मनन करके एकाध हफ्ते बाद चित्त की क्या अवस्था होती है, मुझे लिखो। मैं तुम्हारे पत्र की राह देखूँगा।

मुझे दो महीने से कुछ खाँसी रहती है। आज भी थोड़ी है। पर चिंता की कोईं बात नहीं।

—बाबा का आशीर्वाद

चि० कान्ता,

ऊपर का पत्र तुम्हारे लिए ही है। फिर भी एक शब्द और तुम्हारे लिए अलग से लिखवा रहा हूँ और वह यह कि, बाबा तुम्हारी चिन्ता करता रहता है, यह ख्याल रखकर और जब कि रामजी ने भी कृपा दर्शायी है, निश्चिन्त हो जाओ। चित्त में राम और मुख में नाम रखकर हाथों से काम करती रहो। शरीर की शक्ति से ज्यादा न करो। समत्व रखो।

—बाबा का आशीर्वाद

इस पत्र में विनोबाजी माता और गुरु दोनों हैं। इसमें माता का भरपूर वात्सल्य है और उतना ही गुरु का विवेकपूर्ण मार्गदर्शन है। भाव सृष्टि में जो दर्शन हुआ

था, वह मिथ्या नहीं, अब उसे हृदय में धरकर उसकी पोटेन्सी बढ़ाते रहना है, उस पर संपुट चढ़ाते रहना है, विवेकयुक्त चिन्तन से इस दर्शन को जीवन में उतारना है, यह गुरु का मार्गदर्शन है। दोनों के एकत्व-निश्चय की बेहद खुशी, सप्रेशन वगैरह का कोई सवाल ही नहीं है, ऐसा भावभरा आश्वासन तथा स्थूल रूप से दूर होकर भी पास ही हूँ, तुम्हारी चिन्ता करता रहता हूँ, ऐसी दिलजमाई—यह मातृ-हृदय बोल रहा है। विनोबाजी का यह वात्सल्यपूर्ण और विवेकपूर्ण पत्र हमारे लिए शक्ति का और समझ का अनोखा स्रोत बना।

(४) देह को निचोड़ देनेवाली साधना

इस तरह अन्तरस्थ रहबर और विनोबाजी के मार्गदर्शन में कान्ताबहन की साधना चली। इस पूरे साधनाकाल में हमें हर कदम पर प्रतीति हुई कि "हरिनो मारग छे शूरानो, नहीं कायरनुं काम।" यह कोई ढीले-ढाले के बस का नहीं। यह सिर्फ अद्भुत दर्शन के उल्लास में लीन हो जाने की या चमत्कार में उन्मत्त होने की बात नहीं है। यह तो शक्ति की हर बूँद को खरचनेवाली साधना है। इसमें देह को एकदम निचोड़ देना पड़ता है। मन की सारी उछल-कूद को बस में करना पड़ता है। चित्त की अनन्य एकाग्रता साधनी पड़ती है। अहंकार को शून्य बनाना पड़ता है। भौतिक सुख और सामाजिक लाज-शरम को भूल जाना पड़ता है। एक बार की दर्शन-अनुभूति को स्थिर करने के लिए, आत्मसात् करने के लिए तरह-तरह की घनघोर साधना करनी पड़ती है। शरीर का तो कोई भान ही नहीं रहता।

शुरू के छह महीने कान्ताबहन की साधना अत्यन्त तीव्र रही। बहुत-सा तो आन्तरिक अगोचर था। जो प्रकट हुआ, उसे हमने देखा-समझा।

डायरी और विनोबाजी को लिखे पत्रों से—

"कभी-कभी उसके शरीर में बेहद जलन होती है। ऊपर से नीचे तक बदन जलता रहता है। असह्य वेदना होती है, फिर भी मुँह से रामनाम का जप चलता है, मन में अपने इष्टदेव की आराधना चलती है।

"रात को बारह से ढाई बजे तक बहुत अस्वस्थ रही। कपड़े और देह बन्धन रूप लगते हैं। ... पाँच-छह दिन से एक ही रट लगायी है कि यह देह बन्धनरूप है, बीच में विक्षेप रूप है, उसके साथ एक रूप होने में-ज्योति को ज्योति से मिला देने में बाधक है। ... सतत काफी भावावेश में रहती है। रहा नहीं जाता, सहा नहीं जाता। —शरीर का एक-एक वस्त्र फेंक देती है। निर्वस्त्र कमरे में चक्कर

काटती है। बस, दौड़कर बाहर जाना है—श्मशान में जाना है। श्मशान में ले जायेंगे मुझे? मुझे श्मशान में जाने दो न!

उन्हें आधी रात को श्मशान में जाना था। बड़ौदा जैसे शहर में आधी रात को, एक स्त्री को श्मशान में ले जाना कैसी असंभव सी बात! बहुत मनाया, लेकिन मानी नहीं। पूज्य मोटा को पत्र लिखा कि कैसी मुसीबत है। लौटती टपाल में उनका हस्तलिखित पोस्टकार्ड आया : "उन्हें श्मशान में जाना हो तो जाने दो। आप साथ दे सकें तो दें, वरना हट जायें। यह न मानें कि आप उनकी रक्षा कर रहे हैं, उनकी रक्षा करनेवाला तो बैठा है।" आखिर उन्हें श्मशान ले जाना पड़ा। चौकीदार को मुश्किल से समझाया। सद्‌भाग्य से उस समय श्मशान में कोई लोग नहीं थे। एक-दो चिताएँ करीब जल चुकी थीं।"

डायरी : "श्मशान ले गये। रात के बारह से डेढ़ बजे तक श्मशान में एक कोने से दूसरे कोने तक चक्कर लगाती रही, फिर रामनाम रटते-रटते वहीं सो गयी। कुछ देर बाद शान्त हुई तब घर लौटे।"

"घंटों, घंटों रामनाम जप करती बैठी रहती, न कुछ खाना, न पीना, पानी की बूँद भी नहीं। बस, राम ... राम ... राम! आज सुबह ७ बजे से दोपहर के डेढ़ बजे तक रामनाम जप चला .... पिछले तीन दिन से कान्ता का यह जप चला है। पूरे बहत्तर घंटे से पानी की एक बूँद भी पेट में नहीं गयी। इस बार का यह जप अत्यन्त मंजुल और कर्णप्रिय था। राम का नाम सात बार आरोह में और फिर सात बार अवरोह में लेती रही। मधुर संगीतमय लगता था। स्वयं भी खुश दीखती थी। एक मिनट भी चुप नहीं रही। सतत जप चलता ही रहा। बीच-बीच में भावावस्था में नाम लेती-लेती उठकर बाहर जाने लगती, हम प्रेम से रोकते, तो वापस बैठ जाती। उसे आसपास का कोई भान नहीं था। हम उसका ध्यान रखते सतत उसके आसपास रहते थे। मैं, कान्तिभाई, नानुभाई, जगदीशभाई बारी-बारी से उसके पास रहे। वह तो अपने राम में लीन थी।"

"आज वारिश के साथ बवंडर भी था। कान्ता को तीव्र इच्छा हुई कि बाहर निकलकर प्रकृति के संग-संग उस तूफान में नाचे। किन्तु शहरी जीवन की मर्यादा थी, उसे जबरन रोके रखा।"

"आज सुबह उठते ही बोली, चलो पार्श्वनाथ-देरासर चलें। हम गये। वहाँ पार्श्वनाथ की मूर्ति के सामने आँखें मूँदकर बैठी रही। आँखों से आँसू बहते रहे।"

"पिछले कुछ दिनों से भावावस्था में वह बाहर निकल पड़ती है। रात को दो

बजे इस तरह कमाटी बाग पहुँच गयी और वहाँ सो गयी। सुबह जागी तो परेशान! यहाँ कहाँ आयी! हम भी ढूँढ़ने निकले। आधे रास्ते उसकी किसनभाई से भेंट हुई; वे उसे घर लाये।''

''प्रभु-दर्शन की लालसा से व्याकुल हो जाती है। हमारे साथ और समूह के बीच रहने में उसे काफी तनाव सहना पड़ रहा है। **व्याकुलता-शमन के लिए भजन-धुन** गाती है, रामनाम जपती है।''

''कान्ता को नाचना है। आजकल उसे नृत्य करने की बहुत इच्छा होती है। किन्तु यहाँ समूह में कैसे संभव हो! फिर भी एक दो बार एकान्त मिला, तब वह नाची, जीभर के नाची। ऐसे मौकों पर उसे रोकना मेरे लिए संभव नहीं होता। वह जिद करती है, लेकिन फिर मान भी जाती है। उसे मुक्त रूप से यह सब नहीं करने देती, इसका मेरे मन पर बोझ रहता है।''

''आज नींद में बोल रही थी, मुझसे नहीं सहा जाता अब ! यह तो बहुत ही कठिन मार्ग है। मैं तो चली आऊँ, लेकिन हमें साथ रहना है। ये लोग परेशान हो जाते हैं, थक जाते हैं। उनका धैर्य छूट जाता है। किन्तु ये लोग भी क्या करें। वे थक गये हैं। वे फिर से तरोताजा और स्फूर्तिमय हो जायें, तब तक कुछ दिनों के लिए मेरी अस्वस्थता दूर कर दो। बाद में चाहे अधिक वक्त ले लेना। यह तो हमारी सामूहिक साधना है। श्रद्धा और धीरज से आगे बढ़ेंगे। चाहे थोड़ा अधिक समय लो... पहले तो चढ़ जाते हैं, फिर थकते हैं। गढ़-चढ़ाई में पहली चट्टी पर आराम करने का मन होता है न उस तरह। लौटना नहीं है, बस, जरा-सा आराम चाहिए।''

कुछ दिन रोज रात को उठकर कविता लिखती, उसका जिक्र पत्रों में है :

''६ फरवरी से रोज रात को उठकर कविताएँ लिखती है। बारह-एक-दो कभी भी उठकर कुछ ढूँढ़ती है। हाथ में पेन और कागज पकड़ा दें तो लिखने लगती है। जरा भी अटके बिना श्रुत-लेखन की तरह लिखती जाती है। कविता पूरी हुई कि कागज पेन रख कर सीधी लेट जाती है। दस-पंद्रह मिनट के बाद पानी माँगती है, पानी पीने पर उसे सुध आती है। स्वयं जो लिखा, उसका उसे तनिक भी ख्याल नहीं होता। कुछ लिखा-उसका बाद में स्मरण भी नहीं रहता।''

करीब डेढ़ महीने यह सिलसिला चला। फिर कभी-कभी लिखा। इन कविताओं में उन दिनों की उनकी तड़पन और भावस्थिति व्यक्त होती है। कुछ कविताएँ सच में सुन्दर हैं। कुछ गुजराती पंक्तियों का हिन्दी भावानुवाद प्रस्तुत है :

राम, एक तेरी ही आस
अन्तर में तेरा ही वास

मुझ जीवन-जल सूख रहे
विपरीत ये बयार बहे
प्रियजन निगाहें फेर रहे
राम, तभी तुम यहाँ आये –

राम, तु मनोविज्ञान का विशेष अभ्यासी
सबके मनप्रदेश की करे तू जासूसी
फिर क्यों मुझे ही रखे तू उदासी

ओ, मनोविज्ञान के महान अभ्यासी!
प्रभु, देखना कहीं उलझ न जाये तेरी राम प्यारी!
तू सींचता उसकी हृदय क्यारी
प्रभु, देखना कहीं उलझ न जाये तेरी रामप्यारी।

राम तेरी सृष्टि देख भीगीं मेरी पलकें
तेरी लीला अपरंपार देख ये छलके

अबोध बालक को उरकंठ लगाया
प्रेम-सुधारस तूने पिलाया

स्नेह-वृष्टि का तू बरसैया
याद करूँ तुझे मैं रामरमैया
राम, तरनि मेरी मँझधार
तू ही मेरा माँझी तारनहार

मैं तो आतम खोजन जाऊँगी दूर-दूर
चाहे गँवाऊँ सारा नूर
मैं तो आतम खोजन जाऊँगी दूर-दूर
जाऊँगी दूर - दूर ...

छह-सात महीने बाद कुछ समय तक चिन्तन-कविताएँ, कुछ पंक्तियाँ लिखती रही। उसमें से कुछ मैंने १९६१-६२ के 'भूमिपुत्र' में 'अन्तर के दालान से'-शीर्षक के तहत 'अज्ञात' नाम से छापी थीं। यह कैसे लिखा गया, किसने लिखा, कुछ खबर नहीं। कान्ताबहन भी कुछ कह नहीं पातीं।

इस दौरान अनुभूतियाँ भी होती रहीं: "गहरी नींद में अचानक खिलखिलाकर हँसने लगी। चेहरे पर आनन्द छा गया। पन्द्रह मिनट चला । उठकर बोली, भीतर आनन्द का झरना फूट रहा था। दिखाई तो कुछ नहीं दिया किन्तु स्वरूप दर्शन का सा आनन्द अभी भी अनुभव हो रहा था। इसके बाद कई दिन खुशमिजाज रही। बहुत अच्छा लगता है। ऐसा कहती रही। काम में भी मन लगाती रही।"

"प्रथम रामजी के जैसे दर्शन हुए थे, वैसे ही २६ अप्रैल की रात हुए, ऐसा कह रही थी। उसके बाद आनन्दातिरेक में अपनी सुध भूली रही । पूरे दिन अपने में ही मस्त रही।"

"रात को भावावेश में सोयी थी। फिर अचानक एकदम शान्त हो गयी, आँखें अधखुली लगभग शववत् पड़ी थी। चेहरे पर अनुपम आनन्द छाया था। अनोखी दीप्ति थी। श्वास इतना मन्द था कि बन्द-सा लगता था। नाड़ी पकड़ में नहीं आती थी। घंटेभर ऐसी अवस्था रही। जब उठी, खूब-खूब प्रसन्न थी। उसका संपूर्ण अस्तित्व पुलकित हो गया था।"

"रात को समाधि अवस्था के पश्चात् उसे अद्वैत का अनुभव हुआ। मानो निराकार चेतन तत्त्व उसमें प्रविष्ट होकर एकाकार हो गया हो। नितान्त शान्ति और आनन्द है।"

"रात को आठ से साढ़े नौ तक अजागृत समाधि जैसी अवस्था रही। आँखें खुलीं; पुतलियाँ स्थिर, दाहिना हाथ अकड़ा हुआ, नाड़ी अत्यन्त धीमी, शान्त सौम्य आनन्दित चेहरा... ऐसी ही स्थिति रात को साढ़े बारह से डेढ़ तक रही।"

अंतरस्थ रहबर मार्गदर्शन करता रहता; "जैसे दुःख के अतिरेक में मनुष्य देह का नाश करता है, वैसे सुख के अतिरेक में भी देह छोड़ने का प्रयत्न करे तो वह आत्महत्या ही कही जायेगी। साधक की ऐसी अवस्था होती है। ये दोनों साथी तेरे शुभचिन्तक हैं, उन्हें तेरे शरीर की रक्षा करने दे-जूझना पड़ेगा । लम्बी प्रक्रिया है... भूदान और अन्य भी जो रुचिकर हो, ऐसे काम करती रहो। तुझे अच्छा, लगेगा।"

पत्रों द्वारा विनोबाजी का सतत मार्गदर्शन मिलता रहता था :

"इस देह के त्याग में कोई विशेष बात नहीं। आगामी देह से मुक्ति परम पुरुषार्थ का विषय है। इसलिए इस **देह का समुचित उपयोग करना धर्म** हो जाता है... देह नग्न करने से कोई साधना नहीं होती। अपना हृदय सब विश्व के लिए खुला हो, यही सच्ची नग्नता है... कान्ता के हृदय में अच्छी श्रद्धा है, इसलिए इन विचारों को वह शिरोधार्य करेगी और उसको समाधान होगा, ऐसा मैं मानता हूँ.... मुझे लिखती रहो। जवाब देने में दो-चार दिन देरी भी हो सकती है, कभी जवाब न भी लिखूँ, लेकिन तुम्हारी खबरें मुझे नियमित मिलती रहें... पत्र मिला। मुझे उससे समाधान हुआ। ईश्वर-दर्शन आश्वासन, परन्तु विशेष प्रसंगे अने आकस्मिक रीते पण थई जाय। परिपूर्ण दर्शन पले-पले अने क्षणे क्षणे निरंतर प्रयत्न करवाथी ज थाय" (यह पत्र इसी तरह हिंदी-गुजराती मिश्रित लिखा था।)

फिर से एक पत्र खास कान्ता को लिखा : "हरविलास का १२-५-६१ का पत्र मिला। अब उसको लिखने के बजाय तुमको ही लिख रहा हूँ। मुझे तो उसको या तुमको अकेली को लिखना पसन्द ही नहीं आता, बल्कि हरिश्चन्द्र को लिखना ही पसन्द आता है। पर आज तो कान्ता को ही लिख रहा हूँ। मुझे यह लगा कि तुम दोनों को मिलकर एकरस चिन्तन करना चाहिए। दोनों की वृत्तियाँ अलग-अलग क्यों हों ! यह एक अच्छी साधना होगी। उस दृष्टि से सोचो। अभी तक इस प्रकार की साधना दुनिया में कम ही हुई है।"

इसके जवाब में कान्ताबहन ने ता० ३०-६-६१ के पत्र में विनोबाजी को लिखा :

"मुझे संबोधित आपका पत्र मिला। जवाब में विशेष तो क्या लिखूँ? हमारी मैत्री के दस वर्ष पूरे हुए। ईश्वर ने हमें स्नेहगाँठ से ऐसा मजबूत बाँधा है कि इस स्नेहगाँठ को हम छोड़ना चाहें तब भी वह हमसे छूटेगी नहीं। दस वर्ष के सह-जीवन में हम सहज रूप से एक-दूसरे में ओतःप्रोत हो गये हैं।

"साधारणतः व्यक्ति की अलग-अलग वृत्तियाँ, महत्त्वाकांक्षाएँ और आदर्श सह-जीवन में बाधा पैदा करते हैं। किन्तु वे व्यक्ति परस्पर की वृत्तियों से अनुकूल होने की कोशिश करें, परस्पर समर्पण भाव रखें, तो टकराहट कम होती है। जीवन सरलता से गुजरता है। हम दोनों के परस्पर अनुकूलन के प्रयत्नों ने ही हमारी मैत्री टिकायी है। दोनों की मूल वृत्ति और चिन्तन एक ही प्रकार का होने से आपके दर्शाये मार्ग (ब्रह्मविद्या) पर जाने का सह-निर्णय हम ले सके।

"अचानक जो कुछ हुआ, उससे विशेष परिस्थिति खड़ी हुई है। यह तो आप जानते ही हैं। हमें उस मार्ग पर साथ-साथ ही चलना है। किन्तु ईश्वर-प्राप्ति के लिए मेरी व्याकुलता इन दिनों इतनी तीव्र हुई कि मैं हरविलास से कुछ अलग पड़ गयी। मेरी साधना की दिशा बदल गयी। किन्तु ईश्वर ने ही मुझे ऐसे मार्गदर्शक दिये, जो मुझे फिर सही मार्ग पर ले आये हैं।

"आपके पत्रों द्वारा प्राप्त मार्गदर्शन मेरे लिए उपयोगी साबित हो रहा है। भक्ति मार्ग और कर्म मार्ग का समन्वय साधकर एकवृत्ति और एकरस चिन्तन की दिशा में जाने का हम पूरा प्रयत्न करेंगे। हमारा पुरुषार्थ, आपका आशीर्वाद और ईश्वर कृपा हमें इस मार्ग पर अग्रसर करेगी, ऐसी अटूट श्रद्धा और अखंड विश्वास है।

"बाबा, पिछले पाँच महीनों से ऐसा अनुभव हो रहा है मानो जिन्दगी के सर्वोत्तम दिन गुजर रहे हैं। परम कृपालु परमात्मा की कृपा ने मेरे जीवन को सराबोर कर दिया है। स्मरण मात्र से मुझे अत्यन्त आनन्द होता है। मेरे लिए यह अखंडानन्द बन जाये, ऐसा चाहती हूँ।

"मैं तो उसकी छोटी बच्ची हूँ... अभी जो स्थिति है, उसके बारे में दो वाक्य लिख दूँ। जब ईश्वर-दर्शन की तीव्र लालसा जागती है, बहुत व्याकुल हो जाती हूँ। आँसू बहने लगते हैं, कहीं चैन नहीं मिलता, अशान्त हो जाती हूँ। किन्तु रामनाम का सतत स्मरण शान्ति प्रदान करता है।"

इसके बाद हरविलास की ओर से नहीं, बल्कि हरिश्चन्द्र की ओर से पत्र लिखे जाने लगे। बाबा ने तुरन्त खुशी व्यक्त की : "ता० २१-१०-१९६१ का पत्र मिला। वह अर्ध व्यक्ति का न होकर पूर्ण व्यक्ति का, याने हरिश्चन्द्र का था। इसलिए पढ़ने में मिठास मालूम हुई। तुम्हारे लिए जो आशाएँ मैंने मन में रखी हैं, वे निश्चित ही फलीभूत होने की हैं। भक्तिमान को आवश्यक ज्ञान प्रभु यथासमय देता ही है... तुम दो साधिकाएँ मिलकर हरिश्चन्द्र बनती रहो। मेरी दृष्टि से सब क्रान्तिकारी तत्त्व इसमें समा गया है।"

यह तो कान्ताबहन के दिल की बात थी।

उन्हें भी कहीं एकान्त में जाकर अकेले में साधना नहीं करनी थी। इसलिए हरविलास से या काम से अलग हुए बिना ही उनकी यह कठिन और शरीर को एकबारगी निचोड़नेवाली साधना चल रही थी।

इस साधना-काल में प्रथम घटना घटित होने के डेढ़ महीने के अन्दर ही कान्ताबहन ने काम में मन लगाने का प्रयत्न शुरू किया था :

"आजकल सुबह दो घंटे सयाजी अस्पताल में जाती हैं। मरीजों के पास बैठती हैं, प्रेम से बातें करती हैं, उनका कोई छोटा-मोटा काम कर देती हैं—वह भावावस्था में न हों, तब हम दोनों साथ ही 'भूमिपुत्र' के ग्राहक बनाने शहर में घूमती हैं। अभी की स्थिति में आवश्यक मुक्त वातावरण में उसे नहीं रख सकते, यह बहुत खटकता है। किन्तु इस स्थिति का और काम का मेल बैठाना पड़ता है... कान्ता एक बार काम शुरू करती है तो पूरी एकाग्रता से उसमें जुट जाती है। किन्तु रात को फिर स्वयं पर काबू नहीं रख सकती।"

खैर, धीरे-धीरे काबू रखना भी सीख लिया और 'रामनाम सिवाय सब असह्य वाला' वक्त भी गुजर गया। विनोबाजी के मंत्र को पूर्ण रूप से शिरोधार्य किया : 'चित्त में राम, मुख में नाम, हाथ में काम।' कान्ताबहन कहती हैं, यही मंत्र मेरा मार्गदर्शक बन गया है।

(५) साधना का परमोत्कर्ष और भगवत्-प्रसाद

कान्ताबहन धीरे-धीरे स्वयं को कर्मयोग में लीन कर रही थीं। साधना भी चलती रहती थी। दर्शन की अनुभूति गहन आध्यात्मिक साधना का पूर्ण विराम नहीं, अन्त नहीं, आरम्भ था। उस मार्ग पर निरन्तर आगे बढ़ना था। एक विशेष घटना के रूप में जो दर्शन हुआ था, उसे अब हर पल, हर क्षण ईश्वर की जीवन्त अनुभूति के रूप में साध्य करना था। विशेष स्वरूप की जो अनुभूति हुई, उसे सचराचर सृष्टि में व्याप्त परम शक्ति की अनुभूति के रूप में सिद्ध करना था। जैसा विनोबाजी ने कहा कि यह एक लम्बी निदिध्यासन की प्रक्रिया है। एक के बाद एक संपुट चढ़ाना है, अनुभूति की पोटेंसी बढ़ानी है। स्थितप्रज्ञता साधनी है। अर्थात् शुद्ध बुद्धि, स्थिर-अचल बुद्धि साधनी है।

'स्थितप्रज्ञ दर्शन' में विनोबाजी ने लिखा है : "स्थितप्रज्ञ गीता का आदर्श पुरुष विशेष है। गीता में आदर्श पुरुषों के वर्णन और भी हैं। वे सब स्थितप्रज्ञ से भिन्न नहीं। उन सब वर्णनों में गीता ने स्थितप्रज्ञ के लक्षण कहीं न कहीं गूँथ लिये हैं। उदाहरणार्थ, संन्यासी अथवा योगी पुरुष के वर्णन में 'स्थिर बुद्धि' शब्द शामिल किया है। भक्तों के लक्षणों की समाप्ति 'स्थिर मतिः' शब्द द्वारा की है। बुद्धि की स्थिरता हुए बिना कोई भी आदर्श सिद्ध नहीं हो सकता। जीवनमुक्ति की सिद्धि का सबूत देने के लिए भाष्यकारों ने स्थितप्रज्ञ के लक्षण प्रस्तुत किये हैं—योग

बुद्धि का पहला स्वरूप कर्तव्य-निश्चय है। निश्चय के बाद एकाग्रता अर्थात् साधना में तन्मयता है। दूसरी मंजिल है कि फल की तरफ ध्यान दिये बगैर तन्मयता हो। फिर है चित्त की निर्विकार दशा अथवा समता अर्थात् समाधि। वह स्थिर, अचल, किसी प्रवाह या वेग से डिगे नहीं–ऐसा हो, तब समझें कि स्थितप्रज्ञ अवस्था उसमें जुड़ गयी है... शुद्ध बुद्धि अर्थात् प्रज्ञा... नितान्त अल्प बुद्धिवाले या अनपढ़ मनुष्य की भी इस जन्म में स्थितप्रज्ञ होने की संभावना है।''

'दर्शन' की अनुभूति से आगे ऐसी **स्थितप्रज्ञता की साधनायात्रा का आरम्भ** हुआ।

दर्शन के आरंभ में ता० ३-२-१९६१ की डायरी में लिखा है : ''आज सुबह उठते ही कान्ता ने गीता माँगी। हाथ में लेकर जो पन्ना खोला, उसमें दूसरे अध्याय का ५३वाँ श्लोक था। कान्ता ने बार-बार उसका पाठ किया–

श्रुतिविप्रतिपन्ना ते यदा स्थास्यति निश्चला।
समाधावचला बुद्धिः तदा योगमवाप्स्यसि॥

भाँति-भाँति के वचन सुनने से चलित हुई तेरी बुद्धि जब परमात्मा में अचल एवं स्थिर हो ज़ायेगी, तब तू योग को प्राप्त हो जायगा अर्थात् तेरा परमात्मा से नित्य संयोग हो जयेगा।

गीता के दूसरे अध्याय का निगमन रूप, निष्कर्ष रूप यह श्लोक है। ११ से ३८ तक के श्लोकों में सांख्यबुद्धि का विवरण है। ३९ से ५३ में योग बुद्धि का विवरण है, जिसके इस अंतिम श्लोक में निष्कर्ष प्रस्तुत किया कि योगबुद्धि का अन्तिम परिपाक स्थिर समाधि में, स्थितप्रज्ञता में होता है। समाधि में बुद्धि स्थिर हुई कि समझो योग सध गया, ऐसा भगवान ने इस श्लोक में कहा है। इस पर से आगे ५४वें श्लोक में अर्जुन ने स्थितप्रज्ञ कैसा हो, यह प्रश्न किया है। उसके उत्तर में स्थितप्रज्ञ के लक्षणों का वर्णन है। अन्तरस्थ रहबर ने इस श्लोक को कान्ताबहन के सम्मुख धरकर भविष्य के लिए मानो आगे की दिशा दिखा दी।

साधना की यह अगली मंजिल थी। दर्शन की घटना के बाद जब विनोबाजी से पहली बार रूबरू भेंट हुई, तब उन्होंने भी इसी तरह, इस बात पर जोर दिया था कि ''यह **साक्षात्कार बीज रूप है, फल रूप नहीं**। इसे भीतर सहेजकर रखें, बाहर अंकुर रूप में प्रकट होने दें। जैसे खेत में बीज बोकर मिट्टी में दबा देते हैं, तब उसमें से अंकुर फूटता है, फिर फल मिलता है। इसी तरह इस साक्षात्काररूपी

बीज को प्रकट करने का साधन है, स्थिर बुद्धि, स्थिर निश्चय।''

ऐसी आन्तरिक साधना की एक लम्बी प्रक्रिया लगातार दस-बारह वर्ष चली। मुख्य रूप से वह साधना आन्तरिक ही रही। बाह्य स्वरूप विशेष नहीं दीखा। उसके बारे में हम निकट के साथी भी खास सभान नहीं थे। हमारी समझ में तो मात्र भक्ति-रस-भीनी कर्मयोग साधना चल रही थी। भीतर की साधना के बारे में हम विशेष सजग नहीं थे। इसलिए उसकी कोई नोंद भी नहीं रखी थी। किन्तु जिस तरह १९५८ से १९६० के अर्से में भीतर कुछ-न-कुछ चलता रहा, उसी तरह इस १९६१ से १९७१ के अर्से में भी भीतर-ही-भीतर निश्चित ही कुछ आकार धारण करता रहा, धरती के गर्भ में पड़ा बीज अंकुरित होता रहा। १९७१ से १९७३ के अर्से में इस साधना-प्रक्रिया की पराकाष्ठा आयी और तब उसका बाह्य स्वरूप भी नजर आया। दर्शन की अनुभूति के बाद चलनेवाली भीतर की साधना का यह चरमोत्कर्ष था।

यह हुआ १९७१ में। बंबई के नवजवान मंडल के पचीस मित्रों के साथ हम गंगोत्री, केदार-बद्री गये थे। वहाँ कान्ताबहन को फिर अनेक विशेष अनुभव हुए। उस यात्रा से लौटते हुए हम पवनार गये। वहाँ हरविलासबहन ने विनोबाजी को यात्रा का वर्णन लिखकर दिया था, जिसमें अनुभवों की नोंद भी है--

''हरिद्वार में गंगा के प्रथम दर्शन से ही कान्ता की मनःस्थिति में परिवर्तन आया, भावावस्था की शुरुआत हुई। हरिद्वार में एक-दो प्रसंग ऐसे हुए कि वह किसी भिखारी में भगवान के दर्शन करके भावविभोर हो गयी थी।

हरिद्वार से गंगोत्री के रास्ते में भी कान्ता की विशेष भावावस्था रही। गंगोत्री पहुँचने के लिए पहले भैरवघाटी पार करनी होती है। उसकी गहनता और भव्यता अनोखी है। वहाँ एक जगह गंगा की दो धाराओं का संगम आता है। कान्ता वहाँ एकाएक खड़ी रह गयी। दस-पंद्रह मिनिट तक समाधि-अवस्था में खो गयी। आँखों से आँसू बहने लगे। उसी क्षण से उसका पूरा अस्तित्व मानो दिव्य स्पर्श से झंकृत हो उठा। फिर गंगोत्री पहुँचे। वह दिन पवित्र था--११ सितंबर (विनोबा जयंती)

रात को सब सोये थे। एकाएक रात को बारह के करीब कान्ता बाहर निकल पड़ी। पहले तो अकेली ही गयी, लेकिन हमारा एकत्व का संकल्प याद आया इसलिए मुझे बुलाने के लिए वापिस लौटी। बाहर कड़कड़ाती ठंड थी, धुआँधार गंगा-प्रवाह, आकाश को छूते ऊँचे-ऊँचे शिखर तथा पाताल में झाँकती खाइयाँ

थीं। आधीरात को ऐसे वातावरण में बाहर जाना मुश्किल था, किन्तु वह तो सुननेवाली थी नहीं। उसका स्वयं अपने पर भी कोई काबू नहीं था। आखिर किशोरभाई और कान्तिभाई को साथ लेकर बाहर निकले।

मानो कोई उसे पुकार रहा था, अपने पास खींच रहा था। कोई अद्‌भुत सृष्टि उसकी नजरों के सामने दृश्य हो रही थी। सारी सृष्टि को गले लगाना था और उसके साथ एकाकार हो जाना था उसे। जुदाई सही नहीं जा रही थी। धुआँधार गंगा में कूदना था। उत्तुंग शिखरों पर चढ़कर आकाश को छूना था। हम चार-पाँच लोगों के लिए भी मुश्किल था उसे पकड़े रखना, इतना जोर आ गया था उसमें। आखिर हमने रामनाम का आसरा लिया। दस वर्ष पहले भी ऐसी अवस्था में रामनाम का बुलन्द जप ही हमारे लिए एकमात्र सहारा बना था।

उस रात करीब तीन घंटे खुले में रहे। कान्ता अपनी मस्ती में थी। रामनाम के कारण इधर-उधर दौड़ना तो बन्द हुआ, किन्तु उसके बदले बार-बार भाव-समाधि लग जाती। हमसे पूछती रहती कि तुम्हें यह सब दिखाई नहीं देता? सुनाई नहीं देता? देखो, कैसी दिव्य सृष्टि फैली है! बड़ी मुश्किल से समझाकर उसे तीन बजे अन्दर ले आये।

करीब पन्द्रह दिन लगातार ऐसी स्थिति रही। एक तो पचीस भाई-बहनों का समूह और सतत प्रवास और जगहें भी ऐसी कि जरा-सा पाँव फिसले तो पहुँच जायें गहरी खाई में। अर्धभान अवस्थावाली या कभी बिलकुल देहभान रहित एकदम मस्ती की अवस्था में उसे इन सँकरी पगडंडियों पर चलाना आसान नहीं था। दिन-रात सतत ध्यान रखना पड़ता था। उसे तो सुध नहीं थी, अपनी धुन में कहीं भी चली जाती। बहुत कठिन था। फिर भी परमात्मा की अनहद कृपा रही। बहुतों का सहयोग मिला। मुझे तो ऐसा ही लगता था मानो हम सब मित्र नहीं, बल्कि कोई और ही सतत उसे सँभाल रहा है।

गंगोत्री-केदार-बद्री के पन्द्रह दिनों में छोटे-मोटे अनेक प्रसंग हुए। कान्ता सतत ईश्वरीय मस्ती में रही। भावसमाधि के बाद मानो सर्वत्र हरिदर्शन का एक क्रम-सा चला। रास्ते चलते कभी किसी वस्तु में, कभी व्यक्ति में ईश्वर का स्वरूप निहारती और उसे गले लगाती, अपने शरीर का एकाध वस्त्र समर्पण करती। उससे जुदा होने पर आक्रंद करने लगती। उसका वह हृदयभेदी रुदन सुनकर अच्छे-खासों की आँखें गीली हो जातीं।

गिरगिट, मकोडा, साँप, वृक्ष, शिला, बकरी का बच्चा और बालक, बूढ़ा,

भिखारी, साधु इस तरह भिन्न-भिन्न में ईश्वर के दर्शन के कुल सत्रह प्रसंग हुए। हर प्रसंग में कान्ता ने अपने अंग से उतारकर कोई-न-कोई वस्त्र भक्तिभाव से समर्पित किया। एक दिन केदार के रास्ते तो एक के बाद एक स्वेटर, मफलर, साड़ी, ब्लाउज, पेटीकोट सब समर्पण करती रही। सारे कपड़े खत्म हो गये, औरों से माँगने पड़े।

बदरीनाथ में एक घटना हुई। रात बारह बजे एक गरम कम्बल लेकर अचानक बाहर दौड़ी। सद्भाग्य से हम दो-चार लोग जाग गये और उसके पीछे दौड़े। बाहर बेहद ठंड थी और घनघोर अंधकार। उसे काफी रोका, किन्तु न मानी। आखिर बाहर निकले।

वह स्वयं हमें रास्ता दिखाती गयी। मानो उसने कुछ देखा था और अब ढूँढ़ रही हो, ऐसा लगा। उस कम्बल को तो जी-जान से पकड़ रखा था हाथ में। कई जगह टकराते, ढूँढ़ते–ढूँढ़ते एक कोने तक ले गयी। वहाँ टार्च के प्रकाश में देखा एक आदमी सिकुड़ा पड़ा था।

उसे देखते ही कान्ता उसके गले लग गयी। वह कम्बल बड़े प्यार से उसे ओढ़ाया, फिर बुक्का फाड़कर रोने लगी। कहने लगी–पिछले दो दिन से, जोशीमठ से ही आपको हर समय ढूँढ़ रही थी। आपका चेहरा सतत आँखों के सामने आता रहता था और यह जगह भी। वह आप ही हैं, वह आप ही हैं। वही रंग, वही रूप, वही शकल! आखिर आज भेंट हुई। उसके बाद कान्ता के चेहरे पर जो शान्ति और तृप्ति दिखाई दी, आज भी आँखों में बसी है।"

यात्रा से लौटने के बाद जो घटित हुआ, उसका वर्णन हरविलासबहन ने दादा धर्माधिकारी के पत्र में इस तरह लिखा था–

"यहाँ लौटने पर भी कान्ता की भावावस्था बनी हुई है। बोलना-चालना कम है। ईश्वर-स्मरण में ही अधिक लीन रहती है। हालाँकि काम के सिलसिले में बाहर जाना होता है। लौटने के बाद बीस-पचीस दिन में बम्बई, लोकयात्रा में सौराष्ट्र और दो बार अहमदाबाद जाना हुआ।

"यहाँ के दो-तीन अनुभवों की बात भी आपके चरणों में निवेदित कर दूँ। एक दिन रात को नौ बजे चन्दन की सुगन्ध ही सुगन्ध फैल गयी। हमारा पूरा घर महक उठा। वह सुगन्ध अन्दर के मन्दिर के कमरे से और कान्ता के पूरे शरीर से उठ रही थी। पूरी रात और दूसरे दिन भी रही। हमारे सिवाय अन्य लोगों को भी उसका अनुभव हुआ। बड़ौदा में निचली मंजिल पर मकान-मालिक रहते हैं, वे

दौड़कर ऊपर आये कि यह सुगन्ध काहे की है? आपके यहाँ कोई इत्र की शीशी फूट गयी क्या? दो दिन बाद बम्बई जाना हुआ। जहाँ-जहाँ गये, वहाँ के लोगों को भी इस सुगन्ध का अनुभव हुआ। सब अपने तईं पूछने लगते सुगन्ध कहाँ से आ रही है? हमारा कुछ कहने का सवाल ही नहीं था।

"एक दिन सैर करने गये। बगीचे में बैठे थे। अचानक मैंने देखा कान्ता के माथे पर रोली-चावल छींटे हुए थे। लोकयात्री बहनों के लिए बदरी-केदार का प्रसाद लाये थे, वह पुड़िया खोली तो उसमें भी ऐसे ही कुंकुम-चावल निकले। लोकयात्रा के साथ थे। द्वारका में दोपहर को खाना खाकर सब एक कमरे में आराम कर रहे थे। हेमप्रभा भराली उठीं तो अचानक उनकी नजर पड़ी कि कान्ता सोयी थी और उसके सिर से लेकर कंधों तक, कमर तक और ठेठ पाँव की एड़ी तक कुंकुम-चावल फैले थे। बम्बई की दमयन्तीबहन ने बताया कि कान्ता उनके घर गयी थी। कान्ता वहाँ से लौट गयी, तब उन्होंने देखा कि कान्ता जहाँ बैठी थी उस जगह पर कुंकुम-चावल की ढेरी-सी पड़ी थी।

"लोकयात्रा में एक दिन 'जयहिंद' दैनिक के एक पैराग्राफ में उसने सब शब्दों को राम-राम-राम ही पढ़ा। स्वयं गिनकर बताया कि ११० राम के नाम थे। राम के सिवा और कोई शब्द ही उसकी नजर में नहीं आया। सब शब्द 'राम' ही बन गये।"

इन दिनों में ईश्वर के ऐसे प्रकट अनुग्रहों की मानो बहार आयी थी। सितम्बर हिमालय में बीता। अक्तूबर के अनुभव दादावाले खत में लिखे हैं। नवम्बर भी ऐसा ही बीता। डायरी में उसकी कुछ झलक मिलती है—

"रात को गुलाब की सुगन्ध शुरू हुई—सुबह बिस्तर में बायें सिरहाने पाँच अत्यन्त सुगन्धी लाल गुलाब व्यवस्थित सजाये हुए थे—पूरे दिन गुलाब की सुगन्ध आती रही... दोपहर को कंघी करते समय देखा माथे में कुंकुम-चावल। धीरेन मजूमदार के शिविर में गये थे मुलुंड। दोपहर सोकर उठी वहाँ कुंकुम और चावल—किशोरभाई के घर सोकर उठी तब कान्ता के बालों की हर लट में, पूरे तकिये पर कुंकुम बिछा था—घर के मन्दिर में दर्शन करने गयी तो देखा चार सुगन्धित लाल गुलाब रखे थे... आज कान्ता को श्मशान जाने की तीव्र इच्छा हुई... आज पूरे दिन मोगरे की सुगन्ध छायी रही... सावर कुंडला में प्रार्थना के बाद ध्यानस्थ थीं। हाथ जुड़े थे देखा उसमें कुंकुम... आज चन्दन की सुगन्ध थी। रात को और दूसरे पूरे दिन रही। दूसरे दिन सुगन्ध अधिक तीव्र थी।"

१९७२ में भी बार-बार ऐसा होता रहा : "पदयात्रा का मुकाम था कराडी में। रात को प्रार्थना के बाद कान्ता की अंजुरी में कुंकुम भरा था। जुगतराम काका भी हाजिर थे। बाद में वे कान्तिभाई से कह रहे थे लड़की दम्भी या झूठी नहीं है। हमने नजरों से देखा न! ... बम्बई में, बड़ौदा में, रांदेर में भजन के बाद अंजलि में कुंकुम ... लामडापुरा में राजाभैया की हाजिरी में प्रार्थना के बाद हाथ में कुंकुम ... दूसरे दिन मोगरे की सुगन्ध।"

'६ जनवरी १९७३ : "पवनार ब्रह्मविद्या मन्दिर में शाम को ७ बजे से चन्दन की सुगन्ध फैलने लगी। महिला मिलन में आयी हुई सब बहनों ने अनुभव किया। दूसरे दिन सुबह साढ़े सात बजे सब ध्यान में बैठे थे, तब कान्ता के हाथों में कुंकुम भर आया। विनोबाजी ने भी देखा। शाम को मोगरे की सुगन्ध।"

विनोबाजी की अंतेवासी कुसुमबहन ने इस बारे में विनोबाजी से पूछा तो उन्होंने कहा—कान्ता से पूछो। कुसुमबहन ने कान्ताबहन से पूछा तो कान्ताबहन ने स्पष्ट कहा कि मैं इसके बारे में कुछ नहीं जानती, मुझे इसका कोई ज्ञान नहीं। यह क्यों प्रकट होता है, मैं समझ नहीं पाती। मैं तो बस रामनाम के सिवाय कुछ नहीं जानती।

उस दिन कान्ताबहन ने विनोबाजी को लिखकर दिया : "ध्यान के समय हृदय में रामनाम रटती हूँ। फिर धीरे-धीरे चित्त की स्थिति ऐसी हो जाती है कि आसपास की हलन-चलन कुछ भी सुनाई नहीं देती, मेरा चित्त मात्र नाम स्मरण में केन्द्रित हो जाता है। कभी-कभी भजन गाते-गाते भी चित्त की ऐसी स्थिति हो जाती है। फिर दस-बीस मिनट के बाद हरविलास मुझे जोर से हिलाती है, तब सुध आती है, और मैं आँख खोलती हूँ। उस समय हाथों में और हाथ के नीचे कुंकुम बिछा होता है। चित्त रामनाम में एकाग्र हो जाता है, फिर कब कैसे कुंकुम झरने लगता है, मुझे कुछ मालूम नहीं पड़ता। हर बार ध्यान के समय चित्त रामनाम में एकाग्र होता ही है, ऐसा नहीं। कई बार होता है। बाकी जितनी बार एकाग्र होता है, उतनी बार कुंकुम झरता ही है, ऐसा भी नहीं।

"मैं स्वयं को जितना पहचानती हूँ, उस पर से कह सकती हूँ कि मैं स्वयं ऐसी अनुभूतियों की कभी इच्छा नहीं करती। यह सब कैसे होता है, कब होता है, क्यों होता है, इसका मुझे ज्ञान नहीं। बचपन से रामनाम-नाम स्मरण यही मेरा एक मात्र संबल है। भगवान के चरणों में मेरी यही आरजू है कि उसका स्मरण मुझे कभी भूलने न दे। बाकी कुछ दिनों से बहुत ही शान्ति-समाधान-संतोष का

अनुभव हो रहा है।

"यह सब आपके आशीर्वाद से ही हो रहा है, ऐसी मेरी दृढ़ मान्यता है। अब आप ही मुझे थामकर आगे की दिशा दिखा दीजिए। यह सब इस तरह समूह में होता है—मुझे अच्छा नहीं लगता। आसपास चर्चा होने लगती है इसलिए मन होता है कि ऐसा हो ही नहीं, उसके लिए कोई उपाय है क्या? इसे कैसे अटकायें, इस बारे में आप कृपया मार्गदर्शन करें।"

विनोबाजी शुरू में तो विनोद करते रहे: "तुम कहती हो कि यह सब बन्द हो, तो क्या यह सब ईश्वर की अवकृपा है?"

कान्ता : "बाबा, हँसी न करिए, मार्गदर्शन दीजिए।"

बाबा : "यह सब बंद हो, ऐसी तुम्हारी तीव्र इच्छा है न? है तो क्यों?"

कान्ता : "समाज में नाहक इसकी चर्चा होती है, वह अच्छा नहीं लगता।"

बाबा : "समाज तुम्हें महान् मानता है या ढोंगी?"

कान्ता : "जिसको जो मानना हो माने, उसकी मुझे कोई परवाह नहीं। किन्तु मुझे सामाजिक कार्य करना है। समूह के बीच रहना है। उसमें यह सब सुहाता नहीं।"

बाबा : "ठीक है। कैसे होता है, क्यों होता है, तुम जानती नहीं। तुम्हें उसकी चाह नहीं। इसलिए खास चिन्ता की बात नहीं। तुम निश्चिन्त हो जाओ। ज्यों-ज्यों आध्यात्मिक प्रगति होती आयेगी, यह सब अपने-आप लुप्त हो जायेगा। लोगों पर इसका परिणाम तो होता है, उससे हमारा अहंकार बढ़ता है। किन्तु तुम कहती हो तुम्हें तो वैसी चाह है नहीं, फिर कोई हर्ज नहीं।

"सत्य साईबाबा ने जे० पी० को अँगूठी निकालकर दी थी। जे० पी० यहाँ आये, तब उसके बारे में उन्होंने मुझसे पूछा। मैंने कहा कि इसका कोई उपयोग नहीं। जो लोग ऐसी सिद्धि का उपयोग करते हैं, उनकी सिद्धि कम होगी, तपस्या क्षीण होगी। सत्य साईबाबा ऐसा कर रहे हैं। तुम्हारी तो ऐसी कोई इच्छा नहीं। अतः तुम्हारी सिद्धि कायम रहेगी। तुम्हारी आध्यात्मिक शक्ति क्षीण नहीं होगी।

"इसका **प्रयोजन कुछ नहीं, केवल परिणाम है** ईश्वर की दृष्टि से कहें तो साधक की परीक्षा है। साधक इसमें फेल हो तो उतना उसका पतन। तुम्हें इसकी चाह नहीं, इसलिए धीरे-धीरे इसका शमन हो जायेगा। तेरी इच्छा नहीं, इसलिए जाने दे। सहज चला जायेगा।

"मीरा ने गाया है-- "अष्ट महासिद्धि आंगणिये रे उभी, मुक्ति छे अमारी दासी रे, पग घुंघुरू बाँध मीरा नाची रे! मीरा न तो मुक्ति की तरफ नजर डालती है, न तो आँगन में खड़ी अष्ट सिद्धि को घर में लाती है, बस, वह तो नाचती रहती है!

"ऐसे अनुभव योगमार्ग में होते हैं, भक्तिमार्ग में होते हैं, ज्ञानमार्ग में नहीं होते। तुम कोई बोझ न रखो। यह सब जब जाना होगा, चला जायेगा।"

परन्तु ईश्वर का लाड़ लड़ाना अभी पूरा नहीं हुआ था। जुलाई १९७३ में हम अमरनाथ यात्रा पर गये थे। हरविलासबहन ने विनोबाजी को उसका वर्णन लिखा था :

"अमरनाथ की यात्रा बहुत ही आनन्ददायी रही। समस्त वातावरण ईश्वर-सान्निध्य की विशेष अनुभूति करानेवाला था। पहलगाँव से आगे बढ़े, तभी से कान्ता की भावावस्था शुरू हुई। सतत ईश्वर स्मरण रहा। बदरी-केदार यात्रा जैसे अनुभव यहाँ भी हुए। किन्तु वहाँ की अपेक्षा यहाँ स्वस्थता अधिक रही। इस बार कान्ता का हमें कोई ध्यान नहीं रखना पड़ा। वह सम्पूर्ण स्वस्थ थी। गहरी भावावस्था में भी स्वयं को सँभाल लेती थी। भावना की तीव्रता जरा भी कम नहीं थी।

"पहलगाँव पहुँचने के पहले वेरीनाग में एक घटना हुई। झेलम का उद्गम देखकर हम आ रहे थे। वहाँ मैले-कुचैले वस्त्रों में लिपटी एक मजदूर स्त्री कान्ता को देखकर खुशी के मारे पागल-सी हो गयी--कितने बरसों बाद मिली! मैं तो तेरी राह देख रही थी। गोबर सने हाथों से ही कान्ता को गले लगा लिया। बस, चल, मेरे घर चल! तुझे दूध तो पिलाऊँ! उससे मिलकर कान्ता को भी अतिशय आनन्द हुआ।

"चन्दनवाड़ी में हम सब बरफ पर बैठे थे। दस-बारह लोग होंगे। कान्ता भावावस्था में थी। नेत्र बन्द थे--ईश्वर के ध्यान में मग्न थी। तब अचानक उसके एक पाँव में चाँदी की सुन्दर पायल चमकने लगी। वह पायल वहाँ कब आयी, कहाँ से आयी, कैसे आयी, हमें किसी को कुछ पता न चला। हमारे एक साथी की नजर अचानक कान्ता के पाँव पर पड़ी तो देखा वहाँ पायल थी।

"शेषनाग से एक विशेष अनुभूति हुई। भीतर सतत रामनाम का जप शुरू हुआ। एक क्षण भी बन्द नहीं। साँस साँस में रामनाम लेती रही। और वह बिलकुल प्रयत्न बिना, अपने-आप ही चलता रहा। 'ज्ञानदेव चिन्तनिका' में आपने जिसे 'अजपाजप' कहा है, वही है न यह? यह जप तीन दिन तक, अमरनाथ

दर्शन करके लौटने तक चलता रहा। शेषनाग में घोड़े को कम्बल ओढ़ाया। सात-आठ वस्त्र भी लोगों को बाँटे।

"पंचतरणी से विशेष आर्द्रता का अनुभव हुआ। मानो समूचा अस्तित्व, विगलित हो रहा हो, आसपास भी सब विगलित हो रहा था। सब एकाकार होता महसूस हुआ। तब तीव्र विरह की संवेदना हुई, मानो अब सहा नहीं जाता। आँखों से अश्रु बहने लगे और कुछ देर बाद तो समाज की सारी लाज-मर्यादा तजकर बुक्का फाड़कर विलाप करने लगी। वह रुदन साधारण नहीं था। यह विशेष विरह-विलाप है, आर्द्र पुकार है, ऐसा अनुभव वहाँ उपस्थित सबको हुआ। यह था प्रेम-विलाप!

"दूसरे दिन अमरनाथ पहुँचे। वहाँ गुफा में हिमलिंग के सन्मुख प्रार्थना करते हुए खड़े थे। कान्ता गद्‌गद हो रही थी, ईश्वरमय थी। हाथ जोड़कर खड़ी थी। अचानक नजर गयी तो देखा कान्ता के पाँवों के आगे हिमलिंग के पास पायल पड़ी थी। यह पायल भी उस चन्दनवाड़ी की पायल जैसी ही थी। दोनों एक ही नाप की, डिजाइन और कारीगरी भी एक-सी। हिमलिंग के नजदीक से पायल को प्रभु प्रसाद मानकर ग्रहण किया।"

यह पत्र पढ़कर विनोबाजी बोले : "सत्य साईबाबा का दृष्टि बन्धन है, लेकिन कान्ता सरल है, भक्त है। हम सबने कुछ महीने पहले अपनी आँखों से यहाँ कुंकुम देखा था।"

ईश्वर का प्रसाद पाने के प्रसंग शुरू में १९६१-६२ के अर्से में बड़ौदा में हुए थे। ४-८-१९६१ की डायरी में लिखा है–

"रात के ८ बजे होंगे। कार्यकर्ता-निवास में हम आठ-दस भाई-बहन प्रार्थना कर रहे थे। भजन-धुन होने पर और भजन गा रहे थे। कान्ता खूब भावावेश में थी। धीरे-धीरे वह ईश्वर-ध्यान में एकाग्र हो गयी, आधा-पौन घंटा ऐसे बीता होगा। लगभग नौ बजे देखा कि कान्ता की अंजलि सुगन्धित कुंकुम से भर गयी है। उसे स्वयं कोई सुध न थी। उसे हिलाकर भावावस्था में से बाहर लाये। क्या हुआ, वह कुछ समझी नहीं। बारंबार ईश्वर को प्रणाम करने लगी और रामनाम का जप अधिक तीव्रता से करने लगी।"

भगवान का अपने भक्त पर ऐसा अनुग्रह, जिसे अन्य लोग भी देख सकें और जो प्रकट वस्तु रूप में था, उसका पहला मौका था। इसकी पराकांष्ठा हुई अमरनाथ के दिव्य लिंग से प्राप्त पायल रूप प्रसाद में।

अमरनाथ की इस पूरी यात्रा में कान्ताबहन को हर तरह से ईश्वर-सान्निध्य का विशेष स्पर्श होता रहा। ऐसा दीखता है कि बड़ौदा में प्रारम्भ ईश्वर-दर्शन यात्रा का चरमबिन्दु पाया यहाँ अमरनाथ में। इस यात्रा के पहले दो-तीन वर्ष बड़ौदा में सघन साधना और गहरी अनुभूति में बीते। फिर हिमालय में गंगोत्री से अमरनाथ के बीच के दो-तीन वर्ष भी अधिक सघन साधना और अधिक गहरी अनुभूति के रहे।

गीता में कहा है : 'स्थावराणां हिमालयः।' साधकों की यह परम पवित्र तपोभूमि रही है। भगवान का यह एक स्थिर, अचल विभूति रूप माना गया है। हिमालय की अद्वितीयता इसमें है कि वह साधक की बुद्धि को परमात्मा में अचल और स्थिर करता है, वहाँ साधक को परमात्मा के साथ नित्य-योग साध्य होता है। कान्ताबहन की 'स्थितप्रज्ञता' की साधना-यात्रा दर्शन-अनुभूति से आरम्भ हुई और हिमालय की गोद में परिपूर्णता को प्राप्त हुई और उसके प्रकट परिपाक रूप उन्होंने भगवत् प्रसाद पाया।

(६) कुछ विश्लेषण

कान्ताबहन की आध्यात्मिक साधना की, आंतरिक अनुभूतियों की और उन्हें प्राप्त परम शक्ति के आशीर्वाद की यह कथा है। उसे यथातथ्य प्रस्तुत करने की कोशिश मैंने की है। अब उसके कुछ प्रमुख मुद्दों की बात हम कर लें। इस बारे में जब भी कोई चर्चा चली है, साधारणतः जो खयाल उठते हैं, उनकी चर्चा कर लेना अच्छा है। ये सवाल मात्र कान्ताबहन की कथा तक सीमित नहीं, ऐसी आध्यात्मिक साधनाओं और सिद्धियों को लेकर सदा सवाल उठते ही रहते हैं। इसलिए कुछ सह-चिन्तन कर लें हम।

कुछ लोगों को इन सब बातों से मूलतः एलर्जी होती है। साधारण जीवन व्यवहार से कुछ भिन्न, गूढ , अगम्य या रहस्यमय देखते ही उनके मन में एक घृणा-सी हो जाती है। उस बारे में कुछ जानने , समझने की उनके मन की तैयारी नहीं होती । आज के भौतिकवाद और तथाकथित वैज्ञानिक अभिगम ने घृणा को और बढ़ा दिया है।

किन्तु यह रवैया तो जीवन को काफी संकुचित , संकीर्ण और सीमित कर डालता है। इस जीवन में और इस सृष्टि में ऐसा बहुत कुछ गूढ़, अगम्य और रहस्यमय है, जो हमारी जिज्ञासा को, हमारे **पुरुषार्थ को चुनौती** देता रहता है। उत्क्रान्ति के क्रम में मानव स्तर पर अंकुरित आत्म-समानता पूरी तरह खिलनी ही

चाहिए न ? इसलिए अध्यात्म की खोज मानव का जन्मसिद्ध अधिकार है, मानव का जन्मसिद्ध कर्तव्य है।

'जन सेवा ही प्रभु सेवा' — में मग्न कई सज्जन भी कभी जाने-अनजाने समत्वहीन रवैया अपनाते हैं। सेवा धर्म परम गहन है। आध्यात्मिक साधना बिना जन सेवा भी मनुष्य को अनेक भ्रान्तियों में जकड़ सकती है। गांधी एक परम आध्यात्मिक साधक थे। विनोबा ने तो **सामाजिक क्रान्ति और आध्यात्मिक साधना को एक ही सिक्के के दो पहलू की तरह माना है।**

जन सेवा का मार्मिक विश्लेषण करते हुए विनोबाजी ने कहा है :

"मुझे लगता है कि हमारी अधिकतर मुसीबत का कारण यह है कि हम **'हरि-सेवक'** बनने के बदले **'जन-सेवक'** बनना चाहते हैं। कई लोग तो **'जन – चालक'** और **'जन-पालक'** बनना चाहते हैं। इस धृष्टता को छोड़ भी दें, फिर भी जन-सेवक बनने में भी दोष है, 'हरि-सेवक' ही बने रहना चाहिए।"

अतः 'सेवा में ही सब समा जाता है' —ऐसा खयाल उचित नहीं। **आध्यात्मिक साधना मानव-जीवन का एक अनिवार्य अंग है।**

अलबता, हर व्यक्ति की आध्यात्मिक साधना का स्वरूप भिन्न-भिन्न होगा। वह यथासंभव सरल, सर्व सुलभ और हमारे साधारण जीवन में ओतःप्रोत हो, यह इष्ट ही है। लेकिन इस वजह से असामान्य आध्यात्मिक अनुभवों को अस्वीकार तो नहीं किया जा सकता, उनकी उपेक्षा तो नहीं कर सकते। साधारण आध्यात्मिक अनुभूतियाँ तो मानव-जाति की उत्क्रान्ति का अगला सोपान बनी रहेंगी।

यह तो सर्व साधारण बात हुई। आध्यत्मिक साधना के प्रति आवश्यक समत्वयुक्त रवैये की। अब कान्ताबहन की आध्यात्मिक-साधना के संदर्भ में उठने-वाले प्रश्नों की चर्चा करेंगे।

एक प्रश्न उठता है क्या साकार ईश्वर-दर्शन संभव है? ऐसी अनुभूति काल्पनिक है या वास्तविक?

इस बात को समझने के लिए गांधीजी और विनोबाजी का एक संवाद उपयोगी है। एक बार गांधीजी ने विनोबाजी को खास अपने पास बुलाकर उनके साथ पन्द्रह दिन तक मुख्यतः आध्यात्मिक प्रश्नों की चर्चा की थी। वे प्रश्न पूछते गये, विनोबा जवाब देते गये। फिर विनोबाजी ने पूछा, "आप जो कहते हैं कि सत्य ही परमेश्वर है, वह तो ठीक है, किन्तु उपवास के समय आपने कहा था कि

आपको भीतर की आवाज सुनाई दी, वह क्या है? इसमें क्या कोई रहस्य है? कुछ गूढ़ है?"

गांधीजी ने कहा – "हाँ, यह ऐसा ही कुछ है। यह बिलकुल साधारण बात तो नहीं। मुझे आवाज साफ-साफ सुनाई दी थी। जैसे कोई मनुष्य बोले और सुनाई दे उसी तरह वह सुनाई दी थी। मैंने पूछा – मुझे कुछ करना चाहिए क्या? तो उसने जवाब दिया, उपवास करना चाहिए। मैंने पलटकर पूछा, कितने? उसने कहा, इक्कीस। ठीक, इसी तरह बात हुई!"

अर्थात् इसमें एक पूछनेवाला था, दूसरा उत्तर देनेवाला। गांधीजी ने कहा कि साक्षात् ईश्वर ने मुझे यह कहा।

तब विनोबाजी ने आगे पूछा, "क्या ईश्वर का कोई रूप हो सकता है?" गांधीजी : "रूप तो नहीं हो सकता, किन्तु मुझे आवाज सुनाई दी थी।" विनोबा : "रूप अनित्य है, तो आवाज भी अनित्य है। फिर भी यदि आवाज सुनाई दे, तो फिर रूप क्यों नहीं दिखाई देता?"

दुनिया में औरों को भी ऐसे जो अनुभव हुए हैं, उनका जिक्र किया। कुछ अपने अनुभवों के बारे में भी कहा। फिर पूछा "आपके मन में प्रश्न-उत्तर हुए, उनका सम्बन्ध ईश्वर से तो है ही न?"

गांधीजी, "हाँ, ईश्वर से सम्बन्ध है। मैंने रूप नहीं देखा किंतु आवाज सुनी। उसके रूप का अनुभव मुझे नहीं हुआ, मुझे उसके साक्षात् दर्शन नहीं हुए, लेकिन हो सकते हैं।"

इस संदर्भ में विनोबाजी कहते हैं: "इस तरह गांधीजी ने आखिर स्वीकार किया कि यदि ईश्वर को सुन सकते हैं, तो उसके दर्शन भी हो सकते हैं। किसी को श्रवण की अनुभूति होती है, किसी को दर्शन की। ऐसी किसी अनुभूति को हम भ्रम या मिथ्या नहीं कह सकते। जिस भूमिका में **ईश्वर अ-शब्द है, उसी भूमिका में वह अ-रूप भी है, और जिस भूमिका में वह स-शब्द है, उसी भूमिका में वह स-स्वरूप भी है**। इसलिए मैं मानता हूँ कि हम ईश्वर को जिस रूप में ध्यायें, उसी रूप में वह हमें दीखता है। किसी भी रूप में प्रकट होने की शक्ति ईश्वर में है। मनुष्य किसी रूप का उत्कटतापूर्वक ध्यान करता हो, रात-दिन उसी का चिन्तन, मनन, भावन करता हो तो उसके समाधान के लिए ध्यानावस्था में ईश्वर उसी रूप में प्रकट हो सकता है और उसका समाधान कर सकता है। इसे मैं मिथ्या नहीं मानता। किसी मनुष्य को भगवद्-रूप का दर्शन हुआ था या नहीं; यह

दूसरा कोई नहीं कह सकता। ध्यान-समाप्ति के बाद उस मनुष्य के व्यवहार पर से लोगों को उसका खयाल आयेगा।''

कान्ताबहन के किस्से में दर्शन की और दर्शन के बाद की विगत हमने जानी, उस पर से स्पष्ट दीखता है कि उसमें कुछ भी काल्पनिक नहीं था, वह वास्तविक ईश्वर-दर्शन था।

कान्ताबहन की अनुभूति के बारे में विनोबाजी को लिखा ही था और उनके प्रति भाव भी हमने देखे। १९६१ की घटना के बाद दिसम्बर १९६२ में विनोबाजी से प्रत्यक्ष भेंट हुई, तब उस घटना के बारे में तथा उसके बाद की अनुभूतियों के बारे में बाबा से प्रत्यक्ष सविस्तर बात हुई। उस समय विनोबा ने कहा: ''तुम्हारे अनुभव सुनना मुझे अच्छा लगा। भारत में और बाहर भी भक्तिमार्गियों को ऐसे अनुभव होते रहते हैं। वे मानसिक नहीं होते। बुद्धिवादी इन्हें बुद्धि से समझने का प्रयत्न करें तो समझ में नहीं आयेंगे। ईश्वर शरण में जानेवाले को ऐसे अनुभव होते हैं।''

१९५६ के 'सेवक' (मराठी मासिक) में विनोबाजी का एक पत्र छपा है, जिसमें वे कहते हैं : ''ईश्वर का रूपदर्शन इत्यादि साक्षात्कार चर्मचक्षु के नहीं, दिव्य चक्षु के विषय हैं। ध्यान-चक्षु के भी नहीं। **चर्म-चक्षु में रूप है, किन्तु देव गुप्त है। ध्यान-चक्षु में देव है, किन्तु रूप गुप्त है। दिव्य-चक्षु में दोनों हैं।**''

दूसरा सवाल उठता है कि ऐसे ईश्वर दर्शन का प्रयोजन क्या है? आध्यात्मिक साधना में उसका स्थान क्या है?

यह सवाल मैंने कान्ताबहन के संदर्भ में विनोबाजी से पूछा था, उनका जवाब था: ''साधक के लिए यह ईश्वर का आश्वासन है। अर्थात् बच्चे, शाबास! बालक को विश्वास हो गया। बस, तो अब बढ़ो आगे! किन्तु यदि बालक ऐसा कहे ना, मुझे आगे-आगे नहीं बढ़ना, यहीं चिपके रहना है, तो बच्चे का विकास कुंठित हो जायेगा। ऐसी अनुभूति को अन्तिम नहीं मान लेना चाहिए और ऐसा आकस्मिक दर्शन सतत दर्शन के मार्ग में बाधक नहीं बनना चाहिए। क्योंकि **हमें तो ऐसी स्थिति में पहुँचना है, जब चौबीसों घंटे सर्वत्र ईश्वर दर्शन होता रहे। यथार्थ में यही ईश्वर का साक्षात्कार है।** साक्षात्कार का अर्थ है कि चिन्तन द्वारा चित्त को जो मान्य है, उसका आँखों से प्रत्यक्ष दर्शन हो। चिन्तन द्वारा समझ में आया कि प्राणीमात्र एक है, किन्तु आँखों से भी तो वैसा दीखना चाहिए। इसी का नाम है साक्षात्कार।''

कान्ताबहन के किस्से में प्रथम दर्शन और फिर उसके विकास का प्रवाह हम स्पष्ट रूप से देखते हैं ।

तीसरा प्रश्न खड़ा होता है, कुंकुम, सुगन्ध, पायल, वगैरह प्रकट होने के बारे में। हमने किसी चमत्कार या विशेष सिद्धि के रूप में तो उसका वर्णन किया नहीं, वरन् ईश्वर के अनमोल प्रसाद के रूप में ही वर्णन किया है। इसके बारे में लोगों की जिज्ञासा रहती है, इसलिए स्वस्थ चित्त से विचार कर लेना जरूरी है।

इसकी कुछ चर्चा पतंजलि के 'योगसूत्र' में है। विनोबा के मँझले बन्धु बालकोबा ने साधकों के खातिर पतंजलि के कुछ योगसूत्रों का सरल विवरण प्रस्तुत किया है। परन्तु उसमें उन्होंने सिद्धियों से संबन्धित कई सूत्र छोड़ दिये हैं। उन्होंने कहा है कि परमार्थिक साधना की दृष्टि से ऐसी सिद्धियाँ आवश्यक नहीं, बल्कि कभी-कभी बाधक भी हो सकती हैं, इसलिए ऐसे सूत्रों को बिलकुल ही छोड़ दिया है।

विनोबाजी का अभिगम इससे भिन्न है :

"मैंने बरसों से पतंजलि के सूत्रों का चिन्तन-मनन किया है। बालकोबा ने अपने भाष्य में जिन सूत्रों को नहीं लिया है, उनका चिन्तन भी मैंने किया है। मैंने यह समझा है कि उनमें से कुछ सिद्धियाँ काल्पनिक हैं, कुछ वास्तविक। जिन कारणों से ये सिद्धियाँ प्राप्त होती हैं, वे कारण चाहे जो हों, उनका विश्लेषण हमारे मन में होना चाहिए। सिद्धियाँ भिन्न-भिन्न प्रकार की होती हैं, इस बात का हमें पता होना चाहिए। विश्लेषण करने से खयाल में आता है कि इसमें की कुछ सिद्धियाँ चित्त-शुद्धि का परिणाम हैं, उन्हें प्राप्त किया नहीं जाता। कुछ सिद्धियाँ ध्यानजन्य हैं। कुछ योगियों को हेतुपूर्वक प्रयोग करने पर अमुक शक्तियाँ प्राप्त हुईं। इस तरह भिन्न-भिन्न प्रकार की सिद्धियों के बारे में विवेकपूर्वक विचार करना चाहिए। सिद्धियों का गहराई से विश्लेषण होना चाहिए। इसलिए यदि मैं लिखता तो बालकोबा की तरह सारी ही सिद्धियों की बात छोड़ता नहीं, बल्कि जिनसे आध्यात्मिक विकास में मदद मिलती है अथवा जिनके बारे में आध्यात्मिक चिन्तन संभव है, ऐसी सिद्धियों के बारे में थोड़ा-बहुत लिखता।"

"यों तो सिद्धियों के बारे में विनोबाजी का चिन्तन यत्र-तत्र काफी मिलता है। किन्तु एक प्रवचन में सिद्धियों का खास विश्लेषण उन्होंने किया है। चम्बल-यात्रा के बाद मध्य प्रदेश में शिवपुरी मुकाम पर ता० १९-६-१९६० को यह प्रवचन दिया था। बंगाल के चारुबाबू ने चम्बल-बागी-समर्पण के बारे में एक लेख लिखा

था। उसमें उन्होंने योग सूत्र से एक सूत्र उद्धरित किया था – **'अहिंसायां प्रतिष्ठायां तत् सन्निधौ वैरत्याग:'**। किसी मनुष्य में जब अहिंसा परिपूर्ण हो जाती है, तब उसके आसपास के जिन प्राणियों में वैर है, वे वैर छोड़ देते हैं और मनुष्य के सान्निध्य में (लोग) आपसी वैर भी छोड़ देते हैं। विनोबा के व्यक्तित्व में अहिंसा की ऐसी प्रतिष्ठा हुई, उसके परिणाम स्वरूप बागी-समर्पण की घटना हुई, ऐसा चारुबाबू ने लिखा था। यह लेख विनोबाजी के पढ़ने में आया। उस पर से विनोबा का चिन्तन शुरू हुआ, और उस दिन का प्रवचन सिद्धियों के विश्लेषण पर हुआ –

"इसका हमने बहुत चिन्तन किया है। मैंने अपने मन में सिद्धियों का वर्गीकरण किया है। सिद्धियाँ मैंने छह प्रकार की मानी है –

(१) योगिक सिद्धियाँ, जो प्राणायाम से हासिल होती हैं।

(२) वैज्ञानिक सिद्धियाँ, जो विज्ञान के प्रयोग से सिद्ध होती हैं।

(३) तत्त्वज्ञानात्मक सिद्धियाँ, जो सूक्ष्म विषयों के चिन्तन से हासिल होती हैं।

(४) मनोजय के कारण हासिल हुई सिद्धियाँ।

(५) ईश्वर-कृपा से हासिल हुई सिद्धियाँ।

(६) गुण-विकास के कारण हासिल हुई सिद्धियाँ।

"योगिक सिद्धियाँ प्राणायाम आदि प्रक्रिया से हासिल होती हैं। शरीर की शुद्धि के कारण और प्राण के नियमन के कारण कुछ सिद्धि प्राप्त होती है, यह बात समझ में आती है। इन दिनों जिन सिद्धियों की ज्यादा चर्चा चलती है, वह ऐसी यौगिक सिद्धियों की। हिन्दुस्तान में उसका बोलबाला है और हिन्दुस्तान के द्वारा अब दुनिया में उसका बोलबाला होता है। प्राण-निरोध के जरिये हासिल होती सिद्धियों का लोगों को बहुत आकर्षण है।

"लेकिन मुझे उसका आकर्षक नहीं है। जैसे अपने शरीर को मजबूत बनाकर कोई गामा पहलवान बनता है, वैसे प्राणायाम द्वारा अपने प्राण का नियमन कर के मनुष्य प्राण द्वारा मिलता हुआ सामर्थ्य प्राप्त करता है। जैसा पदार्थ विज्ञान है, वैसा ही यह एक पिंड विज्ञान है। दोनों भौतिक विज्ञान ही हैं। पदार्थ विज्ञान के जरिये ब्रह्मांड में चमत्कार होते हैं, वैसे पिंड विज्ञान के जरिये मनुष्य के पिंड में चमत्कार होते हैं। मुझे उसका आकर्षण नहीं। उसमें आध्यात्मिक तत्त्व है, ऐसा नहीं दीखता है।

"कुछ सिद्धियाँ विज्ञान के प्रयोग से सिद्ध होती हैं। पहले छोटे पैमाने पर

प्रयोग होता है। वह सफल होता है तो सामाजिक जीवन में उसका एप्लीकेशन होता है और मानवजीवन एक कदम आगे बढ़ता है। आज दुनिया में ऐसी विज्ञान की अनेकानेक सिद्धियाँ प्रकट हुईं हैं। और लोगों को उसका भी बहुत आकर्षण है।

"लेकिन विज्ञान से और प्राणायाम आदि प्रक्रिया से हासिल होनेवाली सिद्धियों का मुझे आकर्षण नहीं है। मनुष्य के जीवन में सुविधा होती जाय, मनुष्य का जीवन उत्तरोत्तर सादा बनता जाय, यह चीज विज्ञान के कारण सधेगी, ऐसा मेरा मानना है। मैं जरूर मानता हूँ कि यौगिक एवं वैज्ञानिक दोनों प्रकार की सिद्धियों का उपयोग जीवन के लिए है। परन्तु परमात्म-दर्शन के साथ उसका सम्बन्ध नहीं है, या मानव के अन्तः समाधान के लिए भी उसका उपयोग नहीं है। ये दोनों भौतिक सिद्धियाँ हैं, और भौतिक जीवन तक उनका उपयोग है।

"अनेक सूक्ष्म विषयों के चिन्तन के परिणामस्वरूप भी कुछ सिद्धियाँ हासिल होती हैं। और वे जीवन के मूलभूत सिद्धान्तों पर प्रकाश डालती हैं। इसलिए कहीं गलती होती हो तो उसे सुधार कर के जीवन को सही दिशा देती है। चिन्तन की गलती को भी सुधार सकती हैं। उदाहरणार्थ, कपिल मुनि के पास चिन्तन है, जिससे जीवन सिद्धि का दर्शन होता है। यह तीसरी सिद्धि गहन तत्त्वज्ञानात्मक सिद्धि है, और वह आध्यात्मिक क्षेत्र में आती है। मनुष्य के अन्तः समाधान के लिए उसका उपयोग है।

"लेकिन तत्त्वज्ञानात्मक यह सिद्धि हरएक को हासिल नहीं है। एक-एक मनुष्य के शरीर की शक्ति की मर्यादा होती है, वैसे बुद्धि की शक्ति की भी मर्यादा है। मैं 'शक्ति' की मर्यादा कहता हूँ, 'शुद्धि' की मर्यादा नहीं। बुद्धि की शुद्धि की मर्यादा नहीं है, लेकिन शक्ति की मर्यादा होती है। बुद्धि की शुद्धि हर कोई प्राप्त कर सकता है। जैसे 'स्थितप्रज्ञ-दर्शन' में मैंने लिखा है कि हर कोई चाहे तो भी राष्ट्रपति नहीं बन सकता है, गामा पहलवान नहीं बन सकता है, लेकिन हर कोई चाहे तो स्थितप्रज्ञ बन सकता है। वह शुद्ध बुद्धि का, स्थिर बुद्धि का, अचल बुद्धि का परिणाम है। लेकिन बुद्धि की शक्ति की तो मर्यादा रहेगी। जैसे व्यास भगवान, मीरा, गौतम बुद्ध, कपिल महामुनि आदि के पास चिन्तन की शक्ति थी, निर्णयशक्ति थी। उसके लिए बुद्धि का प्रकर्ष होना चाहिए, जो खास मनुष्यों में ही होगा। ऐसे मनुष्य शास्त्रकार बनेंगे। और यह आकांक्षा हरएक को रखने की जरूरत भी नहीं है, इसलिए यह तीसरे प्रकार की सिद्धि सामूहिक सिद्धि नहीं बन सकती है।

परिणामतः वह सार्वजनिक क्षेत्र में नहीं आती है।

"इस तरह पहली दो भौतिक सिद्धियाँ हैं, तीसरी आध्यात्मिक क्षेत्र में आते हुए भी विशिष्ट जन तक सीमित है। अतः अब बाकी रही तीन सिद्धियाँ। मनोजय इन्द्रिय-निग्रह और ब्रह्मचर्य आदि से हासिल हुआ। यह एक महत्त्व की आध्यात्मिक सिद्धि है। उससे समाज और व्यक्ति दोनों समर्थ होते हैं। यह सामर्थ्य पैदा करनेवाली सिद्धि है। वैसे तो विज्ञान से एवं प्राणायाम से भी सामर्थ्य हासिल होता है। लेकिन वह भौतिक सामर्थ्य है। और यह मनोजय से प्राप्त होनेवाला सामर्थ्य आध्यात्मिक है। अध्यात्म के मार्ग में मनोजय से प्राप्त होनेवाला सामर्थ्य बहुत मदद करेगा। संसार को गलत रास्ते जाने से रोकेगा। इसलिए नैतिक दृष्टि से इसका महत्त्व बहुत है।

"फिर भी बाकी दो सिद्धियों की तुलना में इन्द्रिय-निग्रह, ब्रह्मचर्य आदि से हासिल होती इस चौथी सिद्धि का भी आकर्षण मुझे कम रहा है। मेरा मुख्य आकर्षण अंतिम दो यानी पाँचवीं और छठी सिद्धि के लिए ही रहा है। ये दोनों सिद्धियाँ सबको सधनी चाहिए। इसके माने यह नहीं है कि जो करुणा आदि से सिद्धि पाता है, या भगवत्-प्रसाद से जिसे सिद्धि मिलती है, उसे इन्द्रिय मनोजय की जरूरत नहीं रहेगी। ऐसा नहीं है।

"अब बची अन्तिम दो सिद्धियाँ। वे दोनों आध्यात्मिक दृष्टि से सबसे अधिक महत्त्व की हैं। परमात्म-दर्शन के साथ उसका सीधा संबन्ध है। अन्तः समाधान के लिए भी उनका उपयोग है।

"भगवत् प्रसाद से जो सिद्धियाँ मिलती हैं, वह तो ईश्वर का चमत्कार है। इसके लिए कोई एक मनुष्य निमित्त हो जाता है। लेकिन वह मनुष्य उसका अहंकार करेगा, तो गिरेगा। पूर्ण निरहंकार होगा, तो परमेश्वर उसे औजार बनायेगा। भक्ति का प्रकर्ष जहाँ होगा और निरहंकारिता जहाँ आयेगी, वहाँ वह सामर्थ्य प्रगट होगी। भक्ति की व्याख्या ही यह की गयी है कि **जहाँ अहंकार का पूर्ण क्षय होगा, वहीं भक्ति होगी**। वहाँ ईश्वर प्रसन्न होता है। वह नम्रता की पराकाष्ठा होगी। साक्षात् ईश्वर चारों ओर है, यह भान सतत रहेगा और शरीर का कोई भान नहीं रहेगा, ऐसी पूर्ण निरहंकारिता से सिद्धियाँ हासिल होंगी। भगवत् कार्य के लिए भगवान ऐसे मनुष्य को इस्तेमाल कर सकते हैं।

"भगवान का औजार बनने के लिए अहंकारशून्य बनना होगा, जहाँ शून्य बनने की बात आती है, वहाँ कोशिश करने से वह चीज नहीं आयेगी। जैसे निद्रा

की कोशिश नहीं होती है। कोशिश होगी, तो निद्रा नहीं आयेगी। वैसे ही शून्य बनने की कोशिश नहीं हो सकती है। हम अपना सर्वस्व भगवान को अर्पण करेंगे, तो वह उसका अपना काम करेगा।

"अब आखिर की जो सिद्धि है, इसका भी आध्यात्मिक दृष्टि से महत्त्व है। वह है करुणादि गुणों से हासिल होनेवाली सिद्धि। जैसे अंगुलीमाल की कहानी है, वाल्मीकि और नारद की कहानी है। इसमें करुणा का प्रकर्ष है। ऐसे किस्से दूसरे देशों में भी बने हैं। अपने यहाँ ज्ञानदेव महाराज के शरीर पर चाबुक की मार के निशान उभरे और वहाँ से खून फूट निकला। जो चाबुक वास्तव में भैंसे की पीठ पर पड़े, उसके घाव ज्ञानदेव की पीठ पर दिखाई दिये। करुणा के प्रकर्ष के कारण उस प्राणी से तादात्म्य होकर यह अनुभूति उनको हुई।

"मेरा मानना है कि करुणा से जो सिद्धि होती है, वही सिद्धि है। **करुणा, दया, क्षमा आदि गुणों के विकास से जो सिद्धि हासिल होती है वही सिद्धि है। और ऐसी सिद्धियाँ सार्वजनिक हो सकती हैं।**"

साधना सिद्धि-चमत्कार के बारे में एक समग्र नक्शा ही विनोबाजी ने प्रस्तुत कर दिया। उसके अनुसार देखें तो कान्ताबहन के निमित्त प्रकट सिद्धियाँ मात्र पाँचवें वर्ग से मेल खाती हैं, अर्थात् ईश्वर-कृपा, भगवत्-प्रसाद रूप सिद्धियाँ इसके अलावा अन्य किसी वर्ग में नहीं समातीं। हम भी अधिक चर्चा में पड़े बिना इसे ईश्वर प्रसाद के रूप में ग्रहण करें।

एक बात विशेष ध्यान में आती है कि ऐसी सिद्धियों का प्रकटीकरण खास दो ही काल में हुआ। पहला १९६१-६२ में, जब कुंकुम झरने के दो-तीन प्रसंग हुए। फिर १९७१ से १९७३ के अर्से में अनेक बार अनेकविध सिद्धियों का प्रकटीकरण हुआ। बीच के समय में ऐसी घटनाएँ नहीं हुईं। तब भी साधना तो चल ही रही थी। इसका यही अर्थ निकलता है कि कान्ताबहन के किस्से में ऐसी सिद्धियों के प्रसंग साधना के अति-उत्कट-काल में हुए हैं और उनके साथ विशिष्ट भावावस्था जुड़ी है। ईश्वर के तीव्रतम स्मरण की घड़ी में, उसके संग उत्कट तादात्म्य के क्षणों में ही यह सब हुआ। इसलिए, इन सिद्धियों का सम्बन्ध भगवद्-कृपा के साथ ही जोड़ा जा सकता है। **भगवद्-प्रसाद द्वारा जो सिद्धियाँ प्राप्त होती हैं, वे ईश्वर का चमत्कार हैं**। उसके लिए कोई एक मनुष्य निमित बन जाता है।

ऐसे भगवद्-प्रसाद का निमित्त रूप बनना, यह परम सौभाग्य है। ऐसे भाग्य के प्रति विनम्र भाव से कृतज्ञता का अनुभव करते हुए कान्ताबहन कहती हैं कि

इन सिद्धियों की न तो मुझे कोई समझ है, न कोई कामना है, न मेरा कोई कर्तव्य है। तात्पर्य यही कि कान्ताबहन के किस्से में यह न तो कोई जन्मजात सिद्धि है, न योग-मार्ग अथवा अन्य साधना से अर्जित-सिद्धि है, न तो इस प्रकटीकरण के बारे में वे सभान हैं। यह तो उनके निमित्त कोई परम-शक्ति प्रदत्त प्रसाद है। यह निमित्त उनकी विशेष भावावस्था के प्रकर्षरूप में उपस्थित हुआ है। जैसा विनोबाजी ने कहा है, "भक्ति का प्रकर्ष जहाँ होगा, ईश्वर चारों तरफ है, ऐसा भान जब सतत रहेगा और शरीर का कोई भान नहीं रहेगा, ऐसी पूर्ण निरहंकारिता से सिद्धियाँ प्राप्त होंगी।"

कान्ताबहन के किस्से में ऐसी भावावस्था नाम-स्मरण की पराकाष्ठा का परिणाम है। कान्ताबहन की साधना में नाम-स्मरण के सिवाय और कोई साधन कभी नहीं रहा। इसलिए किसी के कुछ भी पूछने पर वे कहती हैं– राम नाम लीजिए।

गांधीजी की किताब 'रामनाम' पर विनोबाजी लिखे भाष्य 'रामनाम: एक चिन्तन' में नाम-स्मरण की जो महिमा दर्शायी है, उसे आत्मसात् करना चाहिए।

(७) अंजलिभर आचमन

विनोबाजी ने जिस नाम स्मरण की महिमा गायी है, उसका साकार स्वरूप हमने इन नैनों से निहारा है। हमारा नजदीकी व्यक्ति इतनी एकाग्रतापूर्वक और सातत्यपूर्वक ईश्वर-स्मरण में तन्मय और तल्लीन हो जाये, तो हम पर भी उसका असर हुए बिना कैसे रहेगा? हरविलासबहन तो इस भगवद्-भक्त के साथ एकरूप हो चुकी थीं, दो देह किन्तु एक जीव, एक प्राण। इसलिए वे मात्र साक्षी ही नहीं, सहयात्री बन गयीं।

रांदेर में हरविलासबहन के घर के नजदीक पार्श्वनाथ का मन्दिर है। वहाँ जाकर बैठना उन्हें बहुत अच्छा लगता। तब वे छोटी थीं। बच्ची के मन में विचार आता मूर्ति में से निकलकर भगवान मेरे साथ बातें करें तो कितना अच्छा! बस, मूर्ति की आँखों में आँखें डालकर बैठी रहतीं। अनोखी शान्ति का अनुभव करतीं।

बालपन में अंकित यह अमिट भाव बम्बई छोड़कर भूदान आंदोलन में जुड़ने के तुरन्त बाद एक दिन सपने में फिर जागा।

ता० ६-१-५८ की डायरी में लिखा है : "उठते ही रात का सपना याद आया। मैं देरासर में बैठी थी। काँच की अलमारी में महावीर स्वामी की मूर्ति थी।

मेरे जाते ही मूर्ति का मुख उलटी दिशा में घूम गया। मैंने अत्यन्त आर्द्र भाव से भगवान से प्रार्थना की कि एक बार तो दर्शन दे दो। प्रार्थना करती रही। कुछ देर में देखा मूर्ति फिर पहले की तरह थी। भगवान खूब हँसने लगे, खूब हँसने लगे। अलमारी का काँच टूट जाये और मैं भगवान के गले लग जाऊँ, ऐसी इच्छा हुई। वैसी प्रार्थना की। हाथ छुआते ही काँच टूट गया। भगवान की मूर्ति दो हाथों में ले ली। उनके साथ कुछ बातें कीं। इतने में तो सपना पूरा हो गया।

उनका यह सपना सहोदरा-सी सखी में जब साकार हुआ, तब हरविलास का रोम-रोम पुलकित हो उठा। **जहाँ आत्मा का अनुसंधान हो, वहाँ अन्य देह-मन की अनुभूति भी हमें झंकृत कर देती है**। सह-अनुभूति का मूल अर्थ यही है। अतः हरविलासबहन अपनी आत्मीयभगिनी-सखी की परम अनुभूतियों की मात्र साक्षी ही नहीं बल्कि अंशतः सहभागी बनीं। उन्होंने भी ईश्वर-सामीप्य के उत्कटतम भाव का अनुभव किया। आज भी हरविलासबहन याद करते हुए गद्‌गद हो जाती हैं :

"पल-पल प्रभु-सान्निध्य के वे दिन, महीने, बरसों के स्मरण मात्र से भी आज आँखें छलक जाती हैं, चित्त प्रसन्न-प्रसन्न हो जाता है। मन की गहराई में जीवन-साफल्य की अनुभूति होती है, पूरे अस्तित्व में पावन गंगास्नान का सा अनुभव होता है।"

सह-अनुभूति तो थी ही। कभी प्रभु के सीधे स्पर्श की कामना भी जागी होगी। वह भी परम कृपालु ने पूरी की। दर्शन के शुरुआत की बात है। हरविलासबहन साइकिल से गिर गयी थीं। पाँव में फ्रेक्चर हुआ, प्लास्टर चढ़ा। बिस्तर पर पड़े रहना, तिस पर दर्द भी काफी था। एक दिन अचानक दर्द गायब-सा हो गया। पाँव हल्का लगने लगा हवा की तरह। खड़ी हुई, चलकर देखा। कोई तकलीफ नहीं थी। ईश्वर-अनुग्रह की अनुभूति हुई। कमरे में चहलकदमी करने लगी। ईश्वर के प्रति अनोखी कृतज्ञता का भाव जागा। मन ही मन चरणों में कोटि-कोटि वंदन किये। करीब आधे घंटे तक यह अनुभव होता रहा। फिर दर्द जैसे अचानक गायब हुआ था, वैसे शुरू हो गया। पाँव बोझिल हो गया। चलना असंभव। समझ गयी कि **ईश्वर-कृपा की प्रत्यक्ष प्रतीति** के खातिर यह अनुभव हुआ। अब इस प्रतीति को हृदय में सँजोकर रखना है। फिर ऐसी कामना करना ठीक नहीं।

विनोबाजी ने यथार्थ कहा है कि कान्ता का हृदय बहुत निर्मल और कोमल

है, और भावाविष्ट भी। हरविलास का हृदय वैसा ही निर्मल किन्तु विवेक-प्रधान है। इस सृष्टि में हरएक का व्यक्तित्व अलग होता है। एक पेड़ की दो पत्तियाँ भी कहाँ एक-सी होती हैं? हरएक का अस्तित्व भिन्न-भिन्न है। उसी तरह हर जीव की अपनी ईश्वरानुभूति अलग और अद्वितीय ही होगी। विवेक-प्रधान दिल की अनुभूति और भावाविष्ट दिल की अनुभूति की एक लय होगी, एक सुरावलि भी होगी, फिर भी दो सुरों-सी भिन्नता रहेगी।

हरविलासबहन का विवेक-प्रधान व्यक्तित्व भी ईश्वर-स्मरण में सराबोर है। इसलिए उनकी सखी भगवान की भक्त अपने जीवन के परम भाग्यशाली पल में—प्रथम राम-दर्शन की घड़ी में भी बोल पड़ी कि इसे छोड़कर नहीं जाऊँगी। गंगोत्री में सुध भुलानेवाली तीव्र व्याकुलता और उत्कटता में भी वह हरविलास को बुलाने लौट पड़ी थी। यों तो अध्यात्म मार्ग में अकेले चलना होता है, परन्तु इन भगिनीद्वय के किस्से में अध्यात्म मार्ग में भी सह-साधना होती रही है।

इसलिए मेरे इन नैनों ने तो एक नहीं दो-दो एकत्व दर्शन किये हैं। कान्ताबहन के ईश्वर-एकत्व -साक्षात्कार का मैं साक्षी बना, साथ ही इन भगिनी-द्वय के एकत्व का भी साक्षी बना हूँ। यह एकत्व-दर्शन मेरे लिए ईश्वर-दर्शन जैसा आनन्ददायी है। आत्मैक्य का यह साक्षात्कार ही मेरे लिए ईश्वर की एक परम अनुभूति है।

वैसे भी मैं नास्तिक तो नहीं था। फिर भी मेरी आस्तिकता बौद्धिक थी। रामकृष्ण परमहंस, मीरा, अन्य भक्तजन तथा विनोबाजी जैसों की ईश्वरमयता हृदय को स्पर्श जरूर करती थी, किन्तु यह सब पठन-चिन्तन तक सीमित था। विशेषतः मैं विनोबाजी के विचारों से प्रभावित था। उन विचारों का मनन करता, चिन्तन करता रहता। जब से समझ आयी, मेरे चित्त में, विनोबाजी ही बस गये थे। मेरे चित्त के कोष विनोबा-विचार से गठित हुए, पुष्ट हुए हैं। फिर भी विनोबा के व्यक्तित्व में दृष्टिगोचर **भक्तिमय ईश्वरनिष्ठा - ईश्वरमयता मेरे लिए श्रद्धा का विषय थी, आत्म प्रतीति का नहीं।**

१९५९ के अन्त में बम्बई छोड़कर मैं विनोबाजी के आंदोलन से जुड़ा, उसके एक वर्ष के अन्दर ही कान्ताबहनवाली घटना हुई। ईश्वर-मिलन की ऐसी तीव्र छटपटाहट मैंने जीवन में पहली बार देखी। काया को निचोड़कर, देहभान भूलकर, लोकलाज को नितान्त छोड़कर ईश्वर भक्ति में सराबोर, तल्लीन और तन्मय एक व्यक्ति को मैंने हर क्षण ईश्वर-स्मरण में जीते देखा। उनकी व्याकुलता, तड़पन

और छटपटाहट मेरा नखशिख छू गयी। भक्ति क्या है, ईश्वर निष्ठा क्या है, इसका मुझे प्रत्यक्ष साक्षात्कार हुआ। अब यह सिर्फ किताबी चीज नहीं रह गयी थी, प्रत्यक्ष अनुभूति की चीज बन गयी थी।

यदि यह भक्ति मैंने किसी महान् संत-महात्मा, या विनोबा जैसे महापुरुष में देखी होती तो शायद वह मुझे दूर की बात लगती। किन्तु एक साधारण व्यक्ति जिसके साथ रोज उठते, बैठते, जीते हैं, काम करते हैं, जिनमें हम जैसे ही गुणदोष हैं, उनकी भक्ति का मुझ पर गहरा असर हुआ। साथ ही इन दोनों बहनों के एकत्व की भी मुझ पर गहरी छाप पड़ती गयी।

ऐसी ईश्वरमयता का मैं साक्षी बना, इसे मैंने अपना परम सौभाग्य माना। मेरी शक्ति-मति के मुताबिक इस साधना में बाह्यरूप से सहायभूत होने की सहज लगन मन में रही। ज्यों-ज्यों साधना आगे चलती रही, मैं भी उसमें सराबोर होता गया, उसका पुनीत स्पर्श पाता गया। विनोबाजी के विचारों में तो ईश्वरनिष्ठा और ईश्वरमयता के दर्शन हुए ही थे, अब इन शब्दों में और इन विचारों में नया अर्थ भर गया। वह जीती-जागती अनुभूति बन गयी।

इसके कारण मेरी जीवन दृष्टि को नया मोड़ मिला। जीवन के प्रति और जगत् के प्रति एक नूतन दृष्टिकोण मिला। मेरे सन्मुख एक नया, बिलकुल नया ही क्षेत्र खुल गया। मात्र भक्ति और ईश्वरनिष्ठा सम्बन्धित विचार ही नहीं, विनोबाजी की समग्र विचार सृष्टि भी अब एक नये अर्थ में, नये भाव में मेरे सामने खुलने लगी। विनोबाजी जिस शब्द शक्ति की उपासना की बात करते थे, उसका यथार्थ मर्म मेरे अन्तर में स्पष्ट होने लगा। ऐसी **शब्द शक्ति की उपासना**, यही मेरे लिए स्वधर्म है, ऐसी प्रतीति होती गयी।

जीवन के इस विशेष अनुभव ने मुझे बुद्धि की मर्यादा के बारे में सावधान किया, हृदय शुद्धि और चितशुद्धि की प्रचंड शक्ति के बारे में सभान बनाया और जिन्दगी को गंभीरता से लेना सिखाया। अथातो ब्रह्मजिज्ञासा... जैसी कोई जिज्ञासा अभी मेरे हृदय में जागी नहीं थी। किन्तु इस विशेष अनुभव ने मुझे उस ब्रह्म की किंचित् झाँकी करायी और मेरे पुरुषार्थ के लिए चुनौती रूप एक नूतन दालान के द्वार खोल दिये। दोनों बहनों का एकत्व, जो मुझे ईश्वर सामीप्य की सी तृप्ति कराता था, उस एकत्व के पुनीत संगम में मेरी धारा भी सहज रूप से मिल गयी।

संक्षेप में, एकत्व के साक्षात्कार की जो पुनीत गंगा बही, उसका अंजलिभर आचमन मैंने भी किया।

११
योगः कर्मषु कौशलम्

*बम्बई छोड़कर दोनों बहनें १९५७ में भूदान आंदोलन से जुड़ीं। पहले तीन वर्ष आंदोलन के छोटे-मोटे काम करते-करते समाज सेवा के प्राथमिक पाठ ग्रहण करती गयीं। खास किसी विशेष मार्गदर्शन के बिना स्वयं हाथ-पाँव हिलाकर तैरना सीखना था। कड़ी मेहनत और एक-निष्ठा के कारण सीखती गयीं। शुरू से ही उनके काम में कर्मठता और कर्मकुशलता की झलक दीखती रही। लोक-संपर्क की निपुणता उनमें थी। **लोक-हृदय के साथ ओत-प्रोत होने की कोशिश** थी। इस तरह उनकी समाज सेविका की छबि उभरती गयी और समाज में अपना विशिष्ट स्थान बनाती रही।

१९६० का वर्ष उनके लिए निर्णायक वर्ष रहा। चम्बलयात्रा में दोनों बहनों को विनोबाजी का निकट परिचय प्राप्त हुआ। उन अनासक्त सँन्यासी का मधुर वात्सल्य दोनों ने पाया। उनका सीधा मार्गदर्शन भी मिलने लगा। विनोबाजी ने कह दिया कि अभी एक जगह स्थिर न बैठो। हमारा तो काम है पूरे समाज में अलख जगाना। तुम्हारी उम्र २९-३० की है। बयालीस होने तक घूमती रहो। द्विधा को छोड़कर केवल व्यापक विचार-प्रचार का कार्य करो। 'भूमिपुत्र' और साहित्य घर-घर पहुँचाओ। व्यापक कार्य के लिए गुजरात में और पूरे देश में घूमो।

इस तरह दोनों के कार्य का स्वरूप १९६० में निश्चित हो गया। विनोबाजी का मार्गदर्शन उनके लिए आदेश-रूप था। इसी अर्से में विनोबाजी ने गुजरात के कार्य-कर्त्ताओं को बड़ौदा में सघन कार्य करने की सलाह दी थी। उनके अनुसार दिसम्बर १९६० में दोनों बहनें भी बड़ौदा के काम में जुट गयीं। १९७४ तक चौदह वर्ष हेड-क्वार्टर बड़ौदा रहा।

बड़ौदा-निवास के आरम्भ में जनवरी १९६१ में ईश्वर-दर्शन की घटना हुई और एक विशेष आध्यात्मिक साधना शुरू हुई। बड़ौदा के उस निवास-काल में यह

साधना सतत तीव्रता से चलती रही। साथ ही कर्मयोग भी चला। कर्म-विमुखता तो महीने-डेढ़ महीने रही थी। बाकी तो पूरी साधना काम करते-करते ही चली। आध्यात्मिक तीव्रता, व्याकुलता, तड़पन सब भीतर चलता रहा और हाथों से बाहर कार्य होते रहे। कर्ममय भक्ति की और भक्तिमय कर्मयोग की तीव्र साधना चली। कर्म की कुशलता का योग सधा।

चौदह वर्ष के इस कर्मयोग का विवरण हम मुख्यतः 'भूमिपुत्र' की फाइलें और विनोबाजी के साथ हुए पत्र-व्यवहार पर से देखेंगे। ये पत्र जानकारी देते हैं और रसपूर्ण पठन-सामग्री भी। बहनें विनोबाजी को नियमित पत्र लिखतीं। उनमें वे अपने काम का लेखा-जोखा, अपनी मनःस्थिति का वर्णन, मन में उठते प्रश्न, काम और आंदोलन संबन्धित सब बातें विस्तार से लिखती रहीं और विनोबाजी के जवाब तथा मार्गदर्शन प्राप्त करती रहीं।

विनोबाजी के पत्र नियमित मिलते रहें, इसके लिए बहनें सतत अनुनय करती रहीं: "आप इसे आसक्ति मानें तो आसक्ति और आलम्बन माने तो आलंबन, किन्तु हमें तो आपके पत्र की आवश्यकता रहती ही है। लक्ष्मण की तरह साथ घूमना न हो सके तो भरत की तरह आखिर पादुका तो चाहिए ही। पूरी निर्गुण भक्ति हमसे नहीं होती... आप एक वर्ष के लिए वाई गये थे, तब आपने गांधीजी को लिखा था–"आप मुझे पत्र लिखें, ऐसा विनोबा का-आपको पितातुल्य समझनेवाले आपके पुत्र का सत्याग्रह है।"आपके पत्र के बारे में हमारे मन में ऐसी ही भावना है और ऐसी ही तीव्र उत्कंठा है, आप ऐसा ही मानें।"

विनोबाजी भी इसका अनुकूल प्रतिभाव देते रहे "मुझे तुमको पत्र लिखना चाहिए, यह तुमने ऐतिहासिक सबूत देकर सिद्ध कर दिया है.... मुझसे तुम पत्र की अपेक्षा रखती हो, वह रखने का तुमको अधिकार है।"

इन पत्रों में रूखे नहीं, किन्तु प्रेमल और वत्सल विनोबा के दर्शन होते हैं। उनमें हार्दिकता का स्पर्श है। बहनों को तैयार करने में अपनी पूरी शक्ति लगाने की उनकी भूमिका इन पत्रों में स्पष्ट दिखाई देती है। एक पत्र में उन्होंने लिखा है: "भारत में स्त्री शक्ति जगनी चाहिए, यह एक वासना मेरे मन में बरसों से उठ रही है।" इसलिए इन पत्रों में व्यक्तिगत स्पर्श है, लाड़ भी है.......

"दो महीने बाद हम असम पहुँचेंगे, जहाँ तुमने पूर्व तैयारी का काम कर रखा है।" .... "हम दिसम्बर में मध्य प्रदेश में प्रवेश करेंगे और वह हरविलासबहन का क्षेत्र माना जाता है।" (उस समय हरविलासबहन सर्व सेवा संघ की क्षेत्रीय मंत्री थीं और उनका क्षेत्र था गुजरात, महाराष्ट्र, राजस्थान और मध्य प्रदेश)

एक बार पत्र जरा लम्बा हो गया, इसलिए बहनों ने लिखा : ''जो भावनाएँ जागीं और जो विचार उठे, वे सहज ही व्यक्त हो गये। पत्र बहुत लम्बा हो गया है। किन्तु अब तो वैसा ही आपको भेज रहे हैं। कुछ अविवेक हो गया हो तो क्षमा करें।''

विनोबाजी ने लिखा ''पत्र लम्बा लिखा गया, उसमें अविवेक क्या हुआ? बल्कि, तुम्हारे लम्बे पत्र मुझे बहुत भाते हैं।''

दोनों बहनों ने उनके चरणों में संपूर्ण समर्पण कर दिया था : ''हमारे इस माटी के पिण्ड को कुम्हार-चाक पर चढ़ाकर आप अपना मनचाहा आकार दे दीजिए–हम तैयार हैं। .... कर्म द्वारा ब्रह्मविद्या की दिशा में जाना चाहते हैं.... आपने मार्गदर्शन दिया है। पत्रों द्वारा अधिक मार्गदर्शन देते रहें।''

विनोबा ''पत्र मिला। उसमें जो भावना प्रकट हुई है, वह दिल को छुये बिना नहीं रहती.... अपनी प्रत्येक कृति ईश्वर के साथ जोड़ने का अभ्यास करो तो उसकी कृपा का तुमको अनुभव होगा और बुद्धि खुल जायेगी..... बड़ौदा के काम में तुम जुट गयी। मुझे विश्वास है, उससे मानव-हृदय का मंगल-दर्शन तुमको मिलेगा।''

बड़ौदा के कामों में दोनों पूरी तरह से डूब गयीं। सफाई, लोक-सम्पर्क, बहनों से खास सम्पर्क, बाल संस्कार-कार्यक्रम, सर्वोदय-पात्र, शान्ति सेना इत्यादि कार्यों में शामिल हुईं। इसके साथ मुख्य कार्य किया घर-घर 'भूमिपुत्र' पहुँचाने का। १९६१ में काम शुरू किया। पूरे शहर में करीब चार महीने में हजार से अधिक ग्राहक बनाये। फिर बबलभाई की पदयात्रा में साथ रहकर साढ़े तीन महीने में चार हजार ग्राहक बनाये।

१९६३ से बड़ौदा शहर की ज्योति, एलेम्बिक, साराभाई वगैरह की बड़ी कम्पनियों में 'भूमिपुत्र' का काम शुरू किया। इन कम्पनियों में तीन शिफ्ट चलती हैं। अतः सुबह की, दोपहर की और रात की तीनों शिफ्ट में जाकर मजदूरों और कर्मचारियों से संपर्क करके ग्राहक बनाने का जोरदार काम शुरू किया। रात-दिन लगातार काम करती रहीं। एक भी मनुष्य बिना संपर्क किये न रहे। एलेम्बिक ग्लास कम्पनी के डेढ़ हजार कर्मचारियों में से ९६५ ग्राहक बनाये। बड़ौदा पचरंगी शहर है। विविधभाषी लोग यहाँ रहते हैं। इसलिए गुजराती 'भूमिपुत्र' के अलावा अन्य भाषा की 'भूदान-पत्रिका' के ग्राहक बनाये। १९६३ में साराभाई केमिकल्स में कुल १,५२६ ग्राहक बनाये, जिसमें २४२ मराठी, हिन्दी, तमिल, तेलगु, कन्नड़, मलयालम, सिन्धी और अंग्रेजी पत्रिकाओं के ग्राहक थे।

इस काम को सातत्यपूर्वक चलाती रही, इसलिए इनमें से लगभग ७०-८० प्रतिशत ग्राहक फिर 'रिन्यू' होते रहे। परिणामस्वरूप अकेले बड़ौदा शहर में पाँच वर्ष तक 'भूमिपुत्र' के चार-पाँच हजार ग्राहक कायम रहे। फिर बड़ौदा से बाहर सूरत, नवसारी, नडियाद की मफतलाल मिल्स में और अतुल संकुल में जाकर ग्राहक बनाये।

इन कम्पनियों में, मिलों में और कारखानों में कैसी विषम और तनावपूर्ण परिस्थिति में लोगों को काम करना पड़ता था, उसका वर्णन विनोबाजी को लिखा था–

"यह है बड़े-बड़े स्पिनिंग और वीविंग डिपार्टमेण्टवाली कपड़े की मिल। इसकी हर मशीन पर काम करनेवाले मजदूर के बालों में रुई के रेशे और सूत के धागे फँस गये हैं। उनके श्वासोच्छ्वास में से ये रजकण फेफड़ों के अन्दर भी पहुँच जाते हैं। यह है दवा और रसायनों का कारखाना। इसकी छोटी-बड़ी सारी टाँकियों से दवा की चित्र-विचित्र गन्ध आती है और विषैली भाप उठती रहती है। इस ग्लास की फैक्ट्री में बनती हैं शीशियाँ, प्यालियाँ और अन्य काँच के बर्तन। रेत को पिघलाकर उसका रस बनानेवाली उसकी विशाल भट्ठियों के नीचे धधक रही हैं रक्तरंजित ज्वालाएँ, और मशीन के आसपास काँच की किरचें, टुकड़े बिखरे पड़े हैं ..... प्रचण्ड मशीनों द्वारा लोहे के स्पेयर पार्ट्स बनानेवाले इस कारखाने की भट्ठियों के चारों ओर लोहे की किरचें बिछी पड़ी हैं। हर जगह बड़ी-बड़ी राक्षसकाय मशीनों का कानफोड़ू भयंकर शोरगुल तो है ही।

"यह सारी है तो वैज्ञानिक शोध, किन्तु यहाँ का समस्त वातावरण अवैज्ञानिक है। मजदूरों के तन-मन के स्वास्थ्य की दृष्टि से सोचें तो विघातक हैं। हमारे लिए भी यहाँ घूमना खतरनाक है और यह सब मन को भी सुहाता नहीं। किन्तु बाबा, हृदय में एक लगन है कि 'भूमिपुत्र' को व्यापक बनाना है, घर-घर पहुँचाना है, और वह भी कम-से-कम समय में। इसलिए मजदूरों से मिलने पहुँचती हूँ हर मशीन के पास, स्टाफ के लोगों से मिलने पहुँचाती हूँ हर टेबुल के पास। उन्हें समझाती हूँ कि आज की बिगड़ती परिस्थिति में 'भूमिपुत्र' का विचार और पठन अत्यन्त जरूरी है और उन्हें ग्राहक बनने की प्रेरणा देती हूँ।"

"बाबा, कभी-कभी थक जाती हूँ। किन्तु तब आँख के सामने स्वामी सहजानन्दजी खड़े हो जाते हैं। स्वामीनारायण सम्प्रदाय गुजरात में काफी फैला है। ये लोग इसके प्रचार के लिए गाँव-गाँव में, खेत-खेत में, सर्दी-गरमी, बारिश में,

किसानों के पीछे घूम-घूम कर उन्हें धर्म की बातें समझाते, उपदेश देते। इस तरह उन्होंने सम्प्रदाय को व्यापक बनाया। इन सब बातों की याद से काफी प्रेरणा मिलती है और बल मिलता है। हमारा उद्देश्य किसी सम्प्रदाय की स्थापना नहीं है, किन्तु सर्वोदय समाज की स्थापना का और सर्वोदय-विचार को व्यापक बनाने का है। अतः हमें भी ऐसी जहमत उठानी ही पड़ेगी। अब शहर के छोटे-छोटे कारखानों में भी यह काम शुरू किया है।''

कई वर्षों तक 'भूमिपुत्र' के व्यापक प्रचार का काम बहनों का प्रमुख कार्य रहा। आठ-दस वर्ष लगातार हर वर्ष पाँच-छह हजार ग्राहक इन्होंने बनाये होंगे। १९६९ गांधी शताब्दी वर्ष था, उस निमित्त जून १९६८ में विनोबाजी को पत्र में लिखा : ''अभी 'भूमिपुत्र' सत्रह हजार घरों में पहुँचता है। अगले दो-तीन महीनों में पचीस हजार घरों में पहुँचाने का प्रयत्न करेंगे।'' बहनों ने संकल्प किया, साथियों ने भी सहयोग दिया। परिणामस्वरूप सबके सम्मिलित पुरुषार्थ से 'भूमिपुत्र' की ग्राहक संख्या १९६९ में अट्ठाइस हजार तक पहुँची।

विनोबाजी के विचारों द्वारा समाज में आत्मज्ञान का प्रसार हो रहा है, यह बात बहनों के मन में जम गयी थी। १९६३ में विनोबाजी को एक पत्र में लिखा : ''भूदान पत्रिकाओं के ग्राहक बनाना तो भक्ति-प्रचार है।'' इसी भावना से वे अपना काम कर रही थीं।

कई लोग बातें करते कि हजारों ग्राहक बना तो रहे हैं, किन्तु उनके रैपर भी खुलेंगे क्या? बहनें विनोबाजी से इसका ज़िक्र करतीं तो वे सदैव कहते : ''ऐसे व्यापक क्रान्ति कार्य तो सर्वत्र बीज बोने से ही होंगे। किसान जब बीज बोता है, तब इसका विचार करते नहीं बैठता कि इसमें से हर बीज उगेगा या नहीं।''

गांधी-शताब्दी वर्ष में कान्ताबहन ने **'मटकी में गिरधारी'** शीर्षक का एक लेख 'भूमिपुत्र' में लिखा। उसमें उन्होंने कहा : ''गांधी-विनोबा की बातें घर-घर पहुँचा तो दें। जो चीज हमें इतनी ज्यादा मीठी लगती है, उसे दूसरों को भी तो चखायें! वह गोपी मटकी में दही बेचने निकली थी। उसके लिए वह केवल दही नहीं था, वह तो उसका गिरधर था। हमारे लिए भी यह मात्र पोथे-पत्रे थोड़े ही हैं? यह तो गांधी-विनोबा-विचार-रूप हमारे गिरधर हैं। जिस गिरधर के हम मतवाले बने हैं, औरों को भी उसके मतवाले बनायें।''

यह कोई काव्यमय या अलंकारिक भाषा मात्र नहीं। अगर इसमें काव्य है तो वह जीवन का काव्य है, उपमा अलंकार अगर हैं तो वे भीतर से उगे हैं। कान्ताबहन को काम करते समय, आसपास का सब भूलकर उस काम में पूरी तरह

डूबते हुए, उस काम में अपनी पूरी शक्ति उड़ेलते हुए मैंने देखा है, काफी निकट से अवलोकन किया है और उस बारे में काफी चिन्तन भी किया है।

कर्म के साथ योग साधने के लिए वाद-विवाद से परे, संदेहरहित निश्चयात्मक बुद्धि चाहिए, कर्म का विकर्म बनना चाहिए। **'गीता प्रवचन'** के चौथे अध्याय में विनोबाजी ने विकर्म का सुन्दर विश्लेषण किया है: ''कर्म अर्थात् बाह्य स्वधर्माचरण की स्थूल क्रिया ..... इस बाह्यु क्रिया में चित्त उड़ेलने का नाम विकर्म है .... बाहर का सादा कर्म, अन्दर का यह विशेष कर्म है विकर्म .... बाहर तप और अन्दर जप ..... हृदय की आर्द्रता, बाह्य कर्म में न हो, तो वह स्वधर्माचरण शुष्क रहेगा। उसमें निष्कामता के फल-फूल नहीं खिलेंगे .... बाहर के कर्म के साथ अन्दर की चित्त-शुद्धि का कर्म जुड़ जाये तो ही निष्काम कर्मयोग प्राप्त होता है— कर्म के साथ आन्तरिक मेल होगा, तो वह कर्म अलग ही होगा ....कर्म बन्दूक के दारूगोले की तरह है। उसमें विकर्म की आँच लगते ही काम फतह होता है ..... माँ बेटे की पीठ पर हाथ फिराती है। एक पीठ और उस पीठ पर फिरता हुआ एक टेढ़ा-मेढ़ा हाथ। किन्तु उस क्रिया में माँ ने अपना हृदय उँड़ेल दिया है। उस कर्म में यह विकर्म उँड़ेला है, इसलिए उसमें अपूर्व आनन्द मिलता है—कर्म किया हो ऐसा नहीं लगता, क्रिया करने के बावजूद अकर्ता हो जाते हैं .... कर्म में विकर्म मिला देने से चाहे जितना कर्म करें, फिर भी थकान नहीं लगती।''

कान्ताबहन ने जो-जो काम हाथ में लिये, उन्हें विद्युत गति से पूरे किये और उनमें व्यापक परिणाम पैदा किये। इसका रहस्य समझने की मैंने कोशिश की है। उसका समाधान का एक उत्तर मुझे विनोबाजी के उपरोक्त विकर्म-विवरण में मिला है। उनके लिए कर्म मात्र कर्म नहीं रह जाता, विकर्म बन जाता है। विनोबाजी के प्रति अनन्य श्रद्धा के कारण अपने कामों में वे अपना दिल उँड़ेल देती हैं और काया को निचोड़ देती हैं। जो परिणाम निपजते हैं, वे इसी वजह से निपजते हैं।

चन्दा इकट्ठा करना तो आज कान्ताबहन के लिए सहज हो गया है। किन्तु उसका पहला झरना फूटा, उसका मैं साक्षी हूँ। १९६२ में पहली बार गुजरात सर्वोदब सम्मेलन होनेवाला था। तब नारायणभाई देसाई गुजरात छोड़कर काशी रहने चले गये थे और अखिल भारतीय कामों में लग गये थे। गुजरात सर्वोदय मण्डल लगभग नेतुत्वहीन हो गया था। हम छोटे-छोटे कार्यकर्ता अपनी सूझबूझ और शक्ति के मुताबिक काम सँभालने लगे थे। ऐसी परिस्थिति में रविशंकर महाराज, जुगतराम काका जैसे बुजुर्गों की इच्छा थी कि यदि गुजरात सरकार से

मदद मिलती हो तो उसे स्वीकार कर लें। इस तरह ग्राण्ट के रूप में पचास हजार प्राप्त भी किये थे। किन्तु हमें ऐसा लगता था कि सरकारी मदद के बिना काम चले तो अच्छा। आखिर लोगों से प्राप्त चन्दे के आधार पर सम्मेलन का पूरा खर्च निभाया और पचास हजार की ग्राण्ट की रकम सरकार को लौटा दी।

सारे कार्यकर्ता और अनेक शुभेच्छु मित्रों के साथ-सहयोग से, पुरुषार्थ से यह संभव हुआ। इस प्रसंग के निमित्त से कान्ताबहन की इस शक्ति का अन्दाज मिला। उन्होंने तो मन-ही-मन निश्चय कर लिया और काम में जुट गयीं। ऐसे काम का अनुभव तो था नहीं। उनके नाम से कोई कुछ दे, ऐसी परिस्थिति भी नहीं थी। किन्तु सुबह से रात तक घूमती रहीं। श्रद्धापूर्वक माँगती रही। छोटे-मोटे दान मिलते रहे। सवा महीने के भीतर पन्द्रह सौ व्यक्तियों से सैंतीस हजार रुपये चन्दा इकट्ठा किया। उसमें ५४१ व्यक्तियों से एक-एक रुपया, २६८ से पाँच-पाँच रुपये, १३९ से दस-दस रुपये, और ५६० व्यक्तियों से दस रुपये से अधिक रकम प्राप्त की। बूँद-बूँद से सरोवर भरा, जिसके लिए शक्ति की बूँद-बूँद खर्च कर दी।

१९६४ में **अखिल भारतीय शान्ति सेना मंडल** को काफी आर्थिक परेशानी थी। नारायण देसाई मन्त्री थे। उन्होंने कान्ताबहन से चन्दा इकट्ठा करने के लिए कहा। जयप्रकाशजी शान्ति सेना मण्डल के अध्यक्ष। उन्होंने कई बड़े लोगों के नाम सुझाये और उनसे भेंट करने को कहा। परन्तु ता० २-५-६४ के पत्र में बहनों ने विनोबाजी को लिखा है: "बम्बई के बड़े-बड़े लोगों के पास जाने से पहले गुजरात में ही देहातों में और अन्यत्र घूमकर छोटी-छोटी रकम के दान के लिए प्रयत्न करना अधिक ठीक लगा। इस तरह अभी सात-आठ दिन में १५९ व्यक्तियों से ९,९६९ प्राप्त किये हैं।"

बाद के पत्र में लिखा: "बम्बई कांग्रेस महासमिति की बैठक के लिए सात-आठ लाख का चन्दा इकट्ठा हो रहा है। बैकुंठभाई, गणपतिशंकर देसाई वगैरह अग्रणी घूम रहे हैं ..... देखें ऐसे में हमारी शान्ति सेना की दाल कैसे गलती है! ईश्वर पर श्रद्धा रखकर घूम रही हूँ .... फंड छत्तीस हजार तक पहुँचा है ...... पैसा मिलता तो है, किन्तु दो वर्ष पहले सम्मेलन के लिए जितनी आसानी से मिला था, उतनी आसानी इस बार नहीं। हालाँकि तब की अपेक्षा आज बम्बई में धनवानों के पास पैसा बढ़ा है, और ऐशो-आराम भी बढ़े हैं। सुख-सुविधाएँ और मौज-शौक में पानी की तरह पैसा बहाते हैं .... हमारे विचारों के प्रति सहानुभूति और आकर्षण रखनेवाले मित्र भी इसी प्रवाह में बहते जा रहे हैं। सब लोगों का मुँह मानो दूसरी

ही दिशा में घूम गया है। इसलिए जब वे हमसे कहते हैं—आप लोगों ने तो बहुत त्याग किया है, आपके विचार तो बहुत ऊँचे हैं, वगैरह—तब हृदय में ठंडक पड़ने के बदले जलन होती है— फंड के लिए पैसे मिल तो रहे हैं किन्तु उससे आनन्द नहीं होता, हमारा काम बलवान नहीं बनता।"

दोनों बहनों ने बहुत काम किया, उसका विनोबाजी पर काफी असर हुआ। पत्रों में दो बार उन्होंने अपनी खुशी व्यक्त की और धन्यवाद दिया, यह सारा काम उन्हें इतना अच्छा लगा कि एक साल बाद वर्धा में सर्व सेवा संघ के अधिवेशन में अपने एक भाषण में उन्होंने इसका खास उल्लेख किया :

"अभी हमारी ये चन्द्रकान्ता नौ सौ-हजार लोगों के पास गयी थी और उसने इकसठ हजार रुपये इकट्ठे किये। उसमें से पचास हजार शान्ति सेना को दिये और बाकी ग्यारह हजार **सर्व सेवा संघ** को दिये। मुझे बड़ी खुशी हुई कि इस बार जयप्रकाशजी पैसे माँगने नहीं गये थे। यह रिवाज हो गया था कि पैसे इकट्ठे करने हों तो जे० पी० या ढेबरभाई जैसे लोग जायें। उनका कुछ दबाव पड़ता है। इस दबाव को हम प्रभाव कह सकते हैं। कोई हर्ज नहीं। वह संस्कृत शब्द है। किन्तु यह लड़की गयी तो न प्रभाव पड़ा, न दबाव पड़ा। केवल भाव हीं था। भक्तिपूर्वक विचार समझाकर माँगा गया और दिया गया। इसने लोगों से कहा कि अभी आपको जो देना हो दे दीजिए, मुझे फिर दुबारा बुलाकर न दें। यह जानकर मुझे खुशी हुई।"

उसके बाद एक बार जयप्रकाशजी को बिहार के काम के लिए रुपयों की जरूरत थी। दोनों बहनों ने धनबाद, झरिया वगैरह में घूमकर लगभग पौन लाख का फंड इकट्ठा किया था। उड़ीसा और मध्य प्रदेश में जाकर वहाँ चन्दे के काम में मदद की थी। गुजरात सर्वोदय मंडल के फंड की जिम्मेदारी उन्होंने बरसों तक सँभाली। विनोबाजी और जयप्रकाशजी के अमृत महोत्सव निमित्त विशाल कोष इकट्ठे हुए थे, जिनमें कान्ताबहन का अग्र स्थान रहा।

इस तरह इस क्षेत्र में भी कान्ताबहन की पूर्ण एकाग्रता, अथक तपस्या और भक्तिमय कर्मयोग के दर्शन होते हैं। उनका कर्मयोग विस्तरित होता गया, फलता-फूलता गया। वे नयी-नयी जिम्मेदारियाँ उठाती गयीं।

गुजरात में और पूरे देश मे सर्वोदय के विविध कामों की जिम्मेदारी दोनों बहनें बरसों से निभाती रही हैं। १९६४ से ६७ तक हरविलासबहन गुजरात सर्वोदय मण्डल की अध्यक्षा रहीं और १९६९ से ७२ तक कान्ताबहन अध्यक्षा रहीं। दोनों

सर्व सेवा संघ की कार्यकारिणी की सदस्या भी रहीं। हरविलासबहन संघ की क्षेत्रीय मन्त्री और कान्ताबहन संघ की सहमन्त्री रह चुकी हैं। हरविलासबहन ने रायपुर सर्वोदय सम्मेलन के मन्त्री पद का भार सँभाला था। उन्होंने गुजरात में, और राष्ट्रीय स्तर पर स्त्री शक्ति-जागृति कार्य का संचालन किया। मुख्य तो विनोबाजी के आंदोलन में संपूर्ण रूप से ओत प्रोत होकर दोनों बहनें बरसों से सातत्यपूर्वक काम करती रही हैं।

विनोबाजी के प्रति उनकी अनन्य भक्ति उन्हें चुप नहीं बैठने देती। विनोबाजी के मन में इतनी तीव्रता है, स्वयं को दाँव पर लगाकर काम करते हैं, उनकी यात्रा अखण्ड चलती रहती है, तो उनके अदने सैनिक के नाते हम क्या करें, इसका तीव्र मंथन, और तड़पन अक्सर ही दोनों के पत्रों में व्यक्त होती थी।

स्पष्ट है कि दोनों बहनों के तीव्र और अखण्ड कर्म के पीछे मुख्य प्रेरक बल यही था। विनोबाजी पवनार में कुछ समय स्थिर रहने के बाद वहाँ से **तूफान यात्रा** के लिए निकल पड़े, उस समय बहनों का जो हृदय-मंथन चल रहा था, इस पत्र से उसका अंदाज मिलता है: "बहुत दिनों बाद पत्र लिख रहे हैं। आपका पत्र भी काफी दिनों से नहीं आया। तीन-चार महीनों से आपका कोई पत्र नहीं। हमने भी नहीं लिखा।

"बाबा, सच कहें? लिखने में संकोच होता है, शर्म आती है। आपके प्रवचन और समाचार पढ़ते हैं तो दिल पर काबू नहीं रहता। कितनी लगन है! कितनी तीव्रता है! कितनी तड़पन है! कहाँ तो पिछली बार आपको देखा, तब की अकर्म में कर्म की अवस्था और कहाँ यह अश्वमेध यज्ञ के चौकड़ी भरते घोड़े जैसी आज की तूफानी यात्रा! उस समय आपको एक पत्र में लिखा था कि धड़धड़ाती ट्रेन एकाएक ब्रेक लगने से रुक जाये, उसके बदले धीरे-धीरे गति धीमी होकर स्टेशन पर इस तरह रुक जाय कि मुसाफिरों को पता ही न चले, तब आपकी अवस्था ऐसी लगी थी। (उस समय विनोबा ने जवाब दिया था: ट्रेन की उपमा देकर जो विचार तुमने पेश किया है, बहुत आकर्षक है) आज की अवस्था तेजस्वी किरण शलाका चमकाकर विलीन होनेवाले धूमकेतु जैसी लगती है।

"परन्तु यह सब जानते-बूझते भी हम क्या बैठे ही रहें? स्थूल दृष्टि से देखें तो हमारे काम भी चल ही रहे हैं। किन्तु उनमें कहाँ है आपकी आग, आपकी तीव्रता? हम भी छलाँग लगाते तो हैं, किन्तु बात नहीं बनती। समाजव्यापी तूफान नहीं उठ सकता, इसकी शर्म है। ऐसी परिस्थिति में आपको क्या लिखें? अमुक

क्षेत्र में यात्रा की, साहित्य बेचा, इतने हजार 'भूमिपुत्र' के ग्राहक बनाये—बस, इसके सिवा और लिखने को है क्या? संकोच होता है।''

इसके जवाब में बाबा ने लिखा : ''पत्र मिला। तुम्हारा संकोच समझ में आता है। लेकिन प्रयोजन नहीं है। जो काम तुम दोनों करती हो, वह सारे भारत में अपने ढंग का एक विशेष कार्य है। **'स्वे स्वे कर्मणि अभिरतः'** तुम अपने कार्य में अभिरत हो। तुम्हारी मिसाल मैं कई जगह देता हूँ।''

हालाँकि 'तूफान' से दुनिया एकाएक बदल जायेगी, ऐसा भ्रम इन बहनों को नहीं था। फिर भी समाज में बीच-बीच में ऐसा समय आता है, जब कोई महापुरुष आकर सद्प्रेरणा देते हैं, तब उनके मार्गदर्शन में जरा जोर से काम करें तो समाज की कुछ प्रगति होती ही है। कान्ताबहन ने अपने दिल की यह बात १९६६ के बलिया सम्मेलन में एक अत्यन्त भावनापूर्ण भाषण में व्यक्त की थी।

''बार-बार अपने हृदय को कुरेदकर पूछती हूँ मेरी हैसियत क्या है? क्या मेरी इस भागदौड़ से समाज में आमूलाग्र परिवर्तन आ जायेगा? मित्रों मुझे माफ करें, किन्तु इस प्रश्न का जवाब मुझे 'हाँ' नहीं मिलता। इसमें निराशा की बात नहीं। मैं सदैव आशावादी हूँ और तूफानी गति से काम करने में विश्वास रखती हूँ। फिर भी मुझे ऐसा नहीं लगता कि समाज में एकाएक आमूलाग्र परिवर्तन हो जायेगा। तो फिर यह दौड़भाग क्यों कर रही हूँ?

''इसका उत्तर मुझे मिला मथुरा स्टेशन पर एक ठेला देखकर। दो मजदूर एक ठेले को धक्का मार रहे थे। एक बार कुछ देर धक्का मारा और गाड़ी में चढ़ गये। ठेला पन्द्रह गज चला होगा। फिर उतरे, फिर धक्का मारा, फिर चढ़े। यह दृश्य पहले भी देखा था। किन्तु उस दिन चित्त में बिजली-सी कौंध गयी। क्या हमारे समाज की दशा भी ठेले जैसी नहीं? राम आते हैं, धक्का देते हैं, ठेले को गति मिलती है। किन्तु फिर अटका। तो आये कृष्ण। फिर धक्का, फिर गति, फिर अटका। बुद्ध आये, महावीर आये, गांधी आये, विनोबा आये, धक्का तो देते ही रहना होगा।

''मैं, आप, हम सब हैं समाज के सेवक, जनम के मजदूर। ये विनोबा हैं हमारे मुकादम। हमारा कर्तव्य ही है कि धक्का देते रहें। लगायें जोर! ऐसा मुकादम भी भला कहाँ बार-बार मिलता है इस सांसारिक सृष्टि में? ऐसे महान् मुकादम के नाचीज मजदूर बनने का सद्भाग्य क्या फिर कभी मिलेगा?''

इसमें जो भावना व्यक्त हुई, वह हम सबकी, गुजरात सर्वोदय मण्डल के सभी

कार्यकर्त्ताओं के दिल की भावना थी, ऐसा कहें तो गलत न होगा। इसलिए जब देशभर में तूफान का और ग्रामदान का वातावरण बन रहा था, तब गुजरात में भी कुछ होना चाहिए, ऐसा सबको लगता था। आखिर डा० द्वारकादास जोशी की अगवानी में हम सबने ग्रामदान और तूफान के विचार को गुजरात के कोने-कोने में फैलाने का अभियान आरम्भ किया। बहनों ने ९-७-६५ के पत्र में बाबा को यह खुशखबर सुनायी :

"महेसाणा जिले की पदयात्रा से यह पत्र लिख रहे हैं। ग्राम स्वराज के विचार को दूर-दूर फैलाने के लिए तीन तहसीलों के ३६० गाँवों में छत्तीस टुकड़ियाँ एकसाथ घूम रही हैं। ढाई सौ, तीन सौ भाई-बहन अभी पदयात्रा कर रहे हैं। १९५७-५८ में कार्यकर्ताओं में जो उमंग, उत्साह और थिरकन देखी थी, आज फिर उसके सुभग दर्शन हो रहे हैं। एक व्यक्ति का तप, त्याग, निष्ठा और सातत्य का परिणाम कैसा सुन्दर हो सकता है, यह डा० जोशी के रूप में देख रहे हैं। उनकी अजातशत्रुता और हृदय की सरलता सबको मोहित करती है। ऐसे स्फूर्ति संचार का प्रत्यक्ष दर्शन सबको प्रेरित और उत्साहित कर रहा है। किन्तु यह तो गुजरात है, फूँक-फूँक कर कदम रखनेवाला। इसलिए परिणाम के बारे में तो कुछ कह नहीं सकते। किन्तु ग्राम स्वराज के विचार से यहाँ की धरती कुछ मुलायम तो होगी ही, इसमें शक नहीं।"

तब से लेकर लगातार चार वर्ष तक सबने मिलकर अथक पुरुषार्थ किया। एक के बाद भिन्न-भिन्न इलाकों में पदयात्राएँ करते गये। दस-दस दिन का अभियान चलता और साधारणतः हर महीने ऐसे दो अभियान होते। महीने में बीस-बाईस दिन बाहर घूमना हो जाता। **ग्राम स्वराज का संदेश गाँव-गाँव पहुँचाने की लगन** लगी थी।

दोनों बहनें इसमें आगे रहीं। उन्होंने विशेष प्रयत्न भी किया कि रविशंकर महाराज इस काम को उठा लें। दो-तीन इलाकों में खासतौर से पूज्य महाराज की पदयात्रा का आयोजन किया, कान्ताबहन उनके साथ रहीं। उसके बारे में बाबा को लिखा : "पूज्य महाराज के साथ साबरकांठा घूम आयी। यात्रा अच्छी रही। किन्तु ग्रामदान की बात कहने में अभी उनकी जबान खुलती नहीं। यह उत्तम काम है, महापुरुष का विचार है, विकसित हुए बिना नहीं रहेगा, इत्यादि कहते हैं। किन्तु अभी उनके मन में पूरी बात जमी नहीं है और उन्हें यह परिस्थिति अनुकूल नहीं लगती है। खैर, अभी तो दो महीने घूमने का हृदय से वचन दिया है। कल से दस दिन हम सूरत जिले में घूमेंगे।"

कान्ताबहन बबलभाई को लेकर बिहार के कई ग्रामदानी गाँवों में जाकर आयीं। उस बारे में पत्र में लिखा : "वहाँ बाराचट्टी, कौआकोल और मुंगेर के इलाके में घूमना हुआ। द्वारकोभाई और राममूर्तिजी अपने-अपने इलाके में साथ रहे। जयप्रकाशजी ने हमारे कार्यक्रम की व्यवस्था कर दी थी और पत्र लिख दिया था। इसलिए कुछ दिनों में भी काफी घूम सके। करीब पन्द्रह गाँवों के लोगों से मिलना हुआ। कुल मिलाकर बबलभाई पर समग्र रूप से अच्छी छाप पड़ी। ऐसा दीखा कि काफी समझदारी से ग्रामदान हुए हैं और ग्रामदान होने के बाद कार्यकर्ताओं ने भी सम्पर्क बनाये रखा है।"

इस तरह प्रयत्न करने में तो कमी नहीं रखी। किन्तु पूज्य महाराज स्वयं अभिक्रम लेकर काम उठा लें, ऐसा नहीं हो सका। पूज्य महाराज की अपनी विशेष प्रतिभा थी। कोई काम पूरी तरह मन में जम न जाय, तब तक वे उसमें छलाँग नहीं लगाते। यह तो दोनों बहनों ने उनका काफी प्रेम और विश्वास संपादित किया था और विनोबाजी के लिए उनके मन में गहरा आदर था, इसलिए इतना प्रयत्न किया।

यह उस समय की बात है जब गुजरात सर्वोदय मण्डल में किसी प्रखर नेतृत्व के अभाव में हम सब छोटे-मोटे कार्यकर्त्ता साथ मिलकर सामूहिक गणसेवकत्व खड़ा करने में लगे थे। इसमें दोनों बहनों का योगदान विशेष रहा। किसी को चुँधियानेवाला उनका व्यक्तित्व नहीं था। परन्तु उनकी सौम्यता, ऋजुता, एकनिष्ठा, कर्मठता सबको छू जाती। शान्ति और सात्विकता इनके व्यक्तित्व की अपनी ताकत थी। बाबा के शब्दों में कहें तो प्रभाव या दबाव बिना शुद्ध भावपूर्ण भक्ति संपन्न सेवा कार्य अपना असर दिखा रहा था।

इस तरह दोनों बहनें समाज में गणमान्य समाज सेविका के रूप में स्थान प्राप्त करती गयीं। पूज्य महाराज, जुगतराम काका, बबलभाई जैसे बुजुर्गों का प्रेम संपादन किया और गुजरात राष्ट्र के रचनात्मक कार्यकर्त्ताओं के साथ स्नेह-सद्भावपूर्ण संबन्ध जोड़ा। गुजरात से बाहर के कामों से भी दोनों जुड़ी रहीं और जयप्रकाशजी, दादा धर्माधिकारी, विमलाताई ठकार वगैरह राष्ट्रीय विभूतियों के साथ इन्होंने रिश्ता बनाये रखा। सभा-सम्मेलन, शिविर-प्रवास द्वारा गुजरात के काम में उनका मार्गदर्शन और आधार प्राप्त करती रहीं।

इन वर्षों में दोनों बहनें अतिशय प्रवृत्तिशील रहीं। सर्वोदय और उससे संबन्धित विविध सामाजिक कामों में लवलीन थीं। चिन्तन-सर्वस्व और समय-

शक्ति सब विनोबाजी के आंदोलन को समर्पित थे। लोक-संपर्क, लोक-जागृति, लोक-शिक्षा वगैरह व्यापक कार्य करती रहीं। सर्वोदय-विचार का सतत प्रचार-प्रसार करती रहीं और छोटे-मोटे प्रत्यक्ष कार्य भी करती रहीं।

'भूमिपुत्र' के व्यापकतम प्रसार को तो उन्होंने अपनी स्थायी जिम्मेदारी माना ही था। साहित्य-बिक्री के लिए भी मेहनत करती रहतीं। अन्य मित्रों को साथ लेकर कलकत्ता, गोंदिया, हैदराबाद तक साहित्य-बिक्री के लिए गयी थीं। सर्वोदय कार्य की आर्थिक जिम्मेदारी उठाने में उनका प्रचंड योगदान रहा। पदयात्रा वगैरह में भी हमेशा शामिल हुईं। १९६८ में नर्मदा-तापी की भयंकर बाढ़ के समय कान्ताबहन ने रविशंकर महाराज के साथ काम किया। भारत-पाक युद्ध के समय हरविलासबहन ने कच्छ के सीमाक्षेत्र में शान्ति सैनिक के नाते काम किया। १९६९ में अहमदाबाद में भयंकर कौमी दंगे हुए थे, तब नारायण देसाई के नेतृत्व में गुजरात के कार्यकर्ताओं ने शान्ति-स्थापना का कार्य किया था। सुबह से रात तक घूमते रहना, घायल दिलों को आश्वासन देना, अशान्त मनों को शान्त करना, हरएक दिल में छिपे **राम-रहीम को जगाना**। कान्ताबहन तो उस समय एक गरीब मुस्लिम दर्जी परिवार में कुछ दिन जाकर रहीं और वहीं से उन्होंने काम किया।

गांधी-शताब्दी वर्ष में दांडी से पोरबन्दर तक की अखण्ड पदयात्रा का संचालन हरविलासबहन ने किया। बारह वर्ष की लोकयात्रा पर निकली चारों बहनें गुजरात में आयीं, तब उनकी सारी व्यवस्था इन दोनों बहनों ने ही सँभाली। १९६६ में गुजरात के सारे जिलों में विमलाताई ठकार का तीन हफ्ते का प्रवास आयोजित करके **लोक नीति के प्रचार के लिए मतदाता-जागृति और मतदाता — शिक्षण** का विशेष प्रयास किया। १९७१ और ७२ में बिहार में सहरसा जिले में और मुसहरी प्रखण्ड में ग्रामदान-पुष्टि के कार्य के लिए गुजरात के अन्य कार्यकर्त्ताओं के साथ दोनों बहनें भी तीन-चार बार एक-एक महीना जाकर रहीं।

जयप्रकाशजी और प्रभावती दीदी के साथ दोनों बहनों का हार्दिक रिश्ता हो गया था। जयप्रकाशजी गुजरात के दौरे पर जब भी आते, हरविलासबहन उनकी निजी सेवा का ध्यान रखतीं। प्रभावती दीदी जाने के बाद तो वे विशेष चिन्ता रखतीं। यह बात उमाशंकर जोशी के ध्यान में आ गयी थी, इसलिए जब भी हरविलासबहन से मिलते तो इस बात को याद करके स्नेहपूर्ण नजरों से कहते- **'संजीवनी।'** जयप्रकाशजी को अपने निजी खर्च के लिए भी अक्सर ही परेशान होना पड़ता, यह हमने जान लिया। इसलिए मण्डल में हमने प्रस्ताव पास किया था

कि ऐसे महान् व्यक्ति को किसी के आगे हाथ न पसारना पड़े, इसके लिए मण्डल जरूरतभर आर्थिक व्यवस्था करता रहे। इस बात को संस्था की औपचारिकता से दूर रखने की इच्छा से मण्डल ने इसकी कायमी जिम्मेदारी कान्ताबहन को सौंप दी थी। कान्ताबहन का जयप्रकाशजी से व्यक्तिगत संपर्क रहता और उनसे पूछकर वे जरूरी रकम का इन्तजाम करतीं।

इमर्जेन्सी में गम्भीर बीमारी के कारण जयप्रकाशजी को जेल से मुक्त किया है, ऐसे समाचार मिलते ही पहली ट्रेन पकड़कर दोनों चंडीगढ़ पहुँच गयी थीं। जे० पी० उनको देखकर बेहद खुश हुए, बोले–''आप भी आयी हैं?''

बहनें कहती हैं–''एकदम से क्या बोलें, समझ में नहीं आया। उनका सूजन चढ़ा चेहरा देखकर हमारी बोलती बन्द हो गयी। उनके दोनों हाथ अपने हाथ में लेकर भावपूर्वक प्रणाम किये कि इतने में तो 'चलो-चलो' कहकर बाहर निकलने का आदेश हो गया। दो-चार मिनट मुश्किल से खड़े-खड़े दर्शन हुए। श्रीनाथजी या तिरुपति के मन्दिर में दर्शन हुए न हुए कि इसी तरह बाहर धकेल देते हैं। सब के साथ हम भी बाहर हो गये। हमारी हालत ऐसी थी कि भोजन नहीं मिला, ऐसा भी नहीं कह सकते थे, किन्तु भूखे भी रह गये थे। हम हास्पिटल के सुपरिटेण्डेण्ट के पास पहुँचे। विनती की। आखिर वे भी तो मनुष्य थे न। इसलिए पिघले। हम फिर पहुँचे जे० पी० के पास। हमें दुबारा देखकर वे चकित रह गये और प्रसन्न भी हुए। आराम से बैठे, बातें कीं। उन्हीं दिनों छपा 'भूमिपुत्र' का उनका जन्मदिन विशेषांक उनके हाथ में रखा। पन्ने पलटकर देखा। खुश हुए। हमने पूछा आपके जन्मदिन पर गुजरात से पन्द्रह-बीस हजार शुभेच्छा की राखियाँ भेजी थीं, मिलीं क्या? जे० पी० के चेहरे पर बालवत् निर्मल हास्य छा गया और आँखों में अनोखी चमक आ गयी, बोले : ''हाँ, हाँ, देखो उस पेटी में सँभालकर रखी हैं, अन्य सामान के साथ पटना जायेंगी। अचानक उन्होंने देखा कि कान्ताबहन टेबल पर बैठ गयी हैं। इसलिए झट से कुर्सी मँगवायी। हरएक के लिए उनकी यह प्रेमभरी फिक्र कैसी अनोखी थी! कैसा ऋजु हृदय!''

ऐसे महापुरुषों के स्नेह के स्मरण मात्र से बहनें आज भी गद्गद हो जाती हैं। सामाजिक कार्यों से जुड़ने के बाद ऐसे स्नेह को वे अपने जीवन का अनमोल प्रसाद मानती हैं। स्वामी आनन्द भी इन पर अनहद प्रेम बरसाते। दोनों बहनों को बड़े स्नेह से 'तुलसी क्यारी' कहकर पुकारते। पत्रों में भी यही संबोधन होता–''एक तुलसी और दूसरी क्यारी, है न?''

विनोबाजी के आन्दोलन ने उन्हें छोटे परिवार से एक विशाल, बहुत विशाल परिवार से जोड़ दिया। अपने शुद्ध हृदय के कारण दोनों उस विशाल परिवार के छोटे-बड़े सदस्यों के साथ प्रेम और सद्भावना का रिश्ता जोड़ सकीं।

कान्ताबहन कहती हैं: "विनोबाजी के विचारों ने हमारे क्षितिज अत्यन्त व्यापक कर दिये। अपना और अपनों का सोचने के बदले पूरे मानव कुटुम्ब के बारे में सोचने की आदत डाल दी। कौटुम्बिक और सांसारिक झमेलों में उलझे रहने के बदले सामाजिक प्रश्नों में रुचि लेने और उन्हें सुलझाने का प्रयत्न करने की आदत डाल दी। विनोबाजी ने लोकात्मा की आराधना की दीक्षा दे दी।"

दोनों बहनें अनेक तरह से इस **लोकात्मा की आराधना** करती रही हैं। आखिर में विनोबाजी स्त्री शक्ति-जागृति की विशेष बात करते। उनकी प्रेरणा से भारत में बारह वर्ष की अखण्ड पदयात्रा करनेवाली लोकयात्री बहनों का पड़ाव १९७३ में पवनार में था। उस समय वहाँ विनोबाजी के सान्निध्य में भगिनी स्नेह मिलन हुआ था। उसमें हरविलासबहन ने एक विचार रखा कि सब स्त्रियाँ तो इस तरह बारह वर्ष घर छोड़कर निकल नहीं सकतीं। किन्तु हर वर्ष पाँच-सात दिन यदि बहनों की ऐसी पदयात्रा का आयोजन करें तो देशभर में ऐसी सैकड़ों पदयात्राएँ चलें तथा उनमें हजारों स्त्रियाँ शामिल हो सकें। इसके कारण बहनों में अपनी बात कहने का आत्मविश्वास बढ़ेगा और हर गाँव में बहनों के प्रश्नों की चर्चा हो सकेगी। विनोबाजी की प्रेरणा से हर वर्ष सात दिन का स्त्री-जागृति-सप्ताह मनाया जाने लगा।

इन सात दिनों में अधिक से अधिक बहनें घर से बाहर निकलें, गाँव-गाँव घूमें, स्त्रियों को जागृत करें, उनके प्रश्नों की चर्चा करें, इसके लिए हरविलासबहन १९७३ में गुजरात में काफी मेहनत करती रहीं। १९७३ में करीब हजार बहनों ने इस तरह गाँव-गाँव की पदयात्रा की। १९७४ में करीब दो हजार बहनें घूमी होंगी। १९७५ अंतरराष्ट्रीय महिला वर्ष था। उस निमित्त विशेष प्रयत्न किया तो उस साल गुजरात के हर जिले में ऐसी पदयात्राएँ चलीं और उनमें करीब पाँच हजार बहनें साढ़े सात सौ टोलियों में घूमीं और चार-पाँच हजार गाँव में स्त्री-जागृति की आवाज बुलन्द की। बहनों ने बड़े उत्साह से इस कार्यक्रम में हिस्सा लिया। राष्ट्रीय स्तर पर भी इस महिला काम का संयोजन आरम्भ में हरविलासबहन ने ही किया था। १९७९ में पवनार के **विश्व महिला सम्मेलन** की कोषाध्यक्ष का पद-भार कान्ताबहन ने ही सँभाला था।

इन बरसों में उनका मुख्य मुकाम बड़ौदा रहा। शुरू में मुख्य कार्यक्षेत्र भी बड़ौदा था, इसलिए अधिकतर वहाँ रहना होता। किन्तु बाद में तो अधिक दिन बाहर ही घूमना होता। शुरू में कार्यकर्त्ता-निवास में दस-पन्द्रह साथियों के साथ रहते। दो बड़े कमरे और एक छोटी कोठरी थी। आरम्भ में कुछ महीनों तक बहनों ने अपने भोजन की व्यवस्था शहर के अनेक घरों में रखी थी। रोज नया परिवार। ऐसे साठ घर। हर महीने एक घर की बारी आती। किन्तु उसमें काफी समय लगता। इसलिए फिर अन्य कार्यकर्ताओं की तरह लॉज में खाना शुरू किया। बड़ौदा के दो-तीन लॉजवाले हम कार्यकर्ताओं को बिना पैसे लिये खिलाते। उसमें के एक महाराष्ट्र लॉजवाले पुरुषोत्तमभाई अभी आज तक बड़े प्रेम से एक भी पैसा लिये बिना हमें खाना खिलाते रहे हैं।

१९६३ में बाबा को एक पत्र में बहनों ने लिखा है: "आजकल हम यहां साधारणतः पाँच-छह लोग स्थायी रहते हैं। दूसरे आते-जाते रहते हैं। ढाई-तीन वर्ष तक दोनों समय हम सब लॉज में खाना खाते रहे। किन्तु सबको बाहर का खाना माफिक नहीं आता। इसलिए कुछ समय से जब हम बड़ौदा में होते हैं, शाम को एक वक्त का सबका खाना घर पर पकाते हैं। सब मिलकर रोज के औसत दो-तीन घंटे उसमें जाते हैं। दोनों समय का यदि पकायें तो पूरा दिन उसी में बीत जाये। इसलिए एक समय का रखा है। शहर से साधन सामग्री के रूप में प्राप्त करने की व्यवस्था श्री गोरधनकाका और रणछोड़काका ने की है। दाल, चावल, तेल, सब्जी, साबुन वगैरह इस तरह मिल जाता है। बाकी खरीदना पड़ता है।"

इस तरह एक समय पकाना शुरू हुआ था। १९६६ में कान्ताबहन की माँ हमारे साथ रहने आयीं, तब से दोनों समय का रसोड़ा चलने लगा।

ब्रह्म विद्या मन्दिर की बहनों को विनोबाजी ने भोजन के बारे में एक मंत्र दिया है: 'सुस्वादु भोजन अस्वाद वृत्ति से खाना'। अस्वाद वृत्ति साध्य करना तो खाने-वाले पर निर्भर है। किन्तु भोजन को सुस्वाद बनाने में बहनें जरा भी कमी नहीं रखतीं, यह बरसों से देख रहा हूँ। मिष्ठान्न, नमकीन नहीं, किन्तु बिलकुल सादा भोजन भी स्वादिष्ट बने यह उनका लक्ष्य होता है। किसी काम को अधकचरे ढंग से करना उन्हें जँचता नहीं। रसोई करने बैठें तो उसमें भी संपूर्ण एकाग्रता। हृदय उँड़ेल दें तो कर्म का भी विकर्म हो जाता है।

उन दिनों घर-काम वगैरह स्वयं ही करते। कोई नौकर-चाकर नहीं। बहनों का तो कताई का भी नियम था। रोज इतना सूत कातना ही चाहिए। रसोई का तो

उन पर भार रहता ही। सामाजिक कार्यों में भी पूरा हिस्सा लेना। मिल, कारखानों में जब 'भूमिपुत्र' का काम चलता, तब तीनों शिफ्ट में पहुँचना। इस तरह, इन बरसों में दोनों बहनों ने घर और बाहर खूब काम किया है।

किन्तु उन्हें कभी थकान नहीं लगी। अन्तर में आनन्द के झरने उमड़ते रहते और हाथ का काम भक्तिभाव से सराबोर, इसलिए उसका बोझ नहीं था। ११-६-६५ को बाबा को लिखे पत्र में दोनों के आनन्दमय जीवन की झाँकी मिलती है :

"हमारे निवास की छत पर एक भगोना रखा है। उसमें हर समय पानी भर के रखते हैं। ऊषा के आगमन के साथ कौवे, कबूतर, चिड़िया और कभी गिद्ध तथा चील उसमें से पानी पीने दिनभर आते रहते हैं। मस्ती से वे आते हैं और पानी पीते हैं। अब तो उनमें से कई के साथ हमारी ऐसी दोस्ती हो गयी है कि हम बगल में खड़े हों, तब भी वे आराम से पानी पीते रहते हैं । उन्हें इस तरह पानी पीते देखकर हमें भी बहुत खुशी होती है। कभी भगोने में पानी भरना रह जाये और दो-चार को प्यासे लौटते देखें तो दिल कचोटने लगता है। नित्य आनेवाला एक कौवा तो बड़े मजे के खेल करता है। बार-बार चोंच डुबोकर गर्दन ऊपर उठाता है, फिर पानी पीता, ऐसा तो प्यारा लगता है, कई बार वे जनाब हाड़-मांस के टुकड़े और गन्दगी यहाँ उठा लाते हैं, फिर भी प्यारा लगता है वह।

"और वह गिलहरी रानी। ओह, कैसी चंचलता! बिजली की गति से आती है, चप-चप, झट-झट पानी पीती है और वैसी ही तेजी से दौड़ जाती है। मानो कोई पकड़ लेगा उसे। और जब वह कुछ खा रही हो, तब तो उसे देखने में बड़ा मजा आता है ।

"और दूसरे हमारे नित्य के संगी हैं, एक चकवा और एक चकई । जब से यहाँ रहने आये हैं, तब से वे आते हैं। सायं अंधेरा होते ही कहीं से भी आकर वे हमारे बाथरूम में बैठ जाते हैं। उनकी आँखों को तकलीफ न हो, यह सोचकर हम वहाँ लाइट भी नहीं जलाते। ऐसा है, हमारा सारा परिवार!

पहले मन में आया कि आपको ये सब क्या लिखना? फिर ख्याल आया कि हमारे बाबा के भी तो ये सारे मित्र हैं न! इसलिए हमारे समाचारों के साथ कभी इनके भी समाचार दे देते हैं।"

अपने पत्रों में बहनों ने बाबा को सब कुछ लिखा है। ऐसी संवेदनाएँ, मन के मंथन, काम के स्पंदन, आंदोलन से संबन्धित विचार, सारा बाबा के चरणों में निवेदित कर दिया है। तो फिर समूह जीवन के संदर्भ में उठते प्रश्न और समस्याएँ

कैसे बाकी रहतीं? उसका विचार विनिमय हम सबके समूह-जीवन को स्पर्श करता है। इसलिए उसे पढ़ना भी रसप्रद और बोधदायक है।

एक पत्र में लिखा: "आजकल मन पर एक बोझ-सा रहता है। यहाँ बड़ौदा में इकट्ठे हुए हम सब कार्यकर्ता आपस में एकरस नहीं हो सके हैं। भिन्न-भिन्न रुचि और वृत्ति के बावजूद समान काम को समर्पित होने से जिस आत्मीयता का अनुभव होना चाहिए, वैसा नहीं होता। हमें सबसे अधिक दुःख इस बात का होता है कि हम एक-दूसरे मित्रों को अपनी आत्मीयता की प्रतीति नहीं करवा सकते। कोई न कोई ऐसी बात हो जाती है, जिससे मन की शान्ति डोल जाती है। अक्सर हमारी बौद्धिक मर्यादा के कारण तथा वृत्ति की सौम्यता के कारण परिस्थिति का सामना नहीं कर पाते। समूह के कुछ व्यक्तियों के 'पुशिंग नेचर' के कारण तथा दिखावा करने की वृत्ति के कारण कई प्रश्न खड़े होते हैं।"

इसका जवाब – "तुम्हारी वृत्ति की सौम्यता अच्छा ही गुण है। बौद्धिक मर्यादा की चिन्ता नहीं। भगवान की एकाग्र भक्ति में जो लगा रहता है, उसे भगवान स्वयं ही बुद्धि देते हैं, यह प्रत्यक्ष अनुभव है। तुमने जो समस्या पेश की है, वह मानवी मन की समस्या है। अधिक परिचय के कारण दोषों का दर्शन हुआ करता है। निज गुणों से अन्यों के दोषों को ढाँकना होता है। ढाँकने से मतलब छिपाना नहीं, निरसन करना। लेकिन अपने में दोष होते हैं। निज दोष के निवारण में तीव्रता, अन्यों के दोषों को सहन करने में धीरज और किस चित्त में क्या दोष है, यह देखकर उस दोष को मौका न मिले ऐसे काम में उस चित्त को लगाना यह योजना का विषय हो जाता है। आशा करता हूँ, तुमको तो यह सधेगा।"

गुरु से ज्ञान-प्राप्ति का मार्ग परिप्रश्न है, इसलिए फिर पूछा: "मात्र गुणदर्शन यह एक साधारण आदर्श है। परन्तु आत्मीय-मैत्री-संबन्ध में तो परस्पर दोष-दर्शन का भी महत्त्व है न? वास्तव में हमें अपने दोष झट दिखाई नहीं देते। इसलिए आत्मीय मित्र द्वारा हमारे दोषों के प्रति अंगुलि निर्देश होता रहे, यह तो स्पष्ट है। कान्ता का कोई दोष हो तो हरविलास बताये, और हरविलास का दोष कान्ता बताये। इससे दोनों को लाभ है। ऐसा दोष-दर्शन तो एक उपकारक मित्र-कार्य ही माना जायेगा न?"

गुरु का जवाब: "गुण-दर्शन के बारे में तुमने एक अच्छा सवाल पूछा है। एक मित्र-कार्य के तौर पर दोष-निवारण के लिए दोष-दर्शन यानी उस मित्र को उसकी दोष रूप उपाधि का भान कराना उपकारक हो सकता है कि नहीं? जरूर

हो सकता है। खास करके जिनके बीच हार्दिक मैत्री हो और शंका, अविश्वास के लिए स्थान न हो। लेकिन समझने की बात है कि **दोष देहगत होते हैं, आत्मगत नहीं होते हैं।** अगर आत्मदृष्टि से ही दुनिया की तरफ देखने का अभ्यास हो जाय तो गुणों का ही दर्शन होगा और दोष केवल गुण-छाया के रूप में प्रतीत होंगे। आत्मदृष्टि से संपन्न मनुष्य के संपर्क में दोष-निवारण सहज ही हो जायेगा। खैर, यह तो आगे की भूमिका है । जिस भूमिका से तुमने सवाल पूछा है, वह सवाल सही है।''

समूह इकट्ठा हुआ कि ईर्ष्या-द्वेष के प्रसंग खड़े होंगे ही। इसलिए एक बार पूछा: ''दूसरे का अच्छा देखकर, दूसरे की प्रगति देखकर चारों ओर प्रसन्नता होनी चाहिए, उसके बदले ईर्ष्या क्यों होती होगी? समाज सेवकों में और अध्यात्म की साधना करनेवालों में भी ऐसी ईर्ष्या क्यों होती होगी? किसी के मन में हमारे लिए ईर्ष्या जागे तो क्या वह हमारे सत्कार्य की कमी है?''

विनोबा का जवाब एकदम सीधा था ''सेवा क्षेत्र में मत्सर क्यों? दूसरे का अच्छा काम देखकर आनन्द के साथ प्रेरणा मिलनी चाहिए। अगर अपने में वैसी शक्ति न हो, तो मानसिक आदर भी एक सेवा होगी। उसके बजाय मत्सर होता दीखता है। उसका कारण दुर्बलता के साथ अहंभाव है। पुरुषार्थहीनता का वह लक्षण है।''

इस तरह १९६० से बहनों को विनोबाजी का जो सीधा मार्गदर्शन मिलता रहा उससे बहनों के सामाजिक जीवन-विकास में महत्त्वपूर्ण योगदान मिला। यह तो मात्र लिखे हुए की बात हुई। दूसरे बिना लिखा हुआ तो बहुत होगा। अपने पहले ही पत्र में विनोबाजी ने लिखा था:

''तुम मुझसे मार्गदर्शन की अपेक्षा रखती हो, यह योग्य ही है, इसे मैं कबूल करता हूँ। वह कितने अंश में पूरी होगी, इसका आधार नसीब पर है। नसीब अच्छा हो तो लिखित या अलिखित जवाबों में से मार्गदर्शन मिलता रहेगा। ऐसा अलिखित मार्गदर्शन भी ढेर-सा मिला होगा, इसमें शंका नहीं। उसी का स्पष्ट परिणाम देख सकते हैं कि इन वर्षों में स्वस्थ, समर्पित, समाज सेविकाओं के रूप में दोनों का व्यक्तित्व कैसा निखरा है ।

बहनों के हृदय में विनोबाजी के प्रति अपार भक्ति थी। बाबा का मार्गदर्शन उनके लिए संजीवनी रूप था। उन्होंने पहले ही पत्र में लिखा था न–''इस माटी के पिंड को कुम्हार-चाक पर चढ़ा कर अपना मनपसंद आकार दीजिए, हम तैयार हैं''

उनकी यह भावना सदैव कायम रही। इस भावना के कारण ही बाबा के एक-दो शब्दों में भी इनके लिए प्रेरणा का मानो प्रपात-सा उमड़ता, इन्हें बाह्य आन्तरिक साधना के लिए अनमोल पाथेय मिल जाता। शुरू में तो बाबा के पत्रों की खातिर तड़पती रहतीं। एक बार प्रवास से लौटीं तो देखा बाबा का पत्र पड़ा था। बिलकुल सीधा-सादा और संक्षिप्त। किन्तु बहनों के दिल तो कैसे उछल पड़े : "आपका पत्र मिला, और वह भी इस बार अपने हाथ से लिखा हुआ! खूब-खूब आनन्द हुआ। दूर रहकर परोक्ष मिलन का मधुर स्वाद चखा। आनन्द से हृदय छलक गया और आँखों से बहने लगा।"

इसका मुख्य कारण यह है कि यह अर्सा उनकी तीव्र भावावस्था का काल था। बाह्य कार्य चलते रहते, और अंतर में एक अविरत आध्यात्मिक साधना चलती रहती । इस साधना को विनोबाजी ने ही समाज-अभिमुखता की दीक्षा दी थी, यह पूरा कालखंड आध्यात्मिक साधना और क्रान्ति-कार्य के बीच सामंजस्य साधने में लगा। इसमें विनोबाजी का सहारा तो अनिवार्य ही था।

१९६१ में आरम्भ हुई यह विशेष साधना १९७३ में परमोत्कर्ष पर पहुँची। उस दरमियान आन्तरिक प्रक्रिया लगातार चलती रही। उन आन्तरिक अनुभूतियों की अभिव्यक्ति भी बाबा को लिखे पत्रों में झलकती है—

"दहिसर में अकेली थी तब काफी मेहनत करनी पड़ती। किन्तु साथ ही ऐसा भी अनुभव होता, मन में भावना जागती कि मानो कोई अव्यक्त छाया संग-संग चल रही है।

"आंदोलन के बारे में मंथन चलता रहता है। फिर भी ईश्वर की कृपा वर्षा सतत हो रही है, इसलिए परम आनन्द और समाधानपूर्वक समय गुजर रहा है।

"आप कहते हैं वैसे हम सबको ईश्वर के हाथ का औजार बनना है। उसके योग्य बनने का प्रयत्न और प्रार्थना सदैव चलती है। ईश्वर का मार्गदर्शन हर घड़ी, हर पल मिलता रहता है। अतः साधना आनन्दपूर्वक चलती रहती है।

"महाराज के पास कुरान पढ़ रही हूँ। उसे पढ़ते-पढ़ते जो अनोखे भाव जागते हैं और जो अनुभूति होती है, उसे शब्दों में कैसे व्यक्त करूँ ? हमारा जनम-जनम का साथी ही मानो हमें स्नेह से मार्गदर्शन दे रहा है, ऐसा लगता है। उसमें सजा की जो धमकी दी है, वह भी न जाने क्यों कड़वी के बदले मीठी लगती है। **'अल्लाह बहुत मेहरबान और निहायत रहमवाला है—'** यह वाक्य तो पूरे समय कान में गूँजता रहता है। कई जगह ऐसा लगता है कि मानो ये शब्द गहरी

अनुभूति में से जागे हैं। उसमें भी खास **'दीदार और तालीमे गैबी'** प्रकरण पढ़ते समय तो अहसास हुआ कि खुद की अनुभूति के बिना उस साक्षात्कार का ऐसा वर्णन संभव नहीं। वह वर्णन तो वैसे बिलकुल संक्षिप्त और सतही है, किन्तु जैसे कोई कुशल चित्रकार तूलिका की दो-चार लकीरों से पूरा चित्र आँक देता है, वैसे यहाँ कुछ ही शब्दों में ईश्वरी साक्षात्कार को आँखों के सामने स्पष्ट कर दिया है।

"ईश्वर-कृपा से मन में शान्ति और समाधान है। कर्त्तापन की भावना धीरे-धीरे विगलित हो रही है और केवल ईश्वर ही सब कराता है, ऐसी भावना जागती है। आजकल कभी-कभी सपना आता है कि क्या मुझसे ईश्वर का काम होगा? मुझसे ईश्वर का काम होगा?"

इन सब से उस समय की मनोभूमिका की झाँकी मिलती है। जो कर्मयोग चल रहा था, वह ऐसी आन्तरिक संवेदनाओं और भावनाओं के साथ चल रहा था। उसी से कर्म को विकर्म की आँच लग रही थी। किन्तु साथ ही उसके कारण ही मन में भारी संघर्ष भी चल रहा था, द्वंद्व चल रहा था।

एक ओर सोचती: "अभी तो समाधान है। अभी तो काम कर रहे हैं, उसे छोड़कर दूसरी किसी साधना का विचार मन में क्यों उठे? काम करते-करते ही यथा सम्भव विशेष जीवन शुद्धि करते रहना ही हमारी साधना है, ऐसा मानते हैं।"

दूसरी तरफ विचार उठता : "कभी तो इन सारी प्रवृत्तियों की जंजाल से छूटकर अनमोल शान्ति और आह्लाद में डूब जाने की अदम्य इच्छा जागती है। कभी तो ऐसी तीव्र भावना जागती है कि कर्म की इस दौड़-धूप की अपेक्षा शान्ति से ईश्वर-भजन करें और भावनाओं की विशुद्धि में लगें।"

इस तरह भीतर ही भीतर मंथन भी चलता रहता और भीतर ही भीतर समझ भी उगती रहती, विकसित होती रहती। एक पत्र में आंदोलन की बातों की चर्चा के साथ इस मंथन की और उसमें से जागी हुई स्पष्ट समझ की बात भी लिखी है:

"आप समूह साधना की बात करते हैं। आज के युग में यही हमारा धर्म है, इस विषय में मन में जरा भी अंदेशा नहीं। किन्तु कभी-कभी मन में प्रश्न उठता है कि समूह-साधना के लिए हमारी कुछ व्यक्तिगत पीठिका की, व्यक्तिगत तैयारी की जरूरत है कि नहीं? अर्थात् समूह-साधना के लिए भी जो शक्ति चाहिए, पाथेय चाहिए, जो तालीम और तैयारी चाहिए, जो पूँजी चाहिए, उसे क्या प्रथम स्वयं प्राप्त नहीं करना चाहिए?

"अलबत्ता ये दोनों कोई भिन्न-भिन्न विभाग नहीं हैं कि एक पूरा होने पर दूसरा शुरू हो। परन्तु अमुक एक स्तर तक तो प्रथम पहुँचना जरूरी है न? बाकी तो ऐसा हो जाता है कि समूह साधना में हमारी अपनी व्यक्तिगत मर्यादा हमारी प्रगति में विक्षेप खड़ा करती है। हर व्यक्ति के विस्तरित होने की एक मर्यादा है, और जब व्यक्तिगत साधना भी साथ चलती हो, तब एक खास वातावरण की अनुकूलता जरूरी हो जाती है।

इसलिए क्या साधना का एक सोपान यह नहीं कि समूह से अलग रहकर भी व्यक्ति को साधना करनी पड़े? तब वह भावात्मक स्तर पर अपनी वृत्ति में सामूहिकता की भावना जरूर रखे, किन्तु उसी सामूहिक साधना को अधिक समृद्ध बनाने के लिए स्वयं अमुक समय तक उस समूह से दूर रहे, उपरोक्त समझदारी के साथ-साथ कुछ समय अलग बिताये, क्या यह जरूरी नहीं? क्या इसे पलायनवाद और व्यक्तिगत स्वार्थ मानकर संपूर्णतः वर्ज्य और त्याज्य ही मानें?

ऐसा ही प्रश्न उठता है क्रान्ति की वृत्ति और आध्यात्मिक वृत्ति को लेकर। इस क्रान्ति की परिपुष्टि के लिए भी क्या आध्यात्मिक एकल-प्रयोग की उपयोगिता नहीं?

ये कुछ उलझनें हैं। असली तो वे द्वंद्व से जन्मी हैं और उस द्वंद्व के समन्वय में इनका जवाब भी है ऐसा लगता है। किन्तु यदि आप कुछ स्पष्टता कर दें तो हमारे लिए उपयोगी होगा।"

इसके जवाब में असम यात्रा से २-६-१९६२ के लिखे पत्र में विनोबाजी ने लिखा: "ता० ३-५-६२ का तुम्हारा पत्र मुझे बहुत ही अच्छा लगा। मानसिक शंकाएँ जो उठती हैं, वे बहुत ही स्पष्ट शब्दों में रखी हैं। उसमें एक शब्द कम नहीं है, एक अधिक नहीं है। इतना सुन्दर लेखन, और लिखते समय वृत्ति की तटस्थता देखकर बड़ी खुशी हुई।"

(फिर आंदोलनात्मक दोनों मुद्दों की छानबीन करने के बाद आगे लिखा—)

"अब तीसरा जो आध्यात्मिक प्रश्न तुमने पूछा है, समूह साधना और उस विषय में व्यक्तिगत जीवन साधना की भी जरूरत है। इस विषय में तुमने जितना लिखा है, सब सही है। जिस तरह बीमार को थोड़ी देर के लिए हवाफेर के वास्ते अलग रहने की जरूरत पड़ती है, वैसे कुछ समय के लिए साधक को सामूहिक भावना रखकर सामूहिक-साधना को अधिक समृद्ध बनाने के लिए अलग रहने की जरूरत हो सकती है।

"आखिरी सवाल क्रान्ति की वृत्ति और आध्यात्मिक वृत्ति का। इसमें हम जो विश्लेषणात्मक भाषा बोलते हैं, वह ठीक नहीं होती। समझने की बात तो यह है कि **वास्तविक क्रान्ति अध्यात्म को छोड़कर हो ही नहीं सकती।** और वास्तविक अध्यात्म केवल थोड़े-बहुत सामाजिक सुधार से संतुष्ट रह ही नहीं सकता, समग्र क्रान्ति ही वह सोच सकता है। तुम भी ठीक ही समझी हो कि यह शंका द्वंद्व में से निकली है, और द्वंद्व के समन्वय में ही उसका जवाब है।

"तुम्हारा बौद्धिक और हार्दिक विकास बहुत अच्छी तरह हो रहा है, इसका निदर्शन तुम्हारे पत्र में मुझे देखने को मिला। उससे मुझे बहुत संतोष हुआ है।"

इस तरह क्रान्ति और अध्यात्म की जुगलबंदी चलती रही। भीतर सधता योग बाह्य कर्म कुशलता में प्रकट होता रहा है। ●

१२

दरिद्रनारायण की उपासना

धरमपुर के आदिवासी प्रदेश के साथ हम सबका पहले से अज्ञात रिश्ता रहा होगा, ऐसा लगता है। अनायास ही यहाँ पहुँचे। मैं बम्बई छोड़ने से पहले नौकरी करता था। एक बार महीनेभर की खास छुट्टी लेकर यहाँ से सर्वोदय कार्य और सर्वोदय कार्यकत्ताओं से प्रत्यक्ष परिचय प्राप्त करने गुजरात आया था। तब अहमदाबाद, बारडोली होकर मोहनभाई पारीख के कहने से धरमपुर-बिलपुड़ी पहुँचा। नानुभाई देसाई और कांतिलाल चांदाराणा से मिला। रविशंकर महाराज की गुजरात-पदयात्रा धरमपुर आनेवाली थी। उसकी पूर्व तैयारी के लिए हर्षकान्त वोरा की यात्रा चल रही थी। मैं उसमें शामिल हुआ। इस यात्रा में ही हर्षकान्तभाई और गुणवंतभाई के साथ दोस्ती हुई।

मैं तो बम्बई का वासी, पढ़ाई भी वहीं हुई। मैंने ग्राम प्रदेश पहली बार निकट से धरमपुर में ही देखा। हम आसपास के कई गाँवों में घूमे। मैंने और गुणवंतभाई ने समाज सेवा के मुग्धावस्था के सपने साथ-साथ यहीं देखे। यह बात है १९५८ की। इस इलाके में कभी घर बनाकर रहेंगे, ऐसा तो सपने में भी नहीं सोचा था।

उन दिनों जब बहनें काफी प्रयत्न कर रही थीं कि रविशंकर महाराज ग्रामदान के काम को उठा लें, उन्होंने साबरकांठा के बाद सूरत जिले में घूमने का विचार किया। सूरत जिले में कहाँ जायें? धरमपुर को पसंद किया। तब सूरत वलसाड एक साथ थे। उस यात्रा का उल्लेख बाबा को लिखे पत्र में और हरविलासबहन की डायरी में मिलता है: "आज भूदान जयन्ती है। धरमपुर तहसील के बिलपुड़ी ग्राम में पहुँचे। नानुभाई और लक्ष्मीबहन से पहचान हुई। तामछड़ी ग्राम गये। नानी वहियाल में तहसील के शिक्षकों की सभा रखी थी। बारोलिया का खादी-केंद्र भी देखा।" यह नोंध है १९६४ की। तब बहनों को इसकी कल्पना भी कैसे होती कि इस प्रदेश में उनका अन्न-जल लिखा है।

फिर तो १९६६-६७ में पूरी तहसील में ग्रामदान आंदोलन के निमित्त बार-बार

पदयात्रा हुई। तब गुजरात के सब कार्यकर्ता यहाँ गाँव-गाँव पहुँचे थे। यह पहाड़ों पर चढ़ना, उतरना, धूलभरे कच्चे रास्ते और पगडंडियाँ, यत्र-तत्र बिखरी कुछ झोंपडियों के बने गाँव, अत्यन्त गरीब आदिवासी प्रजा, बर्तन-भांडे या ओढ़ने-बिछाने का ठिकाना नहीं,नागली के रोट और उड़द की दाल, दाल नहीं दाल के कुछ दाने-वाला तीखा पानी, गुजराती-मराठी मिश्रित आदिवासी बोली, यहाँ के घनघोर जंगल और रमणीय प्रकृति, तथा प्रकृति के अंक में अनेक अभावों से पीड़ित होकर भी सदैव हँसता हुआ, तनावमुक्त और हवा की तरह भार हीन आदिवासी–यह सारा दर्शन यहाँ के घूमनेवाले कार्यकर्त्ताओं को हुआ है।

एक बार पदयात्रा अभियान में हरविलासबहन दक्षिण तहसील में कपराडा के आसपास घूमी और कान्ताबहन की टोली ने उत्तर में पिंडवल के आस-पास यात्रा की। पिंडवल का इलाका काफी अन्दर की तरफ है, अधिक गरीब और शहरी सभ्यता से नितान्त अलिप्त है। एक भी पक्का मकान नजर नहीं आता। पिंडवल में भी आश्रमशाला का एक कच्चा-पक्का मकान था। कान्ताबहन की टोली इन गाँवों में घूमी थी।

उनकी टोली में एक जवान डाक्टर थे। नवनीत फौजदार। बम्बई में १९६० में एम० बी० बी० एस० किया, एम० डी० की पढ़ाई की, किन्तु परीक्षा नहीं दी। उसके बदले ग्रामीण क्षेत्र में सेवा करने का तय किया। वडनगर के अस्पताल में डा० द्वारकादास जोशी और डा० बसंत परीख के साथ काम किया। विनोबाजी के आंदोलन में हिस्सा लेने के विचार से जून १९६४ में बड़ौदा आकर हमारे साथ रहने लगे। 'भूमिपुत्र' के ग्राहक बनाना इत्यादि कार्य करते। पदयात्रा में जाते। इस तरह तब कान्ताबहन की टोली में नवनीतभाई भी साथ थे।

नवनीतभाई पर आंदोलन का रंग चढ़ रहा था। 'विद्या कोई बेचने की चीज नहीं'– ऐसा वे दृढ़ता से मानते थे। अतः उन्हें व्यावसायिक प्रैक्टिस करनी नहीं थी। किन्तु जो विशेष ज्ञान प्राप्त किया था, उसका उपयोग तो करना ही था। पदयात्रा में भी ये सब बातें होती रहतीं। कान्ताबहन ने उनसे कहा "यह तो भगवान की बड़ी कृपा है कि आपको बम्बई में दवाखाना खोलने की इच्छा नहीं हुई। वरना वहाँ एक गली में डाक्टर की दस तख्तियों के साथ आपकी ग्यारहवीं होती । यहाँ इन गाँवों की स्थिति देख रहे हैं न? बीमारी-सीमारी में है कोई इनका इलाज करनेवाला ? आप की डाक्टरी विद्या की जरूरत इससे ज्यादा और कहाँ होगी? इसलिए यदि आप इस इलाके में काम करें तो डाक्टरी सेवा से निहायत

वंचित इस आदिवासी प्रजा को राहत मिलेगी–इतना कहकर कान्ताबहन ने उस जवान डाक्टर को अपनी जबान भी दे दी कि आप यहाँ का काम उठायेंगे तो अकेले नहीं पड़ेंगे। आपका यहाँ सब जँच जाये तो हम भी बड़ौदा छोड़कर यहीं आ जायेंगे और हम साथ मिलकर आदिवासियों के विकास का कार्य करेंगे। आप मेरी बात पर भरोसा रखें।''

कान्ताबहन की प्रेरणा काम कर गयी। नवनीतभाई के मन में राम जागे। उन्होंने पिंडवल के इलाके में काम करने का निर्णय किया। हृदय में तो सेवा भावना थी ही, अब उसे एक स्वरूप मिला। नवनीतभाई ने उस समय की अपनी भावना को कलमबद्ध किया है एक लेख में –

''पदयात्रा के दौरान हर गाँव में छोटे–मोटे रोगों से पीड़ित अनेक मरीज देखे। इन आदिवासियों की दरिद्रता भी देखी। हर साल तीन-चार महीने तो कुछ भी नहीं होता इनके पास। अनेक परिवारों को तो भूखे पेट ही सोना पड़ता है। और जब दो जून खाना मिलता भी है तो क्या खाते हैं–नागली या ज्वार का सूखा रोट, नमक-मिर्च की पीसी हुई सूखी चटनी। कभी-कदास भात या उड़द की दाल का पानी। सब्जी का तो नाम ही नहीं। छाछ भी कभी देखी नहीं। वहाँ दही-दूध-घी का तो सवाल ही नहीं। पहाड़ की पथरीली बीघे-दो-बीघे जमीन में आकाशी खेती करते हैं। क्योंकि जहाँ पीने के पानी की इतनी तकलीफ है तो खेत के लिए पानी कहाँ से आये? कंद-मूल ढूँढ़कर, उबाल कर खाते हैं। वह भी न मिले तो चूहों के बिल खोदकर चूहे पकड़कर खाते हैं। यह सब देखकर मन में आया कि ईश्वर-कृपा से मुझे डाक्टरी ज्ञान मिला है, उसकी सबसे अधिक जरूरत यहीं है।''

इस तरह से आरोग्य सेवाओं से पिंडवल के कार्य की शुरुआत हुई। वहाँ की आश्रमशाला के आचार्य श्री मंछुभाई गाँवित और शिक्षिका-गृहमाता कान्ताबहन पटेल ने पूरा सहयोग दिया। नवनीतभाई ने मिशनरी भावना से काम शुरू किया। शुरू में तो अज्ञान, आलस और अंध श्रद्धा की वजह से लोग दवा लेने आते ही नहीं थे। वे तो भूत-प्रेत, डोरा-गंडा, तंत्र-मंत्र में मानते। नवनीतभाई ने हर गाँव में, हर झोपड़े में जाकर उनके मन में डाक्टर और दवा के बारे में विश्वास जगाया। गुलाबभाई और भायलुभाई की मदद से वे बड़े धैर्य और होशियारी से सबका इलाज करते रहे। लोगों को बातचीत में, सभाओं में समझाते रहे कि अपना आरोग्य स्वयं कैसे सँभाले, रोग न होने देने के लिए क्या करें।

१९७३ में वहाँ अकाल पड़ा। उस समय कुछ अनाज राहत दर से, कुछ मुफ्त

और कुछ उधार बाँटा। इसमें से अनाज बैंक का आरम्भ हुआ। उसे यहाँ 'खवटी' कहते हैं। खावटी अर्थात् खाने के लिए उधार लाया हुआ अनाज। शुरू में डेढ़ हजार कुटुम्बों को अनाज दिया जाता। १९७३ में इस काम की शुरूआत हुई। आगे इसका काफी विकास हुआ।

इस तरह पिंडवल में काम की काफी अच्छी भूमिका तैयार हुई। प्रारम्भ से ही कान्ताबहन ने इसे अपना काम माना था, इसलिए दूर रहकर भी इस काम की चिन्ता-चिन्तन करती रहती। एक बार जिम्मेदारी ले लेने के बाद उसे अच्छी तरह निभाना, यह तो उनका स्वभाव ही है। उन्होंने इस काम की आर्थिक जिम्मेदारी उठा ली। मण्डल की जिम्मेदारी तो थी ही। इसलिए गुजरात सर्वोदय मण्डल में ही 'धरमपुर आरोग्य केन्द्र अंकित फंड' के तहत आर्थिक व्यवहार चलातीं। इतने कामों में से समय निकालकर पिंडवल पहुँच जातीं और किसी दाता शुभेच्छुक को भी साथ लिवा जातीं। सर्व सेवा संघ के काम से बिहार गयी, तब झरिया के श्री लक्ष्मीनारायण भगवान ट्रस्ट से धरमपुर के काम के लिए एक जीप-एम्बुलेंस दान में ले आयी थी। उसके कारण अधिक अन्दरुनी गाँवों में, अधिक मरीजों के पास पहुँचना सम्भव हुआ। अब तक तो आश्रमशाला में रहकर काम चला। ज्यों-ज्यों काम बढ़ता गया, अपने अलग मकान की आवश्यकता पड़ने लगी। पिंडवल में मकान के लिए करीब सवा लाख का फंड इकट्ठा किया।

इस तरह पिंडवल के काम से कान्ताबहन का रिश्ता कायम रहा। उनकी दिली तमन्ना थी कि यहाँ की गरीब प्रजा के सर्वांगीण विकास के लिए पूरी मेहनत करें।

१९७० में ग्रामदान आंदोलन मंद पड़ने लगा था। विनोबाजी ने सूक्ष्म प्रवेश किया था। स्थूल कर्मयोग छोड़कर वे ब्रह्म विद्या मंदिर पवनार में स्थिर हुए थे। दोनों बहनों को अब किसी क्षेत्र में **सघन काम करने की इच्छा** हुई। सोचा व्यापक विचार-प्रसार के साथ कहीं प्रत्यक्ष कार्य भी करें। पहली एक बार बलियादेव में काम शुरू किया था। किन्तु तब विनोबाजी का आदेश हुआ—उठो, घूमो, अभी बैठना नहीं। बयालीस की उम्र तक घूमती रहो। अब दोनों तिंयालीस-चौंवालिस की हो गयी थीं।

उन दिनों विनोबाजी अक्सर कहते भाव-नगर में नहीं अभाव नगर में जाकर बसो। धरमपुर का इलाका शायद सबसे अधिक अभावग्रस्त जान पड़ा। गुजरात के पूर्वीय किनारे पर आदिवासी बसे हुए हैं। बहनें पदयात्रा और सर्वोदय के अन्य कामों के निमित्त वहाँ घूमी ही थीं। तभी उन्होंने देखा कि धरमपुर का इलाका

अत्यन्त पिछड़ा हुआ और उपेक्षित है। उसमें भी पिंडवल की तरफ के अंदरूनी गाँवों का तो बाहर की दुनिया से कोई संपर्क ही नहीं था। पाँच-छह वर्ष से अनायास इस इलाके से इनका रिश्ता जुड़ गया था। नवनीतभाई की आरोग्य सेवा से भूमिका बँधी थी। अतः स्वाभाविक ही बड़ौदा छोड़कर यहाँ का काम उठाने का तय किया।

साधारणतया मनुष्य उम्र बढ़ने पर गाँव छोड़कर शहर की ओर जाने की सोचता है। यहाँ तो उलटा हुआ। प्रौढ़ उम्र में बहनें बड़ौदा जैसा शहर छोड़कर गंवई गाँव में जा रही थीं। और इलाका भी ऐसा था कि शहर की तुलना में अनेक असुविधाएँ थीं। सड़क नहीं, बिजली नहीं, तार-टपाल नहीं, दूध नहीं, सब्जी नहीं, सामाजिक-सांस्कृतिक वातावरण जरा भी नहीं। फिर भी उन्हें बड़ौदा छोड़ने में तनिक भी हिचकिचाहट नहीं हुई। बल्कि, एक नये अभियान-आरम्भ का उत्साह-उमंग हृदय में धरे अक्टूबर १९७४ में बड़ौदा छोड़ा। जैसे घर छूटा था, बम्बई छूटी थी, वैसे बड़ौदा का चौदह वर्ष का निवास भी छूटा।

शुरू में अतुल में एक मकान मिला, उसे हेडक्वार्टर बनाया। क्योंकि पिंडवल में मकान बँध रहा था, वह १९७५ के अन्त में तैयार हुआ। पिंडवल का रास्ता भी निहायत कच्चा और टूटा था कि जून से नवम्बर तक पाँच-छह महीने वाहन व्यवहार ठप हो जाता और सब जगह आना-जाना पैदल ही करना पड़ता। पिंडवल में पोस्ट, बैंक कुछ नहीं था, इसलिए वे काम भी अतुल में करने पड़ते। पिंडवल के काम के साथ पूरे वलसाड जिले में सर्वोदय-कार्य करने का सोचा था। उसका संयोजन भी पिंडवल से संभव न था। इसलिए शुरू में अतुल में निवास रहा और पिंडवल आते-जाते रहे। किन्तु धीरे-धीरे पिंडवल के काम का पसारा बढ़ता गया और अतुल में रहना छूट ही गया। इमरजेन्सी के दौरान १९७६-७७ में अतुल का मकान भी जब्त कर लिया गया था।

कान्ताबहन का कोई भी काम गति और व्यापकता के बिना हो ही नहीं सकता। उन्हें जरा-सा काम करने में रुचि नहीं, चींटी की चाल उन्हें पसन्द नहीं। इसलिए पिंडवल में एक साथ उन्होंने कई व्यापक कार्य आरम्भ किये।

उनके मन में विचार आया कि आदिवासियों के आँगन में फलों के वृक्ष लगायें तो कितना अच्छा हो? यहाँ आम्रवृक्ष लगायें तो? कलम खरीदें तो मँहगा पड़ेगा, अभी तो उसके लिए बजट नहीं है।

किसी ने सलाह दी वलसाड तो आम का घर है, वहाँ जरूर कैनिंग फैक्टरी

होगी, उनसे हजारों गुठलियाँ मिल सकती हैं। पता किया। एक कैनिंग फैक्टरी अतुल के नजदीक पारडी में ही थी। वहाँ पहुँचे। उन्होंने खुशी से बात मानी। बोले, "मुझे कुछ नहीं चाहिए आप गुठलियाँ ट्रक में भर कर ले जायें।"

इस रसहीन गुठलियों के अभियान की रसपूर्ण कहानी कान्ताबहन के शब्दों में–

"एक किराये का ट्रक लिया। मैं और हरविलास पहुँचे कैनिंग फैक्टरी में। उन्होंने हमें घूरा दिखाया। घूरा तो सड़ रहा था, कई दिनों का खमीर सड़ रहा हो वैसे। मक्खियाँ भिनभिना रही थीं। लम्बी-लम्बी इल्लियाँ पड़ी थीं। इतनी भयंकर दुर्गन्ध थी कि माथा फट जाये। फैक्टरीवाले ने पूछा मजदूर नहीं लायी? हमने कहा हम हैं न ? वे बोले, बहन यह आपका काम नहीं । किन्तु हम तो लग गये काम में। उन्होंने फिर तीन मजदूर दिये। वे तीन और हम दो, पाँच टोकरियों से गुठलियाँ ट्रक में भरने लगे।

"ट्रक भरने पर हमारी सवारी पहुँची धरमपुर और वहाँ से खडकदाल, जहाँ से फिर कच्चे रास्ते पिंडवल का घाट चढ़ना था–पूरे ग्यारह किलोमीटर और दो हजार फीट की ऊँचाई । ट्रकवाला अड़ गया–मैं तो ऊपर नहीं जाऊँगा। हम उसे हाथ-पाँव जोड़ कर समझाने लगे। तभी एक आदिवासी उधर से उतरा, उसने कहा–अब रास्ता बन्द हो गया है। कल यहाँ मूसलाधार बारिश हुई थी। गीली मिट्टी में ट्रक धँस जायेगी और बीच रास्ते में जगह-जगह बड़ी-बड़ी शिलाएँ लुढ़की पड़ी हैं। रास्ते के बीच टूटे पेड़ हैं । ट्रक तो नहीं जा सकेगी।

"अब तो कोई उपाय न रहा। रास्ते के किनारे गुठलियों का ढेर लगाकर ट्रक को विदा किया और हम दोनों ने पिंडवल की चढ़ाई आरम्भ की। बीच में रुकते-रुकते पाँच घंटे में पिंडवल पहुँचे, तब पाँव जवाब दे चुके थे। किन्तु मन तो गुठलियों में अटका था, उन्हें यहाँ तक कैसे लायें?

"गाँव के कुछ लोगों को बुलाया। उन्हें समझाया। यह तो आपके ही फायदे की बात है। मजदूरी देंगे लेकिन गुठलियाँ यहाँ तक लानी होंगी। लोग तैयार हो गये। पैदल खडकदाल गये। बोरियों में गुठलियाँ भरके उन्हें माथे पर उठाकर पिंडवल लौटे। जब सारी बोरियाँ खाली कीं तो हमारा चौक गुठलियों से भर गया। हमारा मन भी खुशी से भर गया। दूसरे दिन हरएक खावटी के साथ चार-पाँच गुठलियाँ भी बाँटते गये। करीब साठ गाँवों में एक साथ आम्र वृक्ष रोपण का सुन्दर सपना हम देखने लगे।"

ऐसा दूसरा अभियान उठाया खादी का। अंबर चरखा चलायें तो लोगों को

रोजी-रोटी मिले। रतिभाई गोंधिया और सूरजबहन की मदद से खादी-काम जमाया। चरखे लाये। बड़े कष्ट उठाकर बाहर से पूनी लाये। तीन-चार महीने बढ़िया चला। फिर आयी बरसात। डेढ़-दो महीने खेती काम और बेहद वर्षा के कारण चरखे बन्द रहे। फिर लोग कातने आने लगे। लेकिन पूनी कैसे लायें? रास्ता तो बन्द है। ठेठ दीवाली के बाद रास्ता दुरुस्त होगा, फिर वाहनों की आवन-जावन होगी, तब पूनी ला सकेंगे।

किन्तु हमें यह मंजूर न था। शुरू में ही यदि ऐसे विघ्नों से थक जायें और काम बन्द रखें, तो वह आगे कैसे बढ़ेगा? कातनेवालों को समझा-बुझाकर तैयार किया–'पूनी की बोरियाँ सिर पर उठा कर लायेंगे।' लेकिन अभी तो बारिश है, पूनी गीली हो जाये तो सारी मेहनत बेकार जाये। इसलिए मोटे अच्छे प्लास्टिक की बोरियाँ खास बनवायी कि जिनमें पूनी भरी हुई जूट की पूरी बोरी समा जाये। कातनेवाले उसे ढोकर लाते। इस तरह पूनी की कमी न होने दी और पिंडवल में खादी-काम की ठोस बुनियाद डाली। आगे जाकर यह काम बहुत विकसित हुआ। एक अद्‌भुत लगन कार्य का प्रेरणास्रोत रही।

इस इलाके में एक बड़ी समस्या थी शिक्षकों की। वे पढ़ाने के लिए गाँव में रहना नहीं चाहते थे। बहुत शिकायतें कीं। नोटिस देकर एक-दो शिक्षकों को सस्पेंड करवाया। आखिर शिक्षा मंत्री नवलभाई को पिंडवल बुलाया और गाँवों की परिस्थिति स्पष्ट की। उनकी सलाह और आग्रह से आस-पास के छह गाँवों की प्राथमिक शाला-संचालन की जिम्मेदारी हमने उठायी। धीरे-धीरे शिक्षक गाँव में रहने लगे और पढ़ाने लगे।

किन्तु चार गाँव में देखा स्कूल के लिए मकान ही नहीं था। जैसे-तैसे किसी झोंपड़ी के बरामदे में पढ़ाते। सोचा कि यदि स्कूल के लिए एक कमरा और शिक्षक के लिए एक कमरा बँधवायेंगी तभी स्कूल ठीक से चल सकेगा। हमने कमर कसी। चारों गाँवों में करीब नौ सौ चौरस फीट पक्का मकान बनाने का तय किया।

इसके लिए चन्दा इकट्ठा किया। बड़ी मेहनत से चारों गाँवों में माल सामान पहुँचाया। मजदूरों को तैयार किया। मिस्त्री लाये। किन्तु इन पहाड़ों में कोई टिकता नहीं, वह चला गया। फिर दूसरे को लाये तो वह भी चला गया। आखिर तीसरे को लाये। मकान का प्लान हमने ही बनाया, हमने ही निगरानी रखी, हमने पानी डालने का काम किया। चारों गाँवों में स्कूल के मकान खड़े हो गये। पिंडवल में भी अम्बर-कताई केन्द्र का मकान बनाया।

इस तरह दस गाँवों में निरक्षरता-निवारण के लिए रात्रिशालाएँ शुरू कीं। गाँव-गाँव में स्लेट-पेन पहुँचाये, लालटेन पहुँचाये, गाँव के ही व्यक्ति को पढ़ाने के लिए तैयार किया और पढ़ानेवालों को जोश दिलाते रहे, प्रोत्साहन देते रहे, जिससे काम चलता रहे।

लोगों को पीने का शुद्ध पानी मिले, इसके लिए पक्के कुएँ बाँधने का कार्यक्रम शुरू किया। दूर-दूर के गाँवों में जाकर कुएँ की जगह निश्चित करते, श्रमदान के लिए तैयार करते, खुदाई की व्यवस्था, फिर सामान पहुँचाते, मिस्त्री-कारीगर ढूँढ़ते, पानी उलीचने के लिए पंप जुटाते—एक पूरा अभियान ही चलाना पड़ता। उस समय ऐसे करीब सोलह कुएँ तैयार हुए थे।

एक तालाब खोदने का, दूसरे तालाब को गहरा करने का काम उठाया। तब बारह हजार मानव दिन की रोजी हमने गेहूँ का दलिया और सोयाबीन के तेल के रूप में चुकायी।

संक्षेप में एक बहुमुखी अभियान चलाया और आदिवासी प्रजा के सर्वांगीण उत्थान के लिए अनेक कार्य आरम्भ किये। हम पूरी शक्ति से उसमें जुट गये। १९७८-७९ में खूब जोरों से काम चला। हम सब पूरी एकाग्रता से इन कामों में लग गये।

किन्तु पिंडवल में प्रचण्ड पुरुषार्थ की दिशा में हम और आगे बढ़ें, उससे पहले प्रकृति ने हमारे लिए एक भीषण अग्निपरीक्षा उपस्थित कर दी। एक साथ इतनी सारी प्रवृत्तियों के कारण कान्ताबहन के शरीर को बहुत नुकसान पहुँचा। वे तो पूरी तरह कामों में डूबी थीं। वैसे तो १९७९ के आरम्भ से ही छोटी-मोटी तकलीफें होने लगी थीं। फिर धीरे-धीरे बढ़ गयीं। कमरपीठ का सख्त दर्द, ब्लीडिंग डिस्चार्ज वगैरह के कारण उनकी शारीरिक शक्ति क्षीण होती गयी। फिर भी वे काम में लगी रहीं। कुआँ बँध रहा हो, तालाब खोदना हो, स्कूल का मकान बन रहा हो, लोग ठीक से पानी नहीं डालते तो स्वयं पहुँच जातीं हर जगह और पानी डालतीं। उनसे दौड़कर जाये बिना रहा न जता। हालाँकि उनकी हॉट-वॉटर बैग भी उनके साथ घूमती रहती।

आखिरी एक महीना तो शक्ति की हर बूँद खर्च डाली और शरीर को धकियाकर भी काम करती रहीं। क्योंकि बारिश के दिन नजदीक थे। बारिश शुरू होने से पहले मकान पूरे होने चाहिए, कुएँ तैयार होने चाहिए—सीमेंट गीला हो गया तो ... और... और ..... और चक्र चलता ही रहा। वे कहतीं कि दाताओं ने

कितने विश्वास से इन कामों के लिए हमें पैसा दिया है। इसमें से एक भी पैसे का दुरुपयोग न हो, यह तो हमारी जिम्मेदारी है न! इसलिए तनिक इतने काम निपटा लें, फिर चौमासे में बम्बई जाकर तबियत की जाँच करेंगे।

कान्ताबहन ने सेवायज्ञ में अपने शरीर की आहुति दी, ऐसा कहें तो अतिशयोक्ति न होगी। किन्तु रोज-रोज तकलीफ बढ़ती गयी। आखिर अब एक दम भी असंभव हो गया, तब उन्हें मई महीने के अंतिम सप्ताह में जबर्दस्ती बम्बई ले जाना पड़ा। वहाँ टाटा हास्पिटल में निदान हुआ गर्भाशय का कैंसर है, तीसरी स्टेज तक फैल गया है।

हमारे वे तीन महीने भयंकर उद्वेग और चिन्ता में बीते। किन्तु कान्ताबहन ने गजब की स्वस्थता बनाये रखी। इतना पीड़ादायक इलाज भी चुपचाप सहन किया। एक क्षण के लिए भी उनका मनोबल कमजोर होते नहीं देखा।

इनकी और उनकी अन्य बीमारी की बात तो विस्तार से अलग अध्याय में करेंगे। यहाँ तो इतना ही कहना है कि पिंडवल के काम के संदर्भ में इससे एक बड़ी समस्या खड़ी हो गयी। 'कैंसर अर्थात् कैन्सल ही ....' ऐसा माना जाता है। कान्ताबहन की शारीरिक हालत इतनी नाजुक हो गयी थी कि फिर इसमें उठेंगीं या नहीं, ऐसी शंका होती थी। और ठीक भी हुईं तो पहले की तरह काम तो नहीं ही कर सकेगीं, ऐसा पक्का डर था। तो पिंडवल के काम का क्या होगा? क्या सारा समेट लेना पड़ेगा?

किन्तु यह तो कान्ताबहन थीं! भीषण-अग्नि परीक्षा से गुजरकर कुंदन की नाईं और परिशुद्ध हुईं, उनका मनोबल और दृढ़ हुआ। पिंडवल का काम छोड़ने का तो उन्हें खयाल भी न आया। उसके बदले भगवान जब तक जिन्दा रखे जितना हो सके काम कर लेना है, ऐसा निश्चय करके पिंडवल लौटीं।

जून-जुलाई, बम्बई में इलाज चला। अगस्त में कुछ आराम किया। सितम्बर में पिंडवल जाने के लिए तैयार। किन्तु उन्हें पिंडवल कैसे ले जायें? रास्ते तो अभी बारिश में बन्द थे। वाहन कोई जा नहीं सकता। तो बोली, लोग उठाकर ले जायें। एक कुर्सी मँगवायी। उसके दोनों तरफ डंडे बाँधकर डोली जैसी बनायी। पाँच-छह जवानों को तैयार किया। हालाँकि फिर उसकी जरूरत न पड़ी। भायलुभाई ड्राइवर रुक-रुककर रास्ता ठीक करते हुए बड़ी कुशलता से जीप में बैठाकर ही उन्हें पिंडवल ले आया। कान्ताबहन को बड़ी शान्ति मिली, उनके कलेजे में ठंडक पड़ी।

तब से लेकर आज तक भी कान्ताबहन की बीमारियों का कोई अन्त नहीं

आया किन्तु वे तो अडिग रही हैं। **दिल में राम और मुख में नाम के साथ हाथ में काम** उनका अखण्ड-अस्खलित चलता रहा है, बढ़ता रहा है। हर बीमारी मानो उनसे कहती जाती है कि अब आयुष्य चुक रहा है, झटपट जितना हो सके कर लो, ऐसी लगन से वे पिंडवल के काम को आगे बढ़ाती रही हैं। वैसे तो यह हमारा टीमवर्क है। सारे काम मिलकर करते हैं। सबकी साझेदारी है काम में। फिर कान्ताबहन का नेतृत्व, नये-नये प्लान, मुख्य अभिक्रम सदैव विशेष रहा है।

पिंडवल के हमारे काम के पीछे हमारी दृष्टि रही कि बरसों से उपेक्षित और अभावग्रस्त आदिवासियों के सर्वांगीण उत्कर्ष के लिए हर प्रयत्न करें। उन्हें शिक्षा और सुसंस्कार मिलें। व्यसन और कुरिवाजों से मुक्ति मिले। उन्हें अपने स्थान पर ही काम मिले, जिससे पेट पालने के लिए बाहर भटकना न पड़े। साथ ही उनकी चेतना का विकास हो। हमारे सारे काम प्रवाहपतित खड़े हुए हैं। कोई प्रश्न खड़ा हुआ, जीवन की कोई समस्या सामने आयी तो उसे सुलझाने के ख्याल से अलग-अलग काम हाथ में लिये। इस तरह काम बढ़ा और विकसित होता गया।

आज **आरोग्य सेवा का काम** काफी विकसित हुआ है। पिंडवल केन्द्र में सालभर में करीब २० हजार मरीजों का इलाज होता होगा। कस्तूरबा ट्रस्ट द्वारा तालीमयाफ्ता बंगाल की सुमिता और कर्नाटक की गीता इन दोनों बहनों ने पिंडवल केन्द्र की जिम्मेदारी उठा ली है। नवनीतभाई ने दोनों को बढ़िया ट्रेनिंग दी है। कुछ स्थानीय आदिवासी युवकों को भी तैयार किया है। इन्हें साधारण बीमारियों की जानकारी, उनके इलाज का प्राथमिक ज्ञान और जरूरी दवाएँ दी हैं। यह **'नंगे पाँववाला डाक्टर'** अपने आसपास के चार-पाँच गाँवों में आरोग्य सेवाएँ देता है। कुष्ठ रोगी, टी० बी० के रोगियों का नियमित इलाज किया जाता है। नवनीतभाई गाँवों में जाकर कैम्प लगाते हैं। वहाँ फोड़ा-फुंसी-खुजली इत्यादि चमड़ी के रोगों का सामूहिक इलाज करते हैं। साथ ही गाँव में किसे कितने कवेलु देने हैं, इसका प्रत्यक्ष सर्वे करते हैं। पूरे गाँव में घूमकर नवनीतभाई सब पक्का करते हैं।

अन्य अनेक तरह के काम चलते रहते हैं। वह गुठली अभियान हालाँकि रोमांचक था, परिणाम की दृष्टि से शून्य रहा। अधिकतर गुठलियाँ तो बोयी ही नहीं, भूनकर खा गये। जो बोयी खास उगी नहीं।

फिर राजापुरी आम की कलमें देना शुरू किया। बीस रुपये की कलम पाँच रुपये में देते। उतने पैसे भी न हों तो लोग खावटी के साथ उधार ले जाते। सर्दियों में जब अनाज तैयार हो तब खावटी के साथ पाँच किलो अनाज इसके भी चुका

देते । इसके अलावा नींबू, अमरूद, काजू के पौधे तथा साग-सब्जी के बीज वगैरह भी दिये। चार-पाँच वर्ष यह काम चला और करीब बीस-पचीस हजार कलमें तथा पौधे दिये। गुठली अभियान में कोंपल नहीं फूटी, लेकिन उसकी खाद तो बढ़िया बनी ही होगी।

१९७३ में खावटी देनी शुरू की थी। उसका काम बढ़ते-बढ़ते चार-पाँच हजार परिवारों तक पहुँचा। पन्द्रह वर्ष तक इसी तरह खावटी देते रहे। उसके साथ अनाज की एक दुकान भी बन गयी। इधर अंदरूनी इलाके में कहीं अनाज की दुकान न थी। कहीं-कहीं दुकान के बाहर सस्ते भाव का इश्तहार तो लटकता रहता किन्तु अन्दर अनाज नहीं। अनाज खरीदने के लिए लोगों को तीस-पैंतीस कि० मी० दूर ठेठ धरमपुर जाना पड़ता।

इसलिए सोचा कि लोगों को-कम-से-कम किफायती अनाज तो मिलना चाहिए न! हर क्षण बढ़ती मँहगाई में बेचारा गरीब पिसता ही रहता है, संगठित वर्ग तो हड़ताल करेंगे, मोरचे निकालेंगे, वेतनभत्ता माँगेंगे, किन्तु इन गिरिकंदराओं में दुबके आदिवासी किससे माँगेंगे? विनोबाजी कहते कि गरीबों की मजदूरी का कुछ हिस्सा अनाज के रूप में दो, जिससे उसके कुटुम्ब के मासिक बजट में कम-से-कम भोजन खर्च तो मँहगाई के शिकंजे से मुक्त रहे। खैर, हमने तो इतना किया कि उन्हें पिंडवल में एक रुपये किलो अनाज मिलता रहे। पाँच-छह हजार परिवारों को कार्ड दिये हैं। उस कार्ड पर हर कुटुम्ब को महीने में चालीस किलो अनाज किफायती भाव से दिया जाता है। हमें दो-तीन रुपये कि० पड़ता है, देते हैं एक रूपये में, १९९२ में अनाज का खरीद भाव चार-पाँच रुपये हो गया, तब उन्हें दो रुपये किलो देना पड़ा था।

गरीब आदिवासी के जीवन में इससे बड़ी राहत मिलती है। इतनी भीषण महंगाई में कम-से-कम खाना तो मिल जाता है। शुरू में सालभर में डेढ़-दो लाख किलो, फिर तीन-चार लाख किलो और १९९२ में साढ़े सात लाख किलो अनाज इस तरह दिया गया। यह एक महत्त्वपूर्ण काम वहाँ हो रहा है।

ऐसा ही एक स्थायी महत्त्वपूर्ण कार्य हो रहा है कवेलु प्रोजेक्ट का। १९८० में कवेलु-वितरण का कार्य आरम्भ हुआ। इसकी जानकारी कान्ताबहन के शब्दों में : "हम बातें करते हैं स्वीट होम की। हरएक चाहता है कि उसका एक घर हो, जहाँ वह सुख-शांति से रह सके। हमारे इन आदिवासियों का घर होता है गारे माटी की, बाँस की बनी झोंपड़ी। ऊपर पक्का छप्पर भी नहीं। घासफूस का छप्पर, जिस पर

बड़े-बड़े पत्ते ढँके होते हैं। पत्ते सड़ जाते हैं, इसलिए हर चौमासे में नया छप्पर बनाना पड़ता है। इस इलाके में करीब १०० इंच बारिश होती है। बारिश का मौसम कठिन होता है। तूफानी हवा के साथ ऐसी बारिश होती है मानो आसमान फट रहा हो। चारों ओर कुहरा छाया रहता है। इस सब में यह कच्चा तकलादी छप्पर क्या रक्षा करेगा? इतना पानी चूता है कि बाहर और घर में खास फर्क नहीं रहता।

"यह सब देख-देखकर सोचती थी इसका क्या उपाय हो? इनके लिए पक्के मकान तो जाने कब बनेंगे, कौन बनायेगा? कम-से-कम पक्का छप्पर तो तुरन्त बनना चाहिए। आजादी के तीस-पैंतीस वर्षों के बाद भी लोगों को ऐसी हालत में जीना पड़ता है, देखकर दुःख होता है।"

आखिर कमर कसकर तैयार हुए और हर झोपड़ी के लिए एक हजार कवेलु देने का कार्यक्रम आरंभ किया। १९८० में हजार कवेलु हजार रुपये में पड़ते, आज १९९२ में लगभग दो हजार हो गये हैं। कवेलु प्राप्त करनेवाला कुटुम्ब उनमें से ३०-३५ प्रतिशत देता है। बाकी ट्रस्ट देता है। पिछले बारह-तेरह वर्ष में इस इलाके में लगभग सवा करोड़ रु० के कवेलु करीब ९ हजार कुटुम्बों की झोंपड़ियों पर चढ़ाये होंगे। सरकारी या अन्य कोई भी एजेन्सी की मदद के बिना लोगों की सहायता से यह इतना प्रचण्ड कार्य हुआ है।

कवेलु का छप्पर बनाना आदिवासी के जीवन का एक यादगार प्रसंग होता है। हरविलासबहन ने एक लेख में इसका वर्णन किया है–"हमें नया घर बनाकर, नया फ्लैट खरीदकर, नया बंगला बाँधकर जितनी खुशी होती है, उससे भी अधिक खुशी यहाँ के आदिवासी परिवार को पक्का खपरैल का छप्पर पाकर होती है। कवेलु पानेवाले परिवार की आँखों में जो चमक और प्रसन्नता दिखाई देती है, उसे देखकर हमारी आँखें और हृदय शीतल होते हैं। हर साल कवेलु-वितरण के समय स्वयं उत्सव ही मानो खड़ा हो जाता है। छोटे-बड़े दाताओं को और अन्य मित्रों को भी हम इस अवसर पर निमंत्रण देते हैं, जिससे वे भी इन अंदरूनी गाँवों के प्रत्यक्ष दर्शन कर सकें। गाँव के लोग ढोलक-मंजीरे के साथ मेहमानों का उत्साहपूर्वक स्वागत करते हैं। सब मिलकर एक साथ नाचते हैं। गाँव में अनोखे उत्सव का वातावरण फैल जाता है। ऐसे एक मौके पर बम्बई से आयी जैन युवक संघ की एक बहन बोल पड़ी थी–"यह है सच्चा अपना उत्सव" यहाँ हृदय की उमंग के दर्शन होते हैं।

लोगों का ऐसा उल्लास-उमंग देखकर कान्ताबहन को बड़ी ही शान्ति मिलती है, उनके रोगग्रस्त देह में नयी शक्ति का संचार होता है। कवेलु वितरण का कार्य अभी भी जोरों से चल ही रहा है। कान्ताबहन कहती है : "मेरे मन में आता है कि धरमपुर के इस समूचे आसमान को कवेलु से छा दूँ, एक भी झोंपड़ी बिना कवेलु की नहीं रहनी चाहिए।"

इच्छाएँ स्वार्थी भी हो सकती हैं, अहंकार, घमंड, कीर्ति और मोह-प्रेरित भी हो सकती हैं। किंतु ऐसे भक्त-हृदय की शुद्ध, निःस्वार्थ आकांक्षा जरूर पूरी हो, ऐसी प्रार्थना हम सब करें। उनके शुद्ध हृदय और निःस्वार्थ वृत्ति के कारण ही हर तरह के लोग उनके कामों में प्रेम से सहायता करते हैं।

इसका ज्वलन्त उदाहरण है, पिंडवल का खादी-कार्य। १९७८ में सिर्फ पचीस चरखों से कार्य आरम्भ किया था, आज एक हजार से भी अधिक चरखे इस इलाके के करीब तीस गाँवों में चल रहे हैं। पिडवल में खादी-बुनाई का काम भी चलने लगा है। आदिवासी युवक काफी सुन्दर बुनाई करने लगे हैं। दस-पंद्रह वर्ष तक लगातार हम सबने इस काम के लिए बहुत मेहनत की उसी का यह परिणाम है। करीब एक हजार आदिवासी परिवार खादी-काम द्वारा घर बैठे रोजी कमाने लगे हैं। सालभर में लगभग चालीस हजार की खादी-बिक्री होती है।

कान्ताबहन के विशेष प्रयत्नों के कारण हमारे इस खादी-कार्य को सुन्दर स्वरूप प्राप्त हुआ है। इसका रोमांचक बयान उन्हीं के शब्दों में–

"चरखे चलाना आसान नहीं। हर महीने डेढ़-दो लाख गुंडियों का पहाड़ खड़ा हो जाता है। उसके डेढ़-दो लाख रुपये कताई-मजदूरी के चुकाने पड़ते हैं। सूत तो जल्दी से कोई खरीदता नहीं। और अगर खरीदे भी तो दस-बारस महीने तक पैसा चुकाते नहीं। वे कहते हैं सूत के बदले में खादी ले जाआअ, फिर वह खादी बिके, नकद पैसा हाथ में आयें, तब कहीं कातनेवालों को मजदूरी चुकायें।

"सुना भी था और पढ़ा भी था कि गांधी के जमाने में लोग घर-घर घूमकर खादी फेरी करते। गांधीजी का स्मरण करके आज भी ऐसा कुछ करें तो? बस, अन्दर से एक धक्का लगा और काम शुरू किया। पहले की तरह खादी के थान कंधे पर डालकर फेरी लगाना तो संभव नहीं था। फिर भी इस बढ़ती उम्र में और टूटते स्वास्थ्य में जितना संभव हुआ किया, जहाँ भी जाते खादी भरे थैले उठाकर जाते। वाहन की सुविधा मिलने पर खादी के बड़े-बड़े बंडल साथ ले जाते। साथी कार्यकर्त्ता खादी बेचने साप्ताहिक हाट-बाजारों में गये। हम खादी बेचने मेले में भी

गये, सभा सम्मेलनों में भी गये। पिंडवल आनेवाले मेहमान भी दरिद्रनारायण का यह प्रसाद ले जाने लगे।

किन्तु काम छोटा तो था नहीं। लाखों की खादी खपानी थी। हजारों हाथ लगें तभी काम हो। इसलिए मित्रों और शुभेच्छुकों के द्वार पर गुहार लगायी। वालोड की लिज्जत पापड़वाली बहनों से कहा—आपके पास पापड़ लोग खरीदें-खायें, तो आपको रोजी मिलती है, उसी तरह यदि आप खादी इस्तेमाल करें तो हमारे पिंडवल के दरिद्र आदिवासी को रोजी मिलेगी। डाक्टर, वकील, व्यापारी सबकी यही कहानी है न? सब एक-दूसरे के आधार से जीते हैं- बिलकुल सीधी-सादी व्यावहारिक बात है। कई लोगों को जँच गयी और बहुतों का सहयोग प्राप्त हुआ।

"किसी ने रोज एक-दो घंटे का समय दिया, किसी ने छुट्टियों में काम किया। बम्बई के चार्टर्ड एकाउण्टेण्ट प्रफुलभाई ने अपने आफिस में खादी रखकर बेची। हमारी नलिनी और मंगलाबहन जैसी अनेक बहनों ने अपने घर को ही खादी-बिक्री केन्द्र बना डाला। किसी ने अपने खेत में काम करनेवाले मजदूरों को, हलवाहों को खादी दिलवायी, तो किसी ने अपने परदेसी मित्र या रिश्तेदार को खादी की भावना समझाकर खादी दिलवायी। किसी ने रक्षा बंधन के निमित्त रुपये, बर्तन या अन्य भेंट सौगात की जगह खादी भेंट की। सुरेखाबहन ने अहमदाबाद की मिलों, कारखानों में खादी के स्टाल खोले और खादी-बिक्री की। रिलायन्स कम्पनी में जाकर तीन दिन में चार लाख की खादी बेच आयी और 'ओन्ली विमल' के सुर में 'खादी आल्सो' का सुर जोड़ दिया। अरविन्द मिल में सिर्फ पंद्रह दिन में पूरे बारह लाख की खादी बेची।

"सूरत के धीरूभाई अपने पचास-साठ मित्र, रिश्तेदारों को लेकर पिंडवल आये। यहाँ अपने बच्चों का 'बर्थ-डे' अनोखे ढंग से मनाया। खिचड़ी-सब्जी का सादा भोजन खिलाया और इस निमित्त आदिवासी बहनों को खादी की २७ रुपये की ओढ़नी दस रूपये में दी। इस तरह करीब बीस हजार रुपये खर्च करके खादी-बिक्री को प्रोत्साहन दिया। बड़ौदा के शिमभाई ने भी अपनी बच्ची का जन्म दिन इसी तरह पिंडवल में मनाया।

इस तरह बूँद-बूँद से हमारा सरोवर भरा। इस समूह-यज्ञ में लगभग सवा सौ खादी-मित्रों ने हमारी मदद की। सच में, हजार हाथ जुड़े इसलिए यह काम हो सका। खादी तो खैर बिकी ही किंतु साथ ही सैकड़ों दिलों के जोड़ने का कार्य भी हुआ।

ऐसे एक खादी-मित्र खेडा जिले के शांदिलाल गांगरा ने अपनी भावनाएँ इस तरह व्यक्त की हैं–"यह तो पुण्य का व्यापार है। इसमें अनहद आनन्द, दूसरों के लिए कुछ कर सकने का परितोष जैसे अनोखे नफे की प्राप्ति है।"

अपनी पुण्य-कमाई के साथ दूसरों को भी पुण्य-कमाई की प्रेरणा दे सकना यह एक विरल शक्ति है, जो शुद्ध भक्तिभाव में से निपजती है। जो स्वयं अपनी आहूति देते हैं, उन्हें ही ऐसे उजले यज्ञ में अपना हविर्भाग देनेवाले अनेक सहायक मिल जाते हैं।

पिंडवल के काम का यह पहलू महत्त्वपूर्ण है। यहाँ के काम में हजारों हाथ लगे हैं। शुरू में साल-भर में दस-बीस हजार का खर्च होता था। अब सलाना खर्च पचीस-तीस लाख तक पहुँचा है। इस सारे खर्च को हजारों हाथ उठा रहे हैं। कोई सरकारी ग्रांट नहीं लेते, किसी एजेन्सी का आसरा भी नहीं है, लोगों के दान से सब खर्च चलता है। पिंडवल के सारे कार्य का संयोजन लोक-आधारित रहा है। उसका श्रेय कान्ताबहन को है, जिसकी विस्तृत बात आगे करेंगे। यहाँ तो इतना ही कि इस पुण्य-कार्य से हजारों हाथ एक-दूसरे से जुड़े हैं, यही इसकी विशेषता है। ऐसे कार्य करनेवाले कई ट्रस्ट हैं, किन्तु उनमें यह विशेषता कम ही दिखती है।

समाज की ओर से भी पिंडवल के कार्य का सम्मान होता रहा है। हरिः ॐ आश्रम के पूज्य मोटा ने काफी बरसों पहले नवनीतभाई को सुवर्ण चन्द्रक दिया था। रतिभाई गोंधिया स्थापित राजकोट के यंगमेन्स गांधियन एसोसिएशन की ओर से १९८६ में मानव सेवा और डाक्टरी सेवा के दो तथा १९८९ में खादी-काम का अशोक गोंधिया अवार्ड सर्वोदय परिवार ट्रस्ट को मिला है। जंगलों में बसने वाले उपेक्षित आदिवासियों के उत्थान के खातिर जो कुछ थोड़ा काम हो रहा है, उसे समाज की ओर से मान्यता मिलती रहती है यह खुशी की बात है।

आशोक गोंधिया अवार्ड समारंभ में झीणाभाई दरजी ने रतिभाई को लिखा था- "सर्वोदय परिवार ट्रस्ट का अभिनंदन हो, यह वाजिब है। यह संस्था गांधीजी के आदर्शो का आचरण करनेवाली है। उन्होंने जगह भी कैसी योग्य चुनी है। जहाँ से सब हारकर लौट गये, ऐसे दुर्गम इलाके में ये लोग प्रसिद्धि की चमक-दमक से दूर रह कर काम कर रहे हैं।"

गुजरात विद्यापीठ के विक्रमभाई सवाई ने अपना एम० ए० का थिसिस और भाद्रा बहन ने एम० फिल० का थिसिस सर्वोदय परिवार ट्रस्ट के कामों पर लिखा है।

गांधी परिवार के मूर्धन्य बुजुर्ग मनुभाई पंचोली ने अपनी 'गांधी मार्ग' पुस्तक बहनों को अर्पण की है: "अर्पण-सेवामूर्ति भगिनीयुग्म, हरविलासबहन तथा कान्ताबहन को।"

यह अवार्ड बगैरह तो समाज में बहनों के सेवाकार्य की और पिंडवल के कामों की जो सुगन्ध फैली है, उसके द्योतक हैं।

आज पिंडवल में सौ गाँवों के साठ-पैंसठ हजार आदिवासियों के सर्वांगीण विकास के लिए अनेक काम चल रहे हैं। हम उन लोगों के बीच रहते हैं। इसलिए हमारा उनसे रोजबरोज जीवन्त सम्पर्क रहता है। हम उनकी छोटी-बड़ी समस्याओं से वाकिफ होते हैं। लोग अपनी निजी पारिवारिक समस्याएँ लेकर हमारे पास आते हैं और गाँव के स्थानीय प्रश्नों की चर्चा भी करते हैं। कभी झगड़ा-टंटा करनेवालों से संघर्ष भी करना पड़ता है। अन्याय और भ्रष्टाचार के किस्सों में लोगों को जागृत और संगठित करके अन्याय का सामना करना पड़ता है। लोक-शिक्षा का कार्य चलता रहता है।

अन्याय, दादागिरी, गुंडागर्दी देखते ही कान्ताबहन का खून खौलने लगता है। वे इनका सामना किये बगैर नहीं रह सकतीं। पिंडवल में एक कुटुम्ब बड़ा ही मिजाजी था, बहुत ही दादागिरी करता था। उसका सामना करने में कान्ताबहन को मार भी खानी पड़ी थी। उस गुण्डे ने पेड़ की डाली से कान्ताबहन को इतना मारा कि कमर-पीठ पर नील पड़ गयी थी, पन्द्रह-बीस दिन काफी दर्द रहा।

दूसरे एक भाई थे सफेद-पोश ठग। अपने गाँव के सरपंच थे। राजनीति में भी उनका जोर था। दो-तीन ट्रक के मालिक थे। हमारे कवेलु गाँवों में पहुँचने का काम उस वर्ष उन्हें सौंपा था। उन्होंने एक पूरी ट्रक कवेलु हड़प कर लिये, कुछ कहें तो सुनते नहीं थे। अब ऐसे ही तो छोड़ नहीं सकते। इसलिए एक दिन कान्ताबहन, हरविलासबहन उनके घर जाकर बैठ गयीं। कवेलु के पूरे दाम लेकर ही यहाँ से उठेंगे।"

वह तो आगबबूला हो गया। बकझक करने लगा, तिस पर आरोप लगाया- "ट्रक किराये के तो मेरे पैसे निकलते है आपके पास।" फिर धमकियाँ देने लगा, डराने लगा, आक्षेप करने लगा: "आप मुझे पहचानती नहीं। राजपूत का बच्चा हूँ। आपका नामोनिशाँ मिटा दूँगा यहाँ से। बड़ी आयी हैं सेवा करनेवाली। सेवा के नाम पर मेवा खाना है। कल ही आदिवासियों की बड़ी सभा बुलाऊँगा। देखता हुँ, कैसे रहती हैं आप यहाँ।"

फिर भी बहनें तो दृढ़ता से शान्त बैठी रहीं: "आज कोई आड़ी-टेढ़ी बात नहीं। इस तरह गरीबों का पैसा किसी को हड़पने नहीं देंगे। आज तो कवेलु के पूरे दाम लेकर ही जायेंगे।"

घर में हलचल मच गयी। गाली बकने वाले पति को पत्नी अन्दर ले गयी। फिर पूरी रकम लेकर आयी और बहनों के हाथ में रखी। बहनें लौटने को हुई तब भी वह तो झुँझला रहा था-"आपको यहाँ से भगाया नहीं तो मेरा नाम नहीं।"

बाद में दस-बारह महीने उसने काफी ऊधम मचाया। वलसाड के कलेक्टर को, गांधीनगर के सरकारी महकमों में हमारे ट्रस्ट पर झूठे आरोप लगाकर गुमनाम पत्र लिखे। वहाँ से तपास करनेवाले आये। हमें जवाब देने पड़े। झूठ का भण्डा फोड़ करना पड़ा।

समाज के आज के वातावरण में यह सब तो अनिवार्य-सा ही है। उसके बिना कोई काम नहीं होता। हमने लोगों की शराब छुड़वाने का प्रयत्न किया। लोगों से व्यक्तिगत संकल्प करवाये, उसके प्रतीक स्वरूप एक माला गले में डाल कर प्रतिज्ञा लिवायी। फिर भी इस बुराई को जड़मूल से मिटाना कठिन है। इसे मिटाना हो तो सबसे पहले सड़ा हुआ बदबुदार काला गुड़, जिसे जानवर तक नहीं छूते, बाजार में बन्द होना चाहिए। यहाँ अधिकतर शराब उसी से बनाते हैं। हमने इसके लिए काफी प्रयत्न किया। ग्रामवासियों को संगठित किया। पुलिस की मदद से इस काले गुड़ के जत्थे जब्त करवाये। उसके लिए हरविलासबहन ने एक बार एक गाँव में आधी रात को ऐसा गुड़ बेचनेवाली दुकान पर छापा मारा था। उस समय तो इस इलाके में लोग सजग हो गये थे। काला गुड़ और शराब की खुलेआम बिक्री बन्द हुई थी। तीन-चार गाँवों में दारू पर अंकुश भी लगा। इस काम में पुलिस का सहयोग जरूरी है। लेकिन उनका सहयोग हमेशा नहीं मिलता। यदि सरकारी तन्त्र चाहे तो इस बंदी पर काफी अंकुश रख सकती है।

इस तरह इस इलाके के उपेक्षित, गरीब और अभावग्रस्त आदिवासी लोगों के जीवन के विविध पहलुओं से सबन्धित कई कार्य यहाँ इन पचीस वर्ष में हुए हैं। गौतम बुद्ध ने जैसा कहा है-उस तरह भूखे को प्रथम रोटी चाहिए-बाकी सब बाद में। प्रथम तो यहाँ के लोगों को जीवन की प्राथमिक जरूरतें मुहैया हो, इनका प्रयास रहा।

कान्ताबहन कहती हैं कि हम क्रान्ति के लिए प्रयत्न कर रहे हैं। किन्तु हमारे प्रयत्न सफल नहीं होते, तब तक हम अपना भोजन-पानी तो नहीं छोड़ देते। तो फिर इन लोगों से हम किस मुँह से कहें कि हमारी क्रान्ति सफल न हो, तब तक

आप इन्तजार करिये ! उनके जीवन की प्रथमिक जरूरतों तो आज ही पूरी करनी पड़ेगी। आजादी के इतने वर्ष बाद भी उनके सर पर ढंग की छत नहीं, खाने के लिए पर्याप्त अनाज नहीं ! अतः यह काम तो मानवता का तकाजा है। सरकार न भी समाज के सदस्य के नाते और संवेदनशील मानवता के नाते हम सबका अनिवार्य फर्ज है। हर घड़ी सरकार की ओर हाथ पसारते रहें और हम हाथ पर हाथ धरे बैठे रहें तो कैसे चलेगा ?

वैसे भी जनता के पुरूषार्थ से ऐसे काम होना ज्यादा अच्छा। हम सब सरकारी तन्त्र की दीर्घसूत्रता, नौकरशाही, रीति-रस्में, भ्रष्टाचार वगैरह से त्रस्त हैं। ऐसी हालत में उन पर क्या भरोसा करें। अपने पुरूषार्थ से अपनी नयी राह बनायें।

विकास की भी एक नयी स्वस्थ परम्परा बनानी है। उसके लिए ऐसे इलाके अनुकूल हैं। आधुनिक विकास के कई विनाशकारी प्रवाहों से अभी यह इलाका कुछ बचा है। इसलिए शायद अब तक यहाँ की जो उपेक्षा हुई है, वह इनके लिए वरदान रूप है। इस उपेक्षा के कारण यह इलाका विचार और वातावरण के अनेक प्रदूषण से मुक्त रह सका है, बाजारी और विकृत विकास के आक्रमण से बच सका है। कोरी स्लेट जैसा है यह। यदि हम यहाँ स्वस्थ और सही मानवीय विकास की नयी राह आँक सकें, तो सच्चे अर्थ में प्रगति साध्य होगी।

अन्य राज्यों की तुलना में गुजरात में आदिवासियों का प्रमाण अधिक है। देश की कुल आदिवासी प्रजा की दस प्रतिशत प्रजा गुजरात में बसी है। देश की कुल आबादी में आदिवासी सात प्रतिशत है। गुजरात की आबदी में ये चौदह प्रतिशत हैं। अर्थात हर सात गुजराती में एक आदिवासी है और इस धरमपुर तहसील की आबादी तो लगभग आदिवासियों की ही है। धरमपुर नगर को छोड़ दे तो यहाँ सौ में से नब्बे आदिवासी हैं। धरमपुर तहसील देश के गरीब से गरीब आदिवासियों का इलाका है।

ऐसे इस इलाके में पचीस वर्ष से लगातार काम चल रहा है। अभी तक लोक-संपर्क और लोकसेवा का काफी काम हुआ है। पूरे इलाके की समस्त प्रजा का बहुत प्रेम और विश्वास प्राप्त हुआ है। हमारा काम और हम सब अलग-अलग ढंग से उनके जीवन में मददगार हुए हैं। इस ढाई दशक में यहाँ के आदिवासीयों के जीवन में कई परिवर्तन हुए हैं। उसमें भीतर-बाहर के अनेक कारणों का हाथ है। उसमें सर्वोदय परिवार ट्रस्ट के विविध कार्यों का भी योगदान अवश्य रहा है।

सामाजिक परिवर्तन और चेतना-विकास एक लम्बी तथा सूक्ष्म प्रक्रिया है, इसलिए इतना ही कह सकते हैं कि बरसों से सुप्त आदिवासी-चेतना अब धीरे-धीरे

जाग रही है। जीवन की प्राथमिक आवश्यकताओं की पूर्ति हो रही है। खादी-काम वगैरह के द्वारा स्थानिक रोजगारी मिलने से स्व-निर्भरता बढ़ी है। विविध रचनात्मक-सांस्कृति प्रवृतियों के कारण चेतना-जागृत हो रही है। ये सब कार्य आदिवासियों के उत्थान में योगदान दे रहे हैं। हालाँकि उनके सर्वांगीण उत्कर्ष के लिए अभी बहुत कुछ करना होगा। तथापि उसकी एक ठोस भूमिका जरूर तैयार हुई है।

चौदह वर्ष बड़ौदा शहर में काम करने के बाद, दोनों बहनें अठारह वर्ष से इस तरह पिंडवल में रहकर काम कर रही हैं। बड़ौदा के काम के दौरान इनकी स्वस्थ समर्पित समाज सेविकाओं की छवि बनी थी, वह यहाँ और अधिक उजली हुई है। उस समय मुख्यतः विचार-प्रसार और आंदोलन का काम किया, पिंडवल में मुख्यतः सघन सेवा का कार्य किया। बहनें पिंडवल के काम के साथ-साथ गुजरात तथा पूरे देश के सर्वोदय कार्य से भी जुड़ी रही हैं। गुजरात सर्वोदय मण्डल के कामों में हिस्सा लेती हैं। स्त्री शक्ति जागृति के काम का संचालन करती हैं। 'भूमिपुत्र' में लेखन-कार्य करती हैं। हरविलासबहन १९८० से कस्तूरबा गांधी राष्ट्रीय स्मारक ट्रस्ट की ट्रस्टी हैं। बीच में तीन वर्ष उसकी उपाध्यक्षा भी रहीं । इन विविध जिम्मेदारियों को निभाते हुए पिंडवल में अखण्ड सेवा यज्ञ चलाती रही हैं।

बड़ौदा में थी तब एक बार विनोबाजी से पत्र में पूछा था: "दूसरों का भला करने की इच्छा सदैव बनी रहे तो क्या वह भी एक वासना मानी जायेगी? ऐसी शुभ और शिवमंगलमयी वासनाओं का जीवन में क्या स्थान है? और आत्मा की मुक्ति की दृष्टि से उनकी मर्यादा क्या है?"

तब विनोबाजी ने कहा था: "हरि के जन तो मुक्ति न माँगे, यह तो जानती हो। मुक्ति तो आत्मा का स्वभाव है। वासना निःशेष होने पर ही उसका अनुभव हो सकता है। **सद्वासनाएँ छोड़ने की नहीं होतीं। अहंकार मुक्ति से वे स्वयमेव छूट जाती हैं।**"

आज तो अब ऐसा कोई प्रश्न रहा नहीं। लोक कल्याणकारी सत्कार्य में आकंठ डूबी हैं। उन्हें छोड़ने का कोई सवाल ही नहीं। यह वासना बन जायेगी या मुक्ति के आड़े बाधारूप बनेगी, ऐसी कोई उलझन नहीं रही। दरिद्रनारायण की उपासना में वे लीन हो गयी हैं।

आज उनके पास गांधी का दिया एक कवच है, एक ताबीज है। गांधी कह गये हैं—

"मै आपको एक कवच या ताबीज देता हूँ। कभी शंका हो या अहम् पीड़ित करे तो इस उपाय को आजमायें। आपने जो गरीब से गरीब और लाचार से लाचार मनुष्य देखा हो, उसका चेहरा याद करके स्वयं से पूछें कि –"तुम जो कदम उठाने जा रहे हो, वह इस मनुष्य के लिए उपयोगी है? क्या इससे उसको कोई लाभ मिलेगा? इससे क्या वह अपने जीवन और भाग्य पर पुनः काबू पा सकेगा? दूसरे शब्दों में कहें तो, क्या इससे हमारे देश के करोड़ों भूखे और क्षुब्ध आत्मावाले लोगों को स्वराज्य मिलेगा? तब आप देखेंगे कि आपकी शंकाएँ और अहंकार गायब हो जायेगा।"

इसलिए आज वे जो पिंडवल के कामों में डूबी हैं, वह उनके लिए दरिद्रनारायण की सेवा है, ईश्वर की उपासना है।

कान्ताबहन के इस उपासनामय कर्मयोग में वेग, व्यापकता और लक्ष्यबेध कायम रहे हैं। हाँलाकि इनके कारण कभी गलतफहमी भी होती है कि यह तो आसक्ति है, मोह है, फलाशा है। अतः कान्ताबहन ने पहले एक बार बाबा से पूछा था:

"फलत्याग की वृत्ति से कर्म करना चाहिए, इसे जानते हुए जो कर्म कर रहे हैं, उसके परिणाम की ओर से दृष्टि बिलकुल हटा तो नहीं सकते, तो क्या यह आसक्ति है? जो काम करते हों वह लोक-कल्याण के लिए जरूरी है, ऐसा विश्वास पक्का हो और इस कारण उसे जल्दी-जल्दी करना चाहें तो क्या यह हमारा मोह माना जायेगा? जिसे अपना स्वधर्म माना, उसमें डूब जाना, उसमें अपनी शक्ति की हर बूँद उँड़ेल देना क्या जरूरी नहीं? हर काम में तीव्रता और सावधानी अनिवार्य नहीं?"

जवाब में विनोबाजी ने लिखा: "लोक-कल्याण का काम करते हुए आलस न हो, सावधानतापूर्वक वह किया जाय। वह जल्दी सिद्ध हो, इसके लिए अन्दर में छटपटाहट हो। यह सब अच्छा है। लेकिन जल्दी होता हुआ दीखता नहीं, तो उससे निराशा नहीं होनी चाहिए। उत्साह बना रहना चाहिए। काम में कोई गलती होती हो, जिसकी वजह से देरी हुई हो तो उसका संशोधन होना चहिए और चित्त में समाधान रहना चाहिए।"

अक्सर अनासक्ति के नाम पर आलस पुष्ट होता है, अकुशलता पुष्ट होती है। अज्ञान को ढँकने का प्रयास होता है, एकाग्रता के अभाव की ओर दुर्लक्ष होता है, अपनी ढिलाई और सुस्ती को स्वस्थता का आवरण चढ़ाकर महान् बनाने की

कोशिश होती है। ऐसा आत्मवंचना से बचने के लिए उपरोक्त प्रश्नोत्तरी बोधदायक है।

कान्ताबहन पूरी निष्ठा से पिंडवल के काम में ओतःप्रोत हो गयी हैं। उनका चिन्तन सर्वस्व उसी में लगा हैं। शक्ति का कतरा-कतरा उसके लिए खर्च करती हैं। इस दरिद्रनारायण की उपासना से उन्हें आत्म-समाधान है।

एक बार उन्होंने विनोबाजी से पूछा था न!– "आजकल कभी-कभी सपना आता है कि क्या मुझसे ईंश्वर का काम होगा? मुझसे ईश्वर का काम होगा?"

मुझे लगता है कि आज उनके मन में ऐसी प्रतीति जरूर हो गयी है कि यह सहज-प्राप्त सेवा-यज्ञ ईश्वरदत्त है, उनका अपना स्वधर्म है, अपनी ईश्वर-उपासना है। बड़ौदा का काल **साधनामय कर्मयोगी** का था, पिंडवल का **समाधानपूर्ण कर्मयोग** का है। साधना का एक निश्चित शिखर सर करने के बाद आगे का आरोहण मुक्त भ्रमण जैसा होता है, राकेट जलकर झड़ जाने के बाद भ्रमण कक्ष में स्थिर हुए आकाशयान जैसा होता है। ●

१३
बृहद् परिवार

कोई मुझे चन्दा इकट्ठा करन को कहे तो मेरी साँस ही रुक जाती है। किसी से दान माँगने के लिए जबान ही नहीं खुलती। कान्ताबहन के लिए यह काम सहज है। बड़ी सहजता से वे किसी से भी दान माँग सकती हैं और लोग उन्हें सहजता से देते भी हैं।

जैसा हमने पहले देखा, चन्दा इकट्ठा करने का काम १९६२ में सर्वोदय सम्मेलन के निमित्त से शुरू हुआ था। उस समय उनकी इस विशेष शक्ति का परिचय मिला और फिर बहुत विकसित हुई। धीरे-धीरे यह उनका एक प्रमुख काम बन गया। इस काम में वे निपुणता प्राप्त करती गयीं। अन्य कामों की तरह इसे भी पूर्ण एकाग्रता से, सातत्य से, पूरी शक्ति से भक्ति भाव के साथ करती रही हैं।

विनोबाजी ने भी इस बारे में अपनी खुशी व्यक्त की थी :

"न प्रभाव से, न दबाव से; किन्तु केवल भावना और भक्तिपूर्वक विचार समझाकर माँगा गया तथा दिया गया, यह मुझे बहुत अच्छा लगा।"

विनोबाजी ने शुरू से हमें शिक्षा दी थी कि हमारा काम सरकार या एजेन्सी आधारित नहीं, बल्कि लोकाधारित हो। गुजरात सर्वोदय मण्डल के कार्य इसी तरह चलाते आये हैं। किन्तु पिंडवल के कार्य का स्वरूप जरा भिन्न है। ऐसे काम तो अधिकतर सरकारी ग्राण्ट और सरकारी योजनाओं द्वारा चलाये जाते हैं। किन्तु कान्ताबहन ने पिंडवल के काम भी लोकाधारित ही रखे हैं। संस्था-आधारित न रहे, कार्यकर्ता संस्था-आधारित न रहे तो अच्छा, यह बात उनके मन में बैठ गयी है, इसके लिए उन्हें सदैव अनेक कष्ट भी उठाने पड़े हैं।

साधारणतः किसी बड़ी रकम के दान से ट्रस्ट की स्थापना होती है। **सर्वोदय परिवार ट्रस्ट** की कहानी अलग है। इसकी स्थापना के समय जब सूरत में रजिस्टर्ड करवाने गये तो चैरिटी कमिश्नर ने कहा, कुछ फण्ड तो चाहिए। इसलिए स्थानीय

मित्र जयंत लापसीवाला के सौ रुपये के दान से ट्रस्ट का रजिस्ट्रेशन हुआ। आज ट्रस्ट के हस्तक सालभर में पचीस-तीस लाख का काम होता है, यह सब लोक-आधार से होता है। सैकड़ों दाताओं के आधार से सारे काम चलते हैं। १९९१-९२ के वर्ष में कुल साढ़े सत्ताइस लाख रुपयों का दान १३०७ दाताओं से प्राप्त हुआ।

रतिभाई गोंधिया ने एक पत्र में सच ही लिखा था कि, "हर साल इतना विशाल फण्ड, इतने सारे लोगों से शायद ही किसी और को मिलता होगा। ऐसा और कोई ट्रस्ट मेरी जानकारी में नहीं और इस रकम का जिस तरह सीधे लोक-कल्याण के लिए उपयोग होता है, ऐसा काम भी कम ही देखा है।"

किन्तु यह सब अपने तईं नहीं हो जाता, कड़ी मेहनत का यह परिणाम है। कान्ताबहन कहती हैं :

"विनोबाजी की लोकाधारवाली बात मन में जम गयी थी। इसलिए मित्र-संबन्धी, रिश्तेदार, बड़े-छोटे सब से कहती कि इस काम के लिए कुछ न कुछ नियमित दीजिए। किसी ने यदि वादा किया तो पत्र द्वारा उन्हें याद करवाती। दुबारा मिलें तो फिर विनती करती। कुछ लोग भूल जाते, किसी से पैसा छूटता नहीं, किसी को और कोई खर्च आ जाता, उन्हें बार-बार समझाना पड़ता। कोई दलील करते, 'हम टैक्स भरते हैं।' मैं उन्हें समझाती कि वह तो अनिवार्य ही है। किन्तु दान तो स्वेच्छा से करें तो कल्याण होता है। कई लोग पूछते, कब तक देते रहें। मैं कहती, जब तक हम भोजन करते रहते हैं, तब तक देते रहें। बस, तरह-तरह से विचार समझाती रहती हूँ, समझाती रहती हूँ, वरना ईश्वर मुझे पूछेगा तूने पूरे प्रयत्न क्यों नहीं किये?"

विविध अनुभव होते हैं कुछ खट्टे, कुछ मीठे। एक बार बम्बई में एक सज्जन बड़े गरम हो गये: "जिसे देखो चन्दा लेने निकल पड़ते हैं। सुबह हुई नहीं कि आ धमके। इतने चन्दा का क्या होता है, भगवान ही जाने। हम किस-किस को देते रहें? हमारे यहाँ पैसों के पेड़ नहीं लगे हैं। गरीब तो हमेशा गरीब ही रहेंगे न। मेहनत तो करनी नहीं।" वगैरह—

बहनें उनकी बात स्वस्थता से सुनती रहीं और शान्ति से जवाब देती रहीं, इसे देखकर साथ आये हुए छोटुभाई गालियाकोटवाला बोले :

"पुराने जमाने में ब्राह्मण कंधे पर झोला लटकाये घूमते रहते थे। उसी तरह

आप लोग भी इनकी अंट-शंट बातों का बुरा माने बगैर, बिना थके-हारे घूमती रहती हैं। ईश्वर जरूर आपको यश देगा।''

आज सालभर में बारह सौ-तेरह सौ दाता दान देते हैं। उनमें हरएक के साथ पत्र द्वारा संपर्क रखते हैं। वर्ष पूरा होते तुरन्त ही पत्र रवाना होते हैं—''पिछले वर्ष का अहवाल साथ है। आपने गत वर्ष रु०... दिये थे। इस वर्ष भी आपका पूरा सहयोग मिलेगा, ऐसी श्रद्धा है।''

ऐसी सतर्कता और नियमितता देखकर हरिः ॐ आश्रम के नन्दुभाई ने लिखा: ''आपके यादपत्र से प्रसन्न हुआ। ट्रस्ट के व्यवस्थापक आपकी तरह दक्ष, सतर्क और फिक्र करनेवाले हों तो ट्रस्ट जगमगा उठता है। कोई सहायता का वचन दे तो उसकी नोंध रखें, फिर उस तारीख को याद करवायें, ऐसी व्यवस्थित पद्धति ट्रस्ट के लिए उपयोगी और आवश्यक है। इसलिए आपका यादपत्र पाकर खुशी हुई।''

तुरन्त जवाब न मिले तो दूसरी बार, तीसरी बार याद दिलाने में कोई आलस्य नहीं करतीं। ऐसे ही एक रिमाइन्डर की कद्र करते हुए बम्बई से होमी दस्तूर ने लिखा : ''मैं तो आफरीन हूँ आप पर। आप जैसे सेवा के भगवाधारी अपना ध्येय छोड़ते नहीं और निश्चित मार्ग पर चलते रहते हैं सारे अवरोधों को लाँघ कर। मैं आपकी भावना और दृढ़ता की बहुत कद्र करता हूँ। सच्चे सेवा कार्यों के लिए जिस डिवोशन, डिटरमिनेशन, सतर्कता और आयर्न विल पावर की जरूरत होती है, आप उसकी पावर हाउस—ऊर्जा केन्द्र हैं।''

बहुत से दाता ऐसे हैं जिनसे रूबरू मिलना कभी नहीं हो पाया। किसी से सुनकर या कहीं पढ़कर वे दान भेजते रहते हैं। हम हर दाता को विनती करते हैं कि आप अपने शुभेच्छुक मित्रों को भी दान की प्रेरणा दें। इस तरह एक दीप से दूसरे दीप भी प्रकट होते रहते हैं। फिर एक बार यदि रिश्ता बँध जाता है तो हम संपर्क बनाये रखते हैं।

जैसे-जैसे काम की सुगन्ध फैलती गयी, वैसे-वैसे हमसे जुड़े लोग दूसरों को भी इस पुण्य-कार्य की बात कहते हैं। बबलभाई मेहता कभी किसी से कुछ न कहते, उनका स्वभाव ही अलग था। किन्तु उनके मन में भी इस सेवायज्ञ के लिए बहुत प्रेम था। उनकी प्रेरणा से सुरेन्द्रनगर के रसिकभाई अपने तईं आकर एक लाख रुपये दे गये थे।

एक इन्जीनियर पिंडवल पहुँचे । वहाँ का सब काम देखा। फिर बोले :

"मेरे पिताजी हाल ही में गुजरे हैं। हम तो साधारण स्थिति के हैं। किन्तु वे अपनी दस हजार की बचत किसी शहर में नहीं, किन्तु किसी ऐसी जगह देने के लिए कह गये हैं, जहाँ पहुँचना दूभर हो। हमने आपकी संस्था के बारे में सुना, इसलिए देखने आये हैं। इतना कहकर वे लौट गये। कुछ ही दिनों में चौदह हजार रुपयों के चेक के साथ पत्र आया –

"ऐसे जंगल के इलाके में आपका काम देखकर हमें बहुत खुशी हुई। इसलिए पिताजी की बचत में हमारे चार जोड़कर चौदह हजार भेजे हैं।"

अतुल में नेत्रयज्ञ चल रहा था। सेवंतीलाल शाह उसके कर्ताधर्ता थे। उनके सूरत के मित्र सुभाषभाई और धीरूभाई उसमें कुछ दान देना चाहते थे। किन्तु सेवंतीभाई ने उनसे कहा, यहाँ नहीं, दान देने के लिए अधिक पात्र स्थान मैं दिखाता हूँ। मैं स्वयं नजरों से देख आया हूँ। वे दोनों को लेकर पिंडवल आये। सब देखा, बैठे, बातचीत की। सुभाषभाई की इच्छा थी कि यहाँ के लोगों को कम्बल मुफ्त बाँटें। हमने कहा हम मुफ्त में विश्वास नहीं करते। उसके बदले सस्ते में दीजिए, खादी की किसी वस्तु पर सबसिडी दीजिए। उन्हें भी बात पसन्द आयी। बाद में तो दोनों पिंडवल के काम में काफी रुचि लेने लगे। काफी दान भी देते। वह बच्चों के जन्मदिनवाली बात इन्हीं धीरूभाई की थी।

एक दिन बम्बई से कार में एक परिवार आया। पति-पत्नी और दो बच्चे। रेखा गुजराती, पति भावनभाई सिंधी। रेखा 'भूमिपुत्र' पढ़ती थी और पिंडवल के बारे में थोड़ा-बहुत जानती थीं। पति भी इन सब कामों में रुचि लें, इसलिए उन्हें यहाँ खींच लायी थीं। घूमकर सब देखा। पति ने दस हजार दिये। कार में बैठते-बैठते रेखाबहन अत्यन्त भावपूर्वक बोलीं, "आज मेरी बदरी-केदार की यात्रा पूरी हुई।" फिर तो इस परिवार से निकट संबन्ध जुड़ गया, वे पिंडवल के काम में काफी मदद करते रहे हैं।

एक दिन एक पंजाबी युगल यहाँ पहुँचा। पचीस-तीस की उम्र रही होगी। भयंकर गर्मी के दिन थे। बम्बई से ट्रेन में वलसाड होकर धरमपुर पहुँचे। पूछताछ की तो पता चला कि अब अगली बस शाम को ही मिलेगी। उन्हें तो दूसरे दिन लौटना था। पूछा, "चलकर जा सकते हैं?" लोगों ने कहा, बिलकुल निर्जन रास्ता है, ११ किलोमीटर का दो हजार फीट ऊँचा पहाड़ चढ़ना होगा, ऐसा साहस न करें। किन्तु उन दोनों ने चलना शुरू किया। चिलचिलाती धूप में ठीक दोपहर एक बजे पैदल पिंडवल पहुँचे। दोनों के चेहरे टमाटर से लाल हो गये थे। वहाँ पहुँचकर

भी आराम या भोजन का झमेला नहीं। बोले, भोजन तो रात को करेंगे। अभी तो चाय पीकर यहाँ का काम देखने चलेंगे। आसपास के गाँवों में भी ले जा सकें तो अच्छा होगा।

उन्हें खपरैल-वितरणवाले एक गाँव में ले गये। और भी सब घूमकर देखा। उन्हें बहुत ही अच्छा लगा। हमने पूछा, ''आपको हमारे काम की जानकारी कैसे मिली?''

उन्होंने अपनी बात कही : ''हम अमेरिका में रहते हैं। डा० विक्रम कामदार हमारे मित्र हैं। उन्होंने अपनी बेटी की बर्थ-डे-पार्टी कार्ड में छपाया था कि 'मेरी बेटी के लिए कोई भेंट न लायें। उसके बदले में एक ऐसा उम्दा कार्य चल रहा है, उसमें कुछ देना हो तो दें। हम इकट्ठा करके वहाँ भेजेंगे।' तब हमने भी इस काम के लिए कुछ दिया था। अभी हम भारत आये, तब स्वयं देखने यहाँ पहुँच गये।''

तीन हजार देकर गये। बाद में पाँच वर्ष तक भेजते रहे। आजकल कहीं खो गये हैं। चिट्ठी-पत्री भी नहीं। अब उन्हें ढूँढ़ें भी तो कहाँ? दोनों घुमक्कड़ हैं। कहते थे कि छह महीने व्यापार करते हैं, दूसरे छह महीने उनका पार्टनर व्यापार सँभालता है और तब वे दोनों दुनिया के भिन्न-भिन्न देशों में घूमते रहते हैं। उनका नाम है अनिल कश्यप।

कितने-कितने और कहाँ-कहाँ के लोगों की शुभकामना और सद्भावना पिंडवल के काम के साथ जुड़ी है। पैसा मिलता है और सौ, हजार, लाख में उसकी गिनती भी होती है। परन्तु मानव हृदय की यह भावना तो अमूल्य है।

कई दाता बड़ी उम्र के हैं। उनकी भावना है कि ऐसे काम में पैसों की कमी नहीं पड़नी चाहिए। इसलिए वे न भी रहें, तब भी संस्था को उनकी ओर से दान मिलता रहे। बम्बई के मूलजी काका अपनी विल में लिख गये हैं कि संस्था को हर वर्ष दो हजार रुपये भेजें। उनके ट्रस्टी भेजते रहते हैं।

विलेपार्ले के निवासी वयोवृद्ध बुजुर्ग लालभाई का पत्र आया—''बहन, मैं अस्सी का हुआ। भगवान कब उठा लें पता नहीं। किन्तु मैंने विल में लिख दिया है। सन्तानों को भी कह दिया है कि आपको हर वर्ष पाँच हजार भेजते रहें।'' आज भी यह रकम मिलती है।

नवसारी के जनार्दनकाका ने पुत्र-पौत्रों को हिस्सा देने के बाद पिंडवल के काम के लिए एक लाख अलग रखे हैं। उसके ब्याज के बारह हजार हर वर्ष पिंडवल पहुँचते रहें, ऐसी व्यवस्था उन्होंने कर रखी है।

एडवोकेट अनन्तराय पारेख हर साल मदद भेजते थे। एक बार देरी हुई। पिंडवल से यादपत्र पहुँचा तो जवाब में उनका नहीं, उनके बेटे का पत्र आया–"पिताजी हार्ट अटैक में गये। चार महीने हो गये। लेकिन मैं जानता हूँ कि पिताजी को आपकी संस्था को मदद भेजना प्रिय था, इसलिए मैं मदद चालू रखूँगा।"

कान्ताबहन ने दाताओं के साथ जो हार्दिक संपर्क बनाये रखा है, उसी की यह फलश्रुति है। सारे धर्मों की दुआएँ भी उन्हें मिली हैं। दाताओं में हिन्दू, पारसी, खिस्ती, मुस्लिम सभी हैं।

अहमदाबाद के एडवोकेट केरशी शेठ ने **'गुजरात-मित्र'** में पिंडवल के काम के विषय में नरेश भट्ट का लेख पढ़कर दस हजार भेजे। कान्ताबहन ने आभार मानते हुए उन्हें लिखा : "हमारे इस लंगोटीधारी आदिवासी को अपने ही परिवार का मानकर हर वर्ष उसके लिए कुछ करेंगे तो अच्छा होगा। विनोबा कहते–"नित्य स्नान वैसे नित्य दान।"

तुरन्त केरशीभाई का जवाब आया : "हर वर्ष ढाई हज़ार भेजता रहूँगा।"

कान्ताबहन के मन में आया, इनसे एक बार भेंट तो करूँ। जब अहमदाबाद गयीं, केरशीभाई से मिलने पहुँची। उन्हें बहुत ही खुशी हुई। हलुआ बनाकर खिलाया, बोले, "अरे बहना! तू कितना उम्दा काम करती है, मैं जानता हूँ। खोदायजी की कृपा तुझ पर बरसती रहे।" कान्ताबहन अत्यन्त गद्‌गद हो गयीं।

सूरत के रोटरी क्लब में एक बार कान्ताबहन का भाषण सुनने के बाद से दावर कावसजी मोदी अपने ट्रस्ट से पिंडवल के लिए नियमित दान भेजते हैं।

और सूरत की बानुबहन। **'युवा दर्शन'** में पिंडवल के काम के बारे में पढ़ा तब से हर साल मदद भेजती हैं। वे निवृत्त शिक्षिका हैं। प्रेम से लिखती हैं, "जब भी सूरत आओ, मेरे घर आना।"

एक बार गये। बानुबहन ने कान्ताबहन को गले लगा लिया। बोली, "तू आज रात यहीं रुक जा। साथ-साथ खाना खायेंगे।"

कान्ताबहन 'फिर कभी' 'फिर कभी' ऐसा कहती रही तो बोली : "एकदम शुद्ध बनाऊँगी हाँ! माँस-मटन-मच्छी कुछ नहीं। सब साफ, शुद्ध" –कान्ताबहन की आँखें भर आयीं।

वलसाड के मोटर गैरज के एक ईसाई मैकेनिक हैं। कान्ताबहन ने उनसे भी बताया पिंडवल के बारे में। उन्होंने भी बड़े प्रेम से दान दिया।

बम्बई की फातिमा बनातवाला नाम की एक बहन नियमित दान भेजती हैं। रूबरू तो कभी मिले नहीं। कहीं पढ़ा-सुना इसलिए भेजने लगी।

अहमदाबाद में उन दिनों भयंकर कौमी दंगे चल रहे थे। ऐसे समय में वहाँ से एक मनीआर्डर आया पचीस रुपये का। साथ में लिखा था: "बहुत-बहुत दुआओं के साथ। **'गुजरात-समाचार'** में आपके कार्य के विषय में सुस्मिता मेढ का लेख पढ़ा। बहुत आनन्द हुआ। रोजा के पवित्र दिनों में मेरा यह छोटा-सा दान स्वीकारें।" बाद में भी कई वर्षों तक इन मुसलमान-चाचा के मनीआर्डर आते रहे।

बहनों ने 'भूमिपुत्र' में खपरैल-प्रोजेक्ट के बारे में एक लेख लिखा था, "मेरा भी एक घर होता!" इसे पढ़कर पूना से पाँच हजार के चेक के साथ एक भावपूर्ण पत्र आया। नीचे दस्तखत थे-"शब्बीर दिलेर के दुआ सलाम!" फिर तो नियमित रकम आती रही। ये खादी बिक्री भी करते हैं। एक बार अचानक पिंडवल पहुँच गये किन्तु बहनें बाहर गयी हुई थीं। अन्त में चार-पाँच वर्ष के बाद अभी १९९२ दिसम्बर में, ट्रेन से गुजर रहे थे तब बड़ौदा स्टेशन पर घड़ीभर के लिए भेंट हुई।

शब्बीरभाई स्वनाम धन्य दिलेर व्यक्ति हैं। उन्हें शेरो-शायरी से बड़ी मुहब्बत है। हर पत्र में कुछ प्रसाद होता ही है। ऐसी कुछ पंक्तियाँ कान्ताबहन को बहुत प्रिय लगीं। वे उन्हें लोगों को बातचीत में तथा बड़ी-बड़ी सभाओं में भी सुनाती हैं।

कलकल बहते जाते पल, कल ना भी मिलें
होकर आर्द्र फिर से, फिर से सूखते जायें
उगते सूरज का रंग है अभी तो हाथों में
मुट्ठी भर-भर के धूप बाँटते जायें-

कान्ताबहन की दिली उमंग है, ऐसी धूप उड़ाते जाने की, बाँटने की, जो स्वयं को भाये, उसे दूसरों को परोसने की। मानव जैसा मानव मात्र अपने में या अपने बाल-बच्चों तक ही सीमित न रहे, समाज को भी अपना माने। एक-दूसरे के सहायरूप होने की, समाज की खातिर कुछ न कुछ देने की भावना समाज में खिले। हमारे पास अगर कुछ है तो उसमें से देना भी चाहिए न? देने से हमारी खुशी और भी बढ़ेगी। कान्ताबहन अपनी ऐसी **उमंग का रंग** दाताओं पर भी चढ़ा देती हैं। इसलिए पैसे तो मिलते हैं, साथ ही उनमें भावनाएँ भी जुड़ी होती हैं। अधिकतर दाताओं के मन में पिंडवल के काम के लिए हार्दिक स्नेह है। इस तरह

कान्ताबहन बाहर दूर-दूर बसे करीब हजार कुटुम्बों को यहाँ सुदूर जंगलों में बसे अनेक कुटुम्बों के साथ भावनात्मक रूप से जोड़ सकी हैं।

कान्ताबहन कहती हैं, "आज अधिकतर दान किसे दिया जाता है? तख्ती या तिथि के लिए दान देते हैं। जाति, कौम या वतन के नाम पर दान देते हैं। मेरी जातिवाला, मेरे धर्मवाला, मेरे वतनवाला—ऐसा देख-देखकर दान देते हैं। किन्तु इस आदिवासी का कोई चाचा या भतीजा, मामा या भानजा अथवा कोई जातिवाला या वतनवाला यहाँ से बाहर कहीं नहीं बसा है, इसलिए इसे अपना निज का मानकर इसको भी कुछ दीजिए।"

ऐसी ही भावना से कान्ताबहन ने एक बृहद् परिवार बनाया है। उसमें छोटे-बड़े सब शामिल हैं। गुजरात के तत्कालीन राज्यपाल रामकृष्ण त्रिवेदी खपरैल-वितरण-कार्यक्रम के निमित्त पिंडवल आये थे। कान्ताबहन ने उनसे भी कहा कि आप व्यक्तिगत नाते हमारे ट्रस्ट के मित्र बनें। उन्होंने सहर्ष स्वीकार किया। जब तक गुजरात में थे, अपना योगदान भेजते रहे। निवृत्त होने के बाद लखनऊ गये, वहाँ से भी रकम भेजते रहे हैं। केरल की लक्ष्मी मेनन पंडित नेहरू के मंत्रिमंडल में थीं, फिर कई वर्ष कस्तूरबा ट्रस्ट की अध्यक्षा रहीं, वे भी कान्ताबहन के दातापरिवार की सदस्या हैं। झीणाभाई दर्जी और बालुभाई जशभाई पटेल राजनीति में भले ही भिन्न-भिन्न पक्ष में हों, किन्तु पिंडवल के काम में तो कान्ताबहन के पक्ष में हैं। गुजरात के अग्रगण्य साहित्यकार भी अपना हविर्भाग इस सेवा यज्ञ में अर्पित करते रहते हैं।

भावनगर के डा० मुकुन्द देसाई अपना हिस्सा तो देते ही हैं, अपने मित्रों से भी इकट्ठा करके भेजते हैं। उनकी बेटी की शादी थी। उनके मन में भी ऐसी सद्भावना जागी कि शादी में जो शगुन की रकम भेंट आयी, उसे पिंडवल के आदिवासियों को भेंट में दूँ। पिंडवल के काम की एक परिचय-पत्रिका स्वयं छपवाकर शादी में मेहमानों को बाँटी।

बिलासबहन धनानी इंग्लैंड में रहती हैं। हर साल स्वयं बड़ी रकम भेजती हैं। लेकिन यह रंग तो दूसरों पर भी चढ़ाना है न! वहाँ बहनों का एक सत्संग मण्डल चलता है। उन बहनों को पूरी बात समझायी। इसलिए लंदन की उस श्राविका सत्संग मण्डल की बहनें भी दरिद्रनारायण की सेवा-उपासना के इस सत्संग में उत्साहपूर्वक हिस्सा ले रही हैं।

इन सबके मन में पक्का भरोसा है कि उनके द्वारा दिया हुआ एक भी पैसा

व्यर्थ नहीं जायेगा, सीधे गरीब आदिवासी तक पहुँचेगा तथा उसका संपूर्ण सदुपयोग होगा। भाई कूपमंडूक ने तो बम्बई के **'जन्मभूमि-प्रवासी'** में लेख लिखकर ऐसा विश्वास दिलाया है कि "आपके पैसे महक न उठें तो मुझे कहना।"

कान्ताबहन सालाना रिपोर्ट में कुल खर्च में व्यवस्था खर्च कितना हुआ, उसका आँकड़ा भी जरूर देती हैं। पहले वह पाँच-सात प्रतिशत होता था, अब करीब नौ प्रतिशत होता है। अर्थात् ट्रस्ट को दाता से प्राप्त एक रुपये में से ९०-९५ पैसा सीधे जिनके लिए दान दिया जाता है, उन गरीबों तक पहुँचा है।

इससे दान देनेवालों को पूर्ण संतोष होता है। छोटे-बड़े अनेक अपने तईं कान्ताबहन की झोली भरते रहते हैं। इस झोली में रकम का नहीं, भावना का मूल्य है। बिलकुल अनजान और अकिंचन लोगों के भावनापूर्ण प्रसाद से यह झोली भरी भी रहती है, भारी भी रहती है।

मलाड के निवासी एक पान-बीड़ी के ठेलेवाले ने हरिश्चन्द्र दवे का लेख पढ़कर अपना छोटा-सा दान भेजा। गांधीनगर से एक बहन का तीस-चालीस रुपये का मनीआर्डर हर महीने नियमित आता। हम इन कीर्तिबहन से एक बार खास मिलने गये। उनसे कहा: "बहन! सालभर का चेक साथ भेजें तो चलेगा। इस तरह हर महीने मनीआर्डर भेजने में आपको तकलीफ उठानी पड़ती है।"

कीर्तिबहन बोली, "मैं तो बैंक में साधारण नौकरी करती हूँ। रोज सब्जी खरीदने या छोटी-मोटी चीजें लेने जाती हूँ, तब एक-डेढ़ रुपया अलग रख देती हूँ। पूरे महीने में जो इकट्ठा होता है, भेज देती हूँ। बारह महीने में एक बार भेजने का सोचूँ तो बीच में ही खर्च हो जाये।"

बम्बई की नलिनीबहन लायजावाला हर वर्ष दस हजार देती हैं। किन्तु एक शर्त है। उनके घर जायें, भोजन करें, पिंडवल की बातें सुनायें और आदिवासियों के लिए दक्षिणा ले जायें। इस तरह एक बार खाना-वाना खाकर दक्षिणा लेकर कान्ताबहन उठ रही थीं, कि उनके घर काम करनेवाली जनाबाई संकोच से बोली, "बहन, मेरी मदद लेंगी?"

"हाँ, हाँ, क्यों नहीं?

वह दौड़कर कोठरी में रखी अपनी पोटली ले आयी। पोटली औंधी की तो उसमें से दस रुपये पैंसठ पैसे चिल्लर निकले। कान्ताबहन ने उन्हें ग्यारह रुपये की रसीद फाड़ दी और गद्‌गद होकर बोल पड़ीं—सत्यभामा के मनभर गहनों से जो तुल न सके, वे भगवान रुक्मिणी के एक तुलसीपत्र से तुल गये।"

नलिनीबहन के पास बैठकर कान्ताबहन पिंडवल की जो बातें करतीं, वह घर का काम करते-करते जनाबाई सुनती रहती। इसलिए उसके मन में भावना जागी कि अपने से गरीब-दु:खी के लिए पत्र-पुष्प की भेंट करूँ। दूसरे वर्ष उसकी चंची से निकले छह रुपये कान्ताबहन की झोली को छलका गये। नलिनीबहन की अपंग बेटी की सेवा-सुश्रूषा करनेवाली ईसाई नर्स भी हर बार बिना चूके सौ रुपये जरूर देती है।

कान्ताबहन चाहती हैं कि **'नित्य स्नान-नित्य दान'** वाली विनोबा की बात समाज में प्रस्थापित हो। यह स्नान हरएक की जीवन शुद्धि के लिए आवश्यक है। दान सिर्फ बड़े ही दें, ऐसा नहीं। हर इन्सान दान दे सकता है। हर इन्सान को चाहिए कि समाज के प्रति अपना ऋण अदा करे। मैं जिन्दा हूँ–इसमें समाज का कितना बड़ा योगदान है। इसलिए मैं समाज का ऋणी हूँ–यह ऋण मुझे अदा करना है–ऐसी भावना का बीजारोपण बचपन से ही होना चाहिए।

जिन-जिन घरों में कान्ताबहन जाती हैं, रहती हैं; वहाँ बच्चों को, किशोरों को, जवानों को समाज का ऋण अदा करने की प्रेरणा देती हैं और समझाती हैं कि "आतिशबाजी में पैसे न बिगाड़ो और उतनी रकम दान में दे दो तो हमारे बालमंदिर के आदिवासी बच्चों को नाश्ता मिल जायेगा।" निष्पाप बालमन ऐसे संस्कारों को सहज ही ग्रहण करता है।

सुरेखाबहन के घर एक राजस्थानी लड़का था। उम्र होगी बारह-तेरह वर्ष की। नाम था धनजी, किन्तु अपना वतन छोड़कर यहाँ घरकाम करता था। कान्ताबहन ने उसे भी विचार समझाया: "तुमसे भी अधिक गरीब लोगों के लिए तुम कुछ दोगे?"

धनजी ने एक उँगली ऊँची की। कान्ताबहन समझीं कि एक रुपये की कह रहा है। किन्तु धनजी बोला, "नहीं सौ रुपया।"

"अरे पगला गया क्या? तीन सौ के वेतन में से सौ रुपये दे देगा, तो तेरे बापू डाँटेंगे।

"बापू क्यों डाँटेंगे? मैं खुद कमाता हूँ न!"

आखिर कान्ताबहन ने उससे ग्यारह रुपये लिये और रसीद काट दी। पिंडवल लौटकर भी धनजी को शाबासी का पत्र लिखा। वह तो बेचारा क्या पढ़ता! सुरेखाबहन ने पढ़कर सुनाया तो वह खुश-खुश हो गया। कल कौन जाने यह

धनजी कहाँ होगा! हमारे सुशिक्षित (?) समाज ने उसके ये शुभ संस्कार मिटाये नहीं होंगे, तो वह समाज के प्रति अपने ऋण को समझनेवाला एक जिम्मेदार, हृदयवान नागरिक बना रहेगा।

कान्ताबहन कहती हैं, धन बहता रहे तो अच्छा है। आदमी के पेट की आखिर मर्यादा है। खा-खाकर कितना खायेगा भला? इसलिए देते रहो! देते रहो! देने से कभी खत्म न होगा।

पिंडवल के अहवाल में एक दोहा छापते हैं–

चिडी चोंच भर ले गयी, नदी न घटियों नीर।
दान किये धन ना घटे, कह गये दास कबीर॥

कान्ताबहन समझाती हैं: अपने मन के साथ इतना तय कर लो कि सौ रुपये में से कितने आपके और कितने समाज के? ऐसा करें कि नब्बे आपके और दस समाज के! पंचानबे आपके और पाँच समाज के! अट्ठानबे आपके और दो समाज के! बस समाज के लिए कुछ हिस्सा निकालो!

हजार रुपये महीने वेतनवाला भी मात्र दो प्रतिशत निकाले तो महीने के बीस और बारह महीने के २४० अर्थात् ढाई सौ रुपये का सालाना दान सहज दे सकता है। ऐसा सोचने पर उस मनुष्य को तुरन्त समझ में आ जाता है कि मात्र लखपति या बड़े व्यापारी ही दान दे सकते हैं, ऐसा नहीं बल्कि स्वयं भी अपनी शक्ति के अनुसार समाज का हिस्सा दे सकता है। **समाज-ऋण से उऋण होने की दीक्षा** कान्ताबहन हरएक को देती रहती हैं: "समाज के प्रति अपना ऋण चुकाओ।"

अक्सर ऐसा होता है कि समाज-सेवक की बात समाज के अन्य लोग तो सुनते हैं, किन्तु परिवारवाले नहीं सुनते। लेकिन यहाँ तो हम सबके कुटुम्बीजन कान्ताबहन के इस सेवायज्ञ में अपना योगदान देते हैं, कई परिवार जनों के मन में पिंडवल के कार्य के लिए विशेष स्नेह है। हरविलास का तो खासा लम्बा-चौड़ा परिवार है। इस परिवार के दूसरी-तीसरी पीढ़ी के सदस्य भी समाज का हिस्सा अर्पण करने की बात पर अमल करते हैं। कान्ताबहन का तो मंत्र ही है कि **हमें हरएक को सद्विचार और सत्कर्म के संस्कार देना है।**

विनोबाजी ने संपत्तिदान का विचार रखा। कान्ताबहन भी स्नेहीजनों को संपत्तिदान की भावना से समाज का हिस्सा देने की बात प्रेम से समझाती रहती हैं।

बीस-पचीस वर्ष पहले प्रकाश इंजीनियर हुआ। बड़ौदा में नौकरी मिली। अपना

पहला वेतन कान्ताबहन के हाथ में रखा। कान्ताबहन ने कहा, " नहीं, ऐसे नहीं।"

"क्यों, ये कम पड़ते हैं क्या?"

"नहीं, अधिक पड़ते हैं। तुम अपने मन में प्रतिशत तय कर लो। तुम्हारी इच्छा से उसे भगवान का हिस्सा, समाज का हिस्सा मानो। जिन्दगीभर उस हिसाब से देते रहना।"

प्रकाश ने मन ही मन तय करके चालीस रुपये कान्ताबहन को दिये। उसके बाद उसकी प्रगति होती गयी। आवक बढ़ती गयी, उसी तरह भगवान का हिस्सा भी बढ़ता गया। आज सालभर में करीब लाख रुपये सहजता से दे देता है, क्योंकि मन में बात जमी हुई है कि यह इतना हिस्सा मेरा नहीं है।

फिर कान्ताबहन ने उसे एक कदम और आगे बढ़ने को कहा:

"देखो तुम्हारा अब सब जँच गया है। भाइयों का भी ठिकाना हो गया है। बंगला बाँधा है। कार खरीदी है। पत्नी-बच्चे सारा सुख है। अपनी बुद्धि और कुशलता से उद्योग-धंधे बढ़ा रहे हो। तो अब एक काम करो। एक धंधा इस तरह चलाओ कि उसमें तुम्हारी पूँजी, बुद्धि, कुशलता सब इस्तेमाल हो, किन्तु उसकी आवक तुम्हारी न हो। पूरी आवक समाज को समर्पित।"

प्रकाश ने नया धंधा शुरू किया। पहले ही वर्ष पैंतालीस हजार का नफा हुआ, वह सारा सामाजिक कार्यों में दे दिया। लेकिन आज के कानून में इसकी व्यवस्था नहीं। इन्कमटैक्सवाले कहने लगे, आवक आपने अपने पास भले ही न रखी हो, हम तो उस पर इन्कमटैक्स लेंगे ही। प्रकाश ने टैक्स भी भरा। इसलिए यह नया अभियान जरा खटाई में पड़ा है, किन्तु प्रकाश अपनी भावनानुसार समाज का हिस्सा अर्पण करता है।

कान्ताबहन प्रकाश का उदाहरण देकर दूसरों पर भी इसका रंग चढ़ाने का प्रयास करती हैं। प्रकाश के भाई भाविन, किरण, उदयन भी इसी तरह प्रतिशत के हिसाब से दान देते हैं।

पिंडवल-कार्य के अर्थिक आयोजन के साथ-साथ ऐसी भावनाएँ भी समाज में फैलती हैं, यह महत्त्वपूर्ण बात है। ऐसा व्यापक लोक आधार भी एक उदाहरण पेश करता है। कान्ताबहन ने बड़ी ही जहमत उठाकर भक्ति-भावपूर्वक यह **लोक-आधार स्थापित** किया है। एक विशाल दाता परिवार को पिंडवल के काम के साथ जोड़ सकी हैं।

इस तरह हर वर्ष दान इकट्ठा करने में और नये दाता-मित्र बनाने में अनेक लोग अपनी ओर से उनकी मदद करते हैं। कान्ताबहन मित्रों से कहती हैं थोड़ी-थोड़ी जिम्मेदारी बाँट लें, और मित्र बड़े स्नेह से उनकी बात मान लेते हैं।

अभी-अभी एक मधुर प्रसंग का मौका आया। बड़ी पावन घटना है यह!

१९८६ में राजकोट में अशोक गोंधिया अवार्ड सर्वोदय परिवार ट्रस्ट को इनायत हुआ था। तब वहाँ के एक सज्जन जे० बी० सेठिया भी हाजिर थे। पिंडवल के कार्य की जानकारी हासिल करने के बाद से वे पहले पाँच हजार, फिर दस हजार हर साल भेजते। फिर १९९१ में उनके मन में ऐसी भावना जागी कि इस ट्रस्ट के लिए बड़ी रकम इकट्ठी कर दूँ। तब तक हम रूबरू नहीं मिले थे।

एक दिन वे पिंडवल आ पहुँचे। कहने लगे, मुझे ट्रस्ट की रसीद बुक दीजिए और राजकोट बैंक में ट्रस्ट का खाता खुलवा दीजिए। उन्होंने अपनी ओर से एकावन हजार दान देकर अभियान की शुरूआत की। ट्रस्ट के काम का परिचय देते हुए अपनी ओर से अपील का सुन्दर फोल्डर छपवाया। राजकोट, अहमदाबाद, बम्बई सब जगह घूमते रहे। ६९ वर्ष की उम्र। एक एक्सीडेंट के कारण पाँव का आपरेशन हुआ था। हार्ट की बायपास सर्जरी भी हुई थी। किन्तु पूरी निष्ठा से काम करते रहे, चन्दा इकट्ठा करते रहे।

उसी दौरान सख्त बीमार पड़े। दो-तीन महीने खटिया पर रहना पड़ा। ऐसी बीमारी से बचे तो उनको लगा कि भगवान ने मेरा संकल्प पूरा करने के लिए ही जिलाया है। अतः अधिक दृढ़ संकल्प के साथ जुट पड़े। बहुत तप किया उन्होंने। चार-सौ, पाँच-सौ लोगों से भेंट की। छोटे-मोटे दान भी प्राप्त किये। आखिर ३८२ दाताओं से कुल चौदह लाख बावन हजार का दान इकट्ठा किया। जनवरी १९९३ को राजकोट में एक समारोह में उसे ट्रस्ट को अर्पण किया। यह एक अनहोनी-सी घटना थी। धनवान आदमी धन तो देता है, किन्तु इस तरह इतने सारे लोगों से इतनी रकम इकट्ठी करना बड़ा मुश्किल है। असली अर्थ में तन-मन-धन से उन्होंने यह पुनीत कार्य किया।

इस तरह अनेक लोगों का हार्दिक साथ-सहयोग कान्ताबहन प्राप्त कर सकी हैं। अमेरिका निवासी दाता-मित्र विरंचीलाल ने एक पत्र में सही लिखा है: "कान्ताबहन में ऐसी कुशलता, खूबी, सौजन्य और इन्सान के दिल को छूने की कला है कि वे कभी खाली हाथ नहीं लौटतीं और सबसे अपनी बात मनवा लेती हैं।"

इसमें दिल को छूने की बात सबसे अधिक महत्त्व की है। मनुष्य को अपने साथ जोड़ने के लिए उसके दिल को छूना होगा, उसके हृदय में प्रवेश करना होगा। मैं हमेशा सोचता हूँ कि **''बुद्धि में बोध शक्ति है, प्रेरक शक्ति नहीं। प्रेरक शक्ति हृदय में है। काम करने के लिए मनुष्य की सिर्फ समझदारी पर्याप्त नहीं, समझ के साथ श्रद्धा की जरूरत पड़ती है! श्रद्धा का स्रोत हृदय है। जो दूसरे के हृदय में प्रवेश कर सकता है, वही दूसरे को कुछ करने की प्रेरणा दे सकता है। व्यक्ति का अपना हृदय जितना शुद्ध होगा, उतना ही सहज उसका हृदय-प्रवेश होगा। ऐसा व्यापक हृदय-प्रवेश ही किसी की हृदय-शुद्धि का मापदंड है।**

दोनों बहनों ने अपने शुद्ध हृदय के कारण ही अनेक हृदयों में प्रवेश किया है। बहुत से लोगों से आप्तजन जैसे निकट-संबन्ध बने हैं। इन बहनों के लिए कई घरों के दरवाजे खुले रहते हैं। जैसे कि हमने पहले देखा, शुरू से ही इस जुगल जोड़ी ने अनेक कुटुम्बों से प्रेमभरी पारिवारिकता जोड़ी है। इन कुटुम्बों से इनका स्नेहपूर्ण रिश्ता बँधा है और वे सारे बड़े स्नेह से बहनों को सँभालते रहते हैं।

ऐसा हृदय-प्रवेश और गृह-प्रवेश समाज-सेवक की सेवा का समाज की ओर से प्राप्त मंगल 'रेकग्नीशन' है। निज का सांसारिक परिवार बनाये बिना उनका एक बृहद् परिवार बन गया है। दोनों बहनें अपने ही में सीमित न रहीं। उनका ब्रह्मचर्य रुक्ष नहीं, किन्तु स्नेहपूर्ण है, बृहद् को स्वयं में समानेवाला है।

मनुभाई पंचोली ने **'चुने हुए फूल'** की प्रस्तावना में उचित ही कहा है: हरिश्चंद्र बहनें विनोबाजी की छाया में रहनेवाली घूमती-फिरती साधिकाएँ हैं। साधना करनेवाले कुछ रुक्ष, स्वकेन्द्री और औलिया जैसे दीखते हैं– होते हैं ऐसा नहीं, किन्तु उनकी तीव्र वैराग्यवृत्ति और अपने ही धुन में मस्त एकाकी उपासना उन्हें इस रूप में प्रकट करती है। किन्तु इन बहनों की तो बात ही अलग है। इनमें आनन्द, माधुर्य है, फिर भी करुणामूलक अनासक्त कर्म प्रवाह है।

इन बहनों की राखी का इंतजार चम्बल के बागी भाइयों सहित अनेकों जन को रहता है। १९७९ में कैंसर की बीमारी के कारण हर वर्ष की तरह रक्षा बन्धन पर राखियाँ नहीं भेज पायीं, तब एक भाई ने लिखा था–''आपके स्वास्थ्य समाचार के परिपत्र को ही इस बार राखी मान लेता हूँ।'' दूसरे भाई ने लिखा था: ''इस बार आपकी राखी नहीं मिली। कितने वर्षों में पहली बार ऐसा हुआ। अभी भी भेज दीजिए न!''

ये सारे संबन्ध घर छोड़ने पर समाज सेवा की राह में बने हैं। ये दोनों घर छोड़कर न तो वैरागी बनीं, न ही रुक्ष या स्वकेन्द्री बनी। इन्होंने तो अपने घर का दायरा विशाल बना दिया, गिने-चुने खून के संबन्धों के बदले उनसे भी विशेष स्वजन पाये। कान्ताबहन की माँ गुजरीं, तब उनके रिश्तेदारों में से एक का भी पत्र नहीं आया था, किन्तु इस बृहद् परिवार में से सौ से अधिक सान्त्वना के पत्र आये थे।

इन दोनों बहनों के जीवन-निर्वाह की जिम्मेदारी भी स्नेही-मित्र निभाते हैं। शुरू के दो-तीन वर्ष को छोड़कर दोनों बहनों ने अपने भरण-पोषण के लिए कभी किसी संस्था से वेतन या मानधन नहीं लिया। उनका जीवन संपूर्ण रूप से लोकाधारित रहा है। इस बृहद् परिवार के कुछ मित्रों की आर्थिक सहायता से इनका जीवन चलता है। वेतन, प्रोविडेण्ट फंड, पेन्शन या बचत की अपेक्षा यह लोक-आधार अधिक भरोसेमंद है।

कहा जाता है कि, Blood is thicker than water खून पानी की अपेक्षा गाढ़ा होता है, खून के संबन्ध अधिक गाढ़े होते हैं। किन्तु हमारा अनुभव इससे उल्टा है। हम कहते हैं कि Water is purer than blood. पानी खून से अधिक शुद्ध है। **निःस्वार्थ स्नेहभरे संबन्ध, खून के रिश्तों से अधिक शुद्ध संबन्ध है।** व्यक्ति जब अपना चार-दीवारोंवाला घर छोड़कर पूरे समाज को अपना घर बनाता है, तब जिनमें खून का रिश्ता न हो, ऐसे निकट आत्मीय रिश्ते बनने ही चाहिए। यह तो एक निशानी है स्वकेन्द्रियता की कैद से छूटने की। संसार में लोग भले ही कहें कि अपना सो अपना, पराया सो पराया। समाज सेवक तो परायों को अपना बनाये, पराये लोगों को वे अपने लगें, इसे सेवा की उपलब्धि माननी चाहिए।

दोनों बहनों ने ऐसी उपलब्धि भरपूर पायी है, यह है उनके **समाजचर्या की महान् सिद्धि।**

पैंतीस वर्ष पहले बम्बई छोड़कर निकली हुई दो शिक्षिकाएँ अपनी अनन्य सेवा निष्ठा, निष्कलंक चारित्र्य और हार्दिकता के कारण इतने सारे लोगों से स्नेह-सद्भावनापूर्ण रिश्ता जोड़ सकीं, इतने लोगों को साथ लेकर काम कर सकीं, उत्साह और उमंग से दान देनेवाला दाता-मित्रों का एक परिवार बना सकीं, विविध सामाजिक कामों में तन-मन से, स्नेह से सहयोग देनेवाले अनेक मित्र प्राप्त कर सकीं, प्रेम से सदैव स्वागत करनेवाले अनेक घर और निकट आप्तजन से स्नेही मिले—इस तरह उनका एक बृहद् परिवार बना है। दोनों बहनों ने पूर्ण

भक्तिभावपूर्वक सामाजिक सेवा करते हुए मुट्ठी भर-भर के धूप बाँटी है। जो अपने को भाया, उसमें दूसरों को साझेदार बनाया। इनकी एकत्व की आराधना की गुलाल से कितने हृदय गुलाबी हुए, उसकी कोई गिनती नहीं। ●

१४

जाहि विधि राखे राम ताहि विधि रहिये

कहावत है कि मनुष्य की असली परीक्षा बीमारी में होती है। कान्ताबहन की ऐसी परीक्षा सतत चल रही है। वह उनके जीवन का अंग बन गयी है। अखंड पुरुषार्थ के साथ-साथ शारीरिक प्रतिकूलताओं से भी अखंड संघर्ष करना पड़ रहा है।

१९८९ में खादी-मित्रों को उन्होंने एक पत्र में लिखा था :

''भगवान मानो मेरी कसौटी कर रहा है। मेरा शरीर रोगों का म्यूजियम बन गया है। आप तो दो छोटे नथुनों से साँस लेते हैं, मुझे पूरा मुँह खोलकर साँस लेनी पड़ती है। बरसों से मैं नाक से साँस नहीं ले सकती। मेरी कमर की डिस्क भी फिसलनेवाली निकली, जिसने मुझे लम्बे समय तक चित सुलाये रखा। इसके खिसकने की दहशत के मारे उठने-बैठने में भी डर लगता है। एसिडिटी तो रोज की सहेली बन गयी है। कैन्सर मेरे शरीर में दस वर्ष से अड्डा जमाकर बैठा है। वैसे अभी बोतल में कैद है। किन्तु बोतल के भूत का क्या भरोसा? चार वर्ष पहले पैन्क्रिआइटीटीस की भयंकर वेदना नरक-यातना का परिचय दे गयी। रोगिष्ट पेन्क्रिआस से डायबिटिस पैदा हुआ है। उसकी तकलीफ भी नित्य जीवन का हिस्सा बन गयी है। जीवन शिखर पर अब एक और पताका फहरायी है। दो ढाई महीने से एन्जाइना की तकलीफ शुरू हुई है, यह तो हार्ट अटैक की पायलट कार है न!''

उनके नाक की हड्डी टेढ़ी हो गयी है। आपरेशन से कोई लाभ नहीं, ऐसा डाक्टरों ने कहा। आपरेशन करवाया भी, किन्तु कोई फर्क नहीं पड़ा। अतः श्वास हमेशा मुँह से लेना पड़ता है। नींद में भी दो ओठों के बीच अंगुली या अंगूठा रखना पड़ता है, जिससे मुँह खुला रहे। अब उन्हें ऐसी आदत पड़ गयी है।

बहुत सालों तक कान्ताबहन को पाइल्स की तकलीफ रही। १९६४ में उसका

आपरेशन कराना पड़ा। वह ठीक से हुआ। घाव भी जल्दी भर गया। तब विनोबाजी ने पत्र में लिखा था :

"घाव जल्दी भर गया। उससे ध्यान में आता है कि उसके शरीर में जीवन शक्ति अच्छी है और आध्यात्मिक वृत्ति तो उसकी है ही। तो मुझे विश्वास है कि भगवान उससे अच्छी सेवा लेगा।"

एसिडिटी की तकलीफ उन्हें हमेशा से है। बड़ौदा रहते थे, तब उनकी एसिडिटी काफी बढ़ गयी थी। वहाँ के वैद्य मणिभाई का बहुत इलाज करवाया। आयुर्वेद की कई दवाएँ लीं। दो महीने सिर्फ दूध पर रही। बाद में तीन महीने दूध के साथ दलिया और खिचड़ी ली। और कुछ नहीं। किन्तु दूसरे को खिलाने में उन्हें जरा भी आलस नहीं, उसमें कभी कोई कसर नहीं रखी। अन्नपूर्णा की जिम्मेदारी तो वे सदैव निभाती रही हैं। एसिडिटी का इलाज कान्ताबहन के संयम की परीक्षा थी। उन्होंने जीभ पर सम्पूर्ण काबू रखा और कसौटी में खरी उतरीं।

१९७९ में कैन्सर की अग्निपरीक्षा आयी। पिंडवल के कामों के कारण शुरू में तो उन्होंने छोटी-मोटी तकलीफों की तरफ ध्यान नहीं दिया। आखिर बम्बई से डा० रक्षाबहन पिंडवल आयीं और उन्हें लगा कि वह कैन्सर ही है। उनके आग्रह से मई अंत में बम्बई गये। वहाँ किशनभाई ने जाँचा, फिर टाटा हास्पिटल में गये। निदान हुआ कि गर्भाशय का कैन्सर है तीसरी स्टेज में। गर्भाशय के बाहर भी फैल गया था।

शुरू में तो आपरेशन की बात थी इसलिए अस्पताल में भर्ती किया। किन्तु आपरेशन से पहले सर्जन डा० प्रफुल्ल देसाई ने जाँचा तो उन्हें लगा कि आपरेशन से कोई लाभ नहीं होगा, शायद नुकसान हो। इसलिए अस्पताल से छुट्टी दे दी।

फिर पचीस दिन कोबाल्ट किरणों का इलाज चला। हफ्ते में तीन दिन हास्पिटल में जाकर पाँच मिनट इलाज लेना। हर बार २०० के हिसाब से कुल ५००० मिलिरेम 'सरफेस रेडियेशन' दिया। उससे शारीरिक पीड़ा शुरू में बहुत हुई। असह्य दर्द, दस्त-उल्टी, सख्त जलन, बेचैनी वगैरह। धीरे-धीरे तकलीफें कम हुईं। इलाज से फायदा दीखा। गर्भाशय के मुख पर की गाँठ सिकुड़ गयी थी। उसका फैलना भी काबू में आ गया था।

फिर से हास्पिटल में दाखिल किया। एनेस्थेशिया देकर गर्भाशय के अन्दर रेडियम नीडल डालने की कोशिश की। परन्तु गर्भाशय का मुख पर्याप्त खुला नहीं था, नीडल अन्दर नहीं गयी। इसलिए फिर उसके बदले योनि मार्ग में गर्भाशय के

मुख के नजदीक रेडियम बम रखा। सात-आठ इंच लम्बी सलाई की नोक पर गोटी के नाप का रेडियोएक्टिव बम जैसा था। उसे पूरे पैंतीस घण्टे अन्दर रखकर 'डिरेक्ट रेडियेशन' दिया गया। इस दौरान कान्ताबहन को एक कमरे में अकेले सुलाकर रखा था, जिससे रेडियेशन का और किसी को रिएक्शन न हो।

इसमें उन्हें अतिशय त्रास सहन करना पड़ा। पैंतीस घण्टे तक पीठ के बल चित पड़े रहना था। करवट भी नहीं बदलनी थी। अन्दर रेडियम बम की सलाई, यूरीन की नली भी थी—बेहद जलन होती रही। इतनी भयंकर जलन थी कि लगता था जलते अंगारे रखे हों। मन में आया कि इससे तो मौत बेहतर है किन्तु ऐसा इलाज नहीं चाहिए।

टाटा अस्पताल की उस भयानक रात की याद से आज भी रोंगटे खड़े हो जाते हैं। भयंकर, सुनसान रात थी। पूरा शहर निद्राधीन। खुले बरामदे से सड़कों के दीये दिख रहे थे। अन्दर सतत कराहें सुनाई देती थीं और बीच-बीच में 'अब नहीं सहा जाता'—ऐसी चीखें सुनाई देती थीं। बाहर बैठे-बैठे हम, हरविलासबहन और मैं आकुल-व्याकुल हो रहे थे—उस भयंकर रात जैसी ही भयंकर हमारी लाचारी थी। हम कुछ नहीं कर सकते थे। जिन किरणोत्सर्गों ने हिरोशिमा, नागासाकी और फिर चेर्नोबिल में जिंदगीभर के लिए मानव-शरीर पर नरक-यातनाएँ बरसायी थीं, उन्हीं किरणोत्सर्ग का डाक्टरी विज्ञान की दृष्टि से विवेकपूर्ण उपयोग जिन्दगी को बचाने के लिए हो रहा था। किन्तु इतना अधिक कष्टदायक था सब—मौत से भी भयानक!

कान्ताबहन अस्पताल को 'राम राम' करके ही लौटी थीं। इलाज से कितना, क्या लाभ हुआ, यह तुरन्त जानना सम्भव नहीं था, क्योंकि किरणोत्सर्ग-प्रभावित हिस्से को डाक्टर भी तुरन्त जाँच नहीं सकते। बीस दिन बाद जाँचा तो लगभग चमत्कार जैसा ही दीखा। डाक्टर ने कहा कि इतने लाभ की तो उन्हें भी अपेक्षा नहीं थी। डा० प्रफुल्ल देसाई ने डीटेल में जाँचकर कहा कि गर्भाशय के बाहर फैला हुआ रोग तो लगभग नामशेष हो गया है। उसके मुख पर की गाँठ पिघल गयी है और अब रत्तीभर घाव रह गया है। गर्भाशय के अन्दर की गाँठ भी कम हो गयी है। इस तरह मूल गाँठ ८०-८५ प्रतिशत पिघल गयी है। बाकी बची हुई गाँठ पर रेडियेशन का असर अभी भी होता रहेगा। इसलिए तुरन्त और कोई इलाज नहीं करना है।

कान्ताबहन तो इसकी राह ही देख रही थीं। उनकी बीमारी की खबर पाते ही

उनके समाचार जानने के लिए अनेक चिन्तापूर्ण खत आते रहते थे। ऐसे दो सौ-सवा दो सौ मित्रों को एक परिपत्र द्वारा हरविलासबहन ने दो बार समाचार दिये थे। अब डाक्टर क़ी ओर से हरी झण्डी मिलते ही तीसरे परिपत्र में ता० २४-८-७९ को कान्ताबहन ने स्वयं लिखा–

"यह पत्र हरविलास नहीं, किन्तु मैं स्वयं, कान्ता लिख रही हूँ। केवल मन ही नहीं, किन्तु तन की पर्याप्त स्वस्थता के साथ लिख रही हूँ। पिछले तीन महीनों से आप सबको बड़ी चिन्ता करवायी मैंने। किन्तु आप सबके प्रेम, सद्भाव और शुभकामनाओं के कारण मैं फिर से यह खत लिखने लायक तन्दुरुस्त हुई हूँ। सिर्फ डाक्टरी निदान ही नहीं, मेरी शारीरिक स्थिति भी इसकी साक्षी है। रक्तस्राव, कमर और पेडू का दर्द सब बन्द हो गया है। जलन, बेचैनी कुछ नहीं है। वजन भी फिर से कुछ बढ़ा होगा। देखने में तो बिलकुल 'फ्रेश' लगती हूँ। नार्मल भोजन लेती हूँ। हाँ अधिक दौड़भाग करूँ तो थक जाती हूँ। किन्तु घर के छोटे-मोटे काम, साधारण पठन-लेखन, 'भूमिपुत्र' वार्ता वगैरह आराम से कर सकती हूँ। 'तू बीमार है, तू बीमार है' ऐसा रोज -रोज नहीं सुनना है मुझे। सुना है कि यह रोग कभी भी फिर से उभर सकता है। वह तो जैसी ईश्वर की मर्जी हो। किन्तु मरने से पहले रोज क्यों मरें? हम सबके भीतर रहनेवाला खुश हो, ऐसा काम जितना हो सके, करते रहना है। आशा करती हूँ कि बीमारी के विषय में यह अन्तिम पत्र होगा।"

जो स्वयं खटिया को न पकड़े, उसे खटिया भी नहीं पकड़ती। डाक्टर का तनिक इशारा मिलते ही कान्ताबहन बिस्तर छोड़कर कर्मयोग में लग गयीं। बिस्तर में रहना पड़ा, तब भी मन से पूरी तरह स्वस्थ और प्रफुल्लित रहती थीं। रोग की कोई दहशत या बोझ उनके मन पर नहीं था। नारायणभाई देसाई मिलने आये थे, तब उन्होंने अनुभव किया था कि—"उनकी सेवा करनेवाले चिन्तित थे किन्तु कान्ता के चित्त पर कोई बोझ नहीं दीखता था।" सभी को ऐसा ही अनुभव होता था।

मित्रों से, शुभेच्छुकों से उन्होंने भरपूर प्रेम पाया। ब्रह्म विद्या मन्दिर की बहनों ने भी विनोबाजी के सान्निध्य में बैठकर उनके खातिर प्रार्थना की। हास्पिटल में भर्ती होने के लिए जब दक्षाबहन के घर से विदा हो रहे थे, तब दरवाजे पर ही विनोबाजी का तार मिला था : "आशीर्वाद, नामस्मरण करती रहो।" यह नामस्मरण तो कान्ताबहन का हर घड़ी चलता रहता था।

सितम्बर १९७९ में फिर टाटा में जाँच हुई, तब डाक्टर ने कहा 'नीअर टोटल कन्ट्रोल' (रोग लगभग पूर्ण काबू में)। उसके बाद भी ईश्वर-कृपा से वह काबू में ही रहा है। कैन्सर की तकलीफ फिर नहीं हुई। रेडियेशन का कुछ रिएक्शन बाद में दो-तीन बार हुआ। शिवाम्बु पान भी कान्ताबहन नियमित करती रही हैं।

कैन्सर के बाद बड़ी बीमारी हुई १९८५ में। उसमें कैन्सर से भी अधिक परेशानी हुई। शुरू में निदान गलत हुआ कि अन्दर अल्सर फट गया है। ग्यारह दिन वलसाड के अस्पताल में रखा। असह्य दर्द था। मुँह से कुछ ले नहीं सकती थीं। इसलिए ३५-४० ग्लूकोज की बोतलें चढ़ायीं। दवा-इन्जेक्शनों का भी काफी जोर चला। पेट खोलकर आपरेशन की तैयारी में थे, तभी बम्बई से अचानक रक्षाबहन आयीं। उन्हें निदान के बारे में शंका हुई। इसलिए डा० किशनभाई को बुलाया। किशनभाई ने आकर देखा तो उन्हें वह अल्सर नहीं, किन्तु पेन्क्रिआईटीटीस है, ऐसा लगा। कान्ताबहन को बम्बई ले गये। सारी जाँच के बाद पक्का निदान हुआ कि स्वादुपिंड (पेन्क्रियास) पर सूजन है और पेट में नारियल जितना बड़ा गड्ढा जैसा है, जो धीरे-धीरे पिघल रहा है, वह कैन्सर की गाँठ नहीं है।

इस तरह सही निदान होने से सही उपचार हुआ, और कान्ताबहन फिर ठीक होकर काम करने लगीं। किन्तु पेन्क्रियास निष्क्रिय हो जाने से दो साल में उन्हें डायबीटीस हो गया, जिसकी वजह से छोटी-बड़ी शारीरिक तकलीफें सतत रहने लगीं। ये तकलीफें भी चलती रहीं और कान्ताबहन का काम भी चलता रहा।

अभी फरवरी १९९३ में पेन्क्रिआईटीटीस का सख्त दर्द हुआ। बेहद परेशान हुईं। निदान हुआ कि गाल ब्लैडर में दस-बारह छोटी-छोटी पथरी हैं। शायद आपरेशन करना पड़ेगा।

१९८९ में एन्जाइना पेन हुआ। एक-डेढ़ महीने आराम किया, सँभाला फिर काम शुरू। लेकिन फिर कुछ समय बाद उन्हें साँस लेने में तकलीफ होने लगी। कभी छाती में घबराहट भी होती। अतः १९९१ में एन्जियोग्राफी करवायी, और फिर एन्जियोप्लास्टी करवायी। एक धमनी ९० प्रतिशत सिकुड़ गयी थी, उसे बलून द्वारा ठीक किया। किन्तु दो महीने के अन्दर फिर वह नस सिकुड़ कर पहले जैसी हो गयी। फिर से एन्जियोप्लास्टी द्वारा उसके भीतर की पर्तें हटायी गयीं और उसे चौड़ा किया गया। यह दूसरी बार की प्रक्रिया सफल हुई है, ऐसा दीखता है।

इस एन्जियोग्राफी और एन्जियोप्लास्टी की प्रक्रिया में जाँघ की मुख्य नस

काटकर उसमें कैथेटर घुसाते हैं और उसे हृदय के पास की धमनी तक पहुँचाते हैं। यह प्रक्रिया नाजुक भी है और खतरे से खाली भी नहीं। कान्ताबहन के किस्से में भी प्रक्रिया पूरी होने के बाद इन्टेन्सिव केयर वार्ड में उनकी स्थिति कुछ देर के लिए चिन्ताजनक हो गयी थी और सब घबरा गये थे। बाद में ऐसा हुआ कि एक बार घर ले जाने के बाद दुबारा अस्पताल के इन्टेन्सिव केयर वार्ड में भर्ती करना पड़ा था। खैर, कुल मिलाकर सब सकुशल पार पड़ गया।

अब छाती में दर्द या साँस की तकलीफ खास नहीं है, फिर भी अनेक रोगों का मैला जमने से कब क्या तकलीफ होगी, कह नहीं सकते। डायबीटीस एलोपैथी की दवा से और जामनगर के बालुभाई वैद्य की आयुर्वेदिक दवा से अंकुश में रहता है। फिर भी उससे कई परेशानियाँ पैदा होती रहती हैं। कान्ताबहन छोटी-छोटी तकलीफों की ओर तो ध्यान ही नहीं देतीं। ज्यादा ही तकलीफ होने लगे तो कुछ आराम कर लेती हैं, फिर काम में जुट जाती हैं।

हृदयरोग की शुरुआत हुई, तब सुरेखाबहन ने एक बार लिखा था :

"अब तो आपके शरीर को बिल्लौरी काँच की बरणी की तरह सँभालना होगा।"

जवाब में कान्ताबहन ने लिखा : "हाँ, सँभालूँगी तो! देह में प्राण हैं, तब तक किसी न किसी तरह समाज के लिए उपयोगी होना है अतः शरीर को तो सँभालना ही पड़ेगा। किन्तु काँच की ही सही, बरणी कोई शोकेस में रखने की चीज थोड़े ही है! उसका उपयोग न हो तो वह किस काम की? मुझे तो इस काँच की बरणी को भी जितना हो सके उपयोग में लाना है।"

ऐसी बहादुरी और दृढ़ मनोबल के सहारे वे अनेकविध शारीरिक प्रतिकूलताओं से सतत लड़ती रही हैं। कठिन-से-कठिन संकट भी उन्हें अपने कर्मयोग से चलित नहीं कर सका।

इन बीमारियों के संदर्भ में कान्ताबहन एक खास बात का जिक्र करती हैं। वे कहती हैं, ये बीमारियाँ एक तरफ मुझे ईश्वर के रौद्र रूप का, उसके भीषण स्वरूप का दर्शन कराती हैं, दूसरी तरफ उसके प्रेम-स्वरूप के दर्शन भी कराती हैं। सारे लोग, समाज मुझ पर कितना स्नेह बरसाते हैं। कितने मित्र, परिचित, अल्प परिचित मेरी चिन्ता करते हैं, मुझे प्रेम से सँभालते हैं, अनेक तरह से मदद करते हैं। सबके प्रेम में ईश्वर की कृपा का ही विशेष अनुभव होता है।"

कैन्सर, हृदयरोग वगैरह तो राजरोग हैं। उनका निदान, चिकित्सा, इलाज सभी

अत्यन्त खर्चीला है। साधारण मनुष्य की हैसियत का नहीं और डाक्टरी मामला भी इतना उलझा हुआ, लम्बा-चौड़ा और भ्रष्ट है कि अपनी तो छुट्टी हो जाये। किन्तु कान्ताबहन का बढ़िया-से-बढ़िया डाक्टरी इलाज हुआ है, उनकी संपूर्ण देखभाल की गयी है और वह भी बिना मूल्य की गयी है।

हमने मित्रों से कहा था कि आर्थिक सहायता की जरूरत नहीं। जो रूबरू देने आये, उन्हें भी मना किया। फिर भी कोई तकिये के नीचे लिफाफा रखकर चले गये, किसी ने जबर्दस्ती भेज दिये। प्रकाश-सुरेखा ने हजार रुपये मनीआर्डर से भेजे, जिससे चेक-ड्राफ्ट भुनाने बैंक न जाना पड़े। परिणामस्वरूप, मना करते-करते भी साढ़े सात हजार रुपये इकट्ठे हो गये। बम्बई निवास में, अस्पताल में दो हजार रुपये फुटकर खर्च हुए थे। कान्ताबहन कहने लगीं, बाकी पाँच हजार की कमाई नहीं करनी है यहाँ से। मित्रों ने बहुतेरा समझाया, फिर जरूरत पड़ेगी, इतनी रकम रहने दीजिए। किन्तु कान्ताबहन नहीं मानीं। जब जरूरत पड़ेगी, मालिक बैठा है ऊपर। आखिर पाँच हजार रुपये हमने टाटा अस्पताल में जरूरतमन्दों के राहत फण्ड में जमा करवाये, तब कहीं उनके मन में शान्ति हुई।

हृदय-रोग के इलाज के समय भी इलाज की जिम्मेदारी मित्रों ने उठानी चाही थी और उसके लिए फण्ड इकट्ठा भी करने लगे थे। लेकिन तब भी सारा इलाज बिना मूल्य हुआ। दोनों बार की एन्जियोप्लास्टी का जसलोक अस्पताल ने कुछ नहीं लिया। डा० अश्विन मेहता ने भी दोनों बार कुछ नहीं लिया।

पहली बार की एन्जियोप्लास्टी के समय एक घटना हुई। उस समय पर्याप्त आर्थिक व्यवस्था होने के बाद मित्रों से कह दिया था अब और रुपया नहीं चाहिए। हुआ ऐसा कि एन्जियोप्लास्टी प्रक्रिया के दौरान एक बलून निष्फल गया, दूसरा इस्तेमाल करना पड़ा। अब दस हजार अधिक की जरूरत पड़ी। हम जरा उलझन में थे–मित्रों से दुबारा कैसे माँगें? खैर–

हास्पिटल से डिस्चार्ज लेकर अभी मनोरमाबहन के घर पहुँचे ही थे कि विलेपार्ले के कमलेशभाई सेठ अपनी पत्नी के साथ वहाँ पहुँचे। उन्होंने दस हजार रुपये कान्ताबहन के हाथ में दिये, "ये आपके निजी इलाज के लिए हैं। अभी और पन्द्रह का इन्तजाम करके रखा है, बिना संकोच कहें। बहन, मुझे तो आपकी बीमारी की कोई जानकारी नहीं थी, लेकिन न जाने क्यों, पिछले तीन दिनों से आपका अता-पता पूछ रहा था मित्रों से। बस, आपसे भेंट करने की एकाएक इतनी तीव्र इच्छा हुई!"

यह बात किसी को 'कौए का बैठना और डाल का टूटना' जैसी लगे। कोई शायद यह भी कहे कि ईश्वर की कोई भी योजना अधूरी नहीं होती। वह बच्चे के पेट में भूख देता है तो माँ के स्तन में दूध भी देता है। किन्तु भक्त हृदय इसे **ईश्वर की कृपा** माने बगैर नहीं रह सकता। कान्ताबहन की भक्ति ने ही उनकी जीवन नैया को इतने भयानक तूफानों में भी थामे रखा है।

बीमारी के दौरान मित्र और स्नेही जन आर्थिक मदद के अलावा अन्य अनेक रूप में सँभालते रहे हैं कि हर समय ईश्वर-कृपा का अहसास होता रहता है। डा० किशनभाई-रक्षाबहन, मनोरमाबहन के घर या जहाँ भी रहे, उस घर के सभी लोगों ने कान्ताबहन पर अत्यधिक प्रेम वर्षा की है। हास्पिटल में रहे तब भी, वहाँ से नजदीक रहनेवाले विनुभाई दोशी, नरेन्द्रभाई झवेरी के परिवारवाले और अन्य सब मित्रों ने भोजन तथा जरूरत की चीजें अस्पताल पहुँचाने का काम बड़े ही स्नेह से किया। कान्ताबहन हमेशा कहती रहती हैं कि क्या मैं जनम-जनम भी इनके ऋण से उऋण हो सकूँगी?

कान्ताबहन की ऐसी सारी बीमारियों में सबसे अधिक शारीरिक-मानसिक बोझ तो हरविलासबहन पर पड़ता है। ऐसे समय में दोनों के एकत्व का विशेष दर्शन होता है। कान्ताबहन की तरह-तरह की पीड़ा और कष्टों की वेदना हरविलासबहन भी अपने भीतर महसूस कर रही हैं, ऐसा मुझे अक्सर लगता है। उनमें सह-संवेदना का एक सूक्ष्म सेतु बँध जाता है। हरविलासबहन का समस्त ध्यान, कुल शक्ति कान्ताबहन की सेवा-सुश्रूषा में लग जाती है। वे समूची की समूची मातृस्वरूपा बन जाती हैं। कैंसर की बीमारी के समय देखा कि जैसे माँ को रात में नींद में भी बच्चे की भूख-प्यास या हाजत का अपने-आप पता चल जाता है, वैसे ही कान्ताबहन रात में जरा-सी हिले-डुले या जाग जाये तो बगल में सोयी हरविलासबहन भी अपने-आप जाग जाती। प्रेम और एकत्व का ऐसा अनोखा रिश्ता देखकर मन में यही भावना उठती है कि भगवान, इस जोड़ी को अखंडित रखना!

इन सारी बीमारियों में 'जो हरि करे वही मम हित का' – ऐसी कान्ताबहन की श्रद्धा अविचल रही है। ऐसी प्रतीति अन्य मित्रों को भी हुई है। प्रबोधभाई चोकसी ने जब पहली बार कैंसर की बात जानी तो लिखा : "आज भूमिपुत्र हाथ में आया। उससे तुम्हारे समाचार जाने। बहुत गहरा आघात नहीं लगा। न जाने क्यों, मन में एक भरोसा हुआ कि तुम्हें असाध्य रोग इसीलिए हुआ है कि तुम उसे

साध्य बनाकर दिखा सको।"

साध्य-असाध्य की कान्ताबहन को खबर न थी। वे तो मात्र रामनाम जपती थीं और यह रामनाम ही उन्हें शिक्षा देता कि **'जाहि विधि राखे राम, ताहि विधि रहिये'**। वे कहतीं "मैं रामनाम अवश्य जपती हूँ। किन्तु भगवान से ऐसी प्रार्थना नहीं करती कि वह मुझे रोग-मुक्त करे। उसे जो करना हो वह करे।"

'राम राखे वैसे रहें'–इसका सच्चा अर्थ यही है। वह राम उनसे काम करवाना चाहता है, यह बात पक्की है।

कान्ताबहन का कैंसर काबू में आ गया है, यह समाचार विनोबाजी को मिला, तब सितम्बर १९७९ को उन्होंने अपने हाथ से पत्र लिखा: "चि० कान्ता की तबियत साधारणतया ठीक हो गयी, यह बाबा को मालूम हुआ। बाबा ने पहचान लिया कि भगवान की चि० कान्ता और उसके साथ चि० हरविलास पर विशेष कृपा है, और भगवान उसके साथ उन दोनों से विशेष आशा और अपेक्षा रखता है। भगवत्-कृपा से वह पूर्ण होगी।"

१९८५ में पेन्क्रिआईटिटिस की बीमारी से ठीक हुई तब दादा धर्माधिकारी का वात्सल्यपूर्ण पत्र आया : "चि० कान्ता हमारे लिए भक्तिमय प्रेममय शुद्ध क्रियाशील जीवन की प्रतीक है। उसकी उपस्थिति वातावरण में मांगल्य और पावित्र्य का परिमल लाती है। ईश्वर से प्रार्थना है कि उसे दीर्घायु और शारीरिक स्वास्थ्य का वरदान दे। मानसिक स्वास्थ्य तो उसके लिए स्वभावगत है।"

ऐसे संतों के आशीर्वाद से कान्ताबहन की भक्तिमय क्रियाशील जीवनधारा अखंड बहती जा रही है।

१५
शब्द की उपासना

सामाजिक कार्यों के साथ-साथ दोनों बहनें साहित्यिक क्षेत्र से भी जुड़ी रही हैं। वे कोई बड़ी लेखिका या साहित्यकार नहीं। किन्तु समाज में काम करते-करते जो अनुभव होते हैं, स्पंदन जागते हैं, सभा-सम्मेलन समारम्भ में जो देखती-सुनती हैं, तत्कालीन घटना प्रवाहों के बारे में जो विचार उठते हैं, खास करके स्त्रियों और बच्चों के बारे में जो विचार-मंथन चलता है, पिंडवल में जो काम चलते हैं—यह सब शब्दों में व्यक्त करने की उनकी कोशिश होती है। मुख्यतः 'भूमिपुत्र' में ऐसे प्रासंगिक लेख लिखती रहती हैं।

दोनों बहनें मराठी-हिन्दी से गुजराती अनुवाद करने में निपुण हैं। विनोबाजी के और कुछ अन्य पुस्तकों के अनुवाद उन्होंने किये हैं। कुछ पुस्तकें स्वयं लिखी हैं। 'भूमिपुत्र' के हर अंक में अन्य भाषा से रूपांतरित एक कहानी लगातार तीस वर्षों से दे रही हैं।

इस तरह थोड़ी-बहुत **साहित्य सेवा** दोनों करती हैं। उससे कोई महान् साहित्य-निर्माण भले ही नहीं हुआ, किन्तु यह समाज के लिए एक उपयोगी काम हो रहा है। उनका लेखन, उनके व्यक्तित्व की तरह सौम्य, सरल, दंभरहित और हृदय-स्पर्शी होता है। उसमें वैचारिक भार नहीं, किन्तु भावना की आर्द्रता महसूस होती है।

लेखन दोनों का साझे में होता है, वे साथ मिलकर लिखती हैं। व्यक्तिगत नाम से शायद ही कभी लिखती हैं। लेख वगैरह कान्ता-हरविलास के नाम से और अन्य साहित्य हरिश्चंद्र के नाम से लिखती हैं। कभी अकेली ने लिखा हो, तब भी दोनों के नाम होते हैं।

चंदा इकट्ठा करने का काम जैसे सहज रूप से हुआ था, वैसे ही सहज रूप से लिखने की शुरूआत हुई। १९६२ की विशेष भावावस्था के दिनों में कान्ताबहन को

आध्यात्मिक पठन की भूख रहती। तब विनोबाजी की **'ज्ञानदेव-चिन्तनिका'** पुस्तक हाथ में आयी। इस पुस्तक के बारे में विनोबाजी ने स्वयं लिखा है,–इस चिन्तनिका में मैंने जितना चिन्तनांश उँडेला है, उतना गीताई और गीताई कोश को छोड़कर किसी और में नहीं। इसमें ऐसी मिठास है कि कभी बासी नहीं होगी।–यह **'ब्रह्मविद्या की अति उत्तम पुस्तक'**– है। इसमें साधना, भक्ति और दर्शन के बारे में आध्यात्मिक अनुभूति के उद्गार हैं। कान्ताबहन के भक्त हृदय में इसकी प्रतिध्वनि उठती रही। उसमें वे एकरूप होती गयीं। स्वाभाविक ही उसका गुजराती करने की इच्छा हुई। अतः भक्तिभावपूर्वक उसका अनुवाद किया।

विनोबाजी के प्रेमपूर्वक आशीर्वाद प्राप्त हुए। गुजराती आवृत्ति के लिए उन्होंने नयी प्रस्तावना लिखी। जिसमें लिखा: "ज्ञानदेव चिन्तनिका का गुजराती अनुवाद भगिनीद्वय हरिश्चन्द्र ने गुजराती पाठकों के समक्ष रखा है– चि० हरिश्चन्द्र ने यह अनुवाद मत् चित्ताः मद्गतप्राणाः –चित्त और प्राण पिरोकर किया है।"

इस तरह साहित्य क्षेत्र में प्रथम कदम रखा। विनोबाजी के अन्य आध्यात्मिक साहित्य में से भी जो उन्हें हृदयंगम लगा, उसका आस्वाद गुजराती पाठकों को करवाया।

सर्व धर्म उपासना के रूप में विनोबाजी कृत ॐ तत् सत्... की नाममाला अब लोक कंठ में स्थान पा चुकी हैं। नामस्मरण का यह एक अत्यन्त सुश्लिष्ट भजन बना है। इस नाममाला का एक-एक नाम लेकर उसके अर्थ को स्पष्ट करते हुए विनोबाजी ने पवनार में प्रवचन दिये थे। उन प्रवचनों की छोटी पुस्तिका इन बहनों ने तुरन्त तैयार कर दी। उस पुस्तिका को देखकर विनोबाजी बहुत खुश हुए। उन्होंने एक मधुर पत्र लिखा: "नाममाला मूल में मराठी है, लेकिन अभी मराठी में तो आयी नहीं। तुमने पहल की। अब 'पुढे गेले त्यांचा शोधीत मारग'–जो आगे गये हैं, उनका मार्ग ढूँढ़ते हुए दूसरे लोग फुर्सत से आयेंगे।"

खास तो उन्हें पुस्तिका की गुटका साइज बहुत पसन्द आयी:

"नाममाला जरा से में मधुर है। मैं ऐसी छोटी पुस्तकों का ही भोक्ता हूँ।"

ऐसी ही **'जेबी पोथियाँ'** बहनों ने तैयार की हैं.....विष्णु सहस्रनाम और 'रामनाम–एक चिन्तन'। विनोबाजी का यह नामस्मरण रूपी प्रसाद इन साधिका बहनों ने गुजराती में बाँटा, यह उचित ही है। विनोबाजी कहते हैं नाम का स्थूल रटन नहीं अपितु उससे 'आध्यात्मिक स्नान' की अनुभूति करनी है।

अन्य दो आध्यात्मिक पुस्तकें–'जपुजी' और 'अध्यात्मतत्त्व-सुधा' का भी बहनों ने गुजराती अनुवाद किया है। इनकी अनेक आवृत्तियाँ निकली हैं।

रविशंकर महाराज के सत्संग और सान्निध्य का लाभ दोनों को मिला। उसे भी समाज के समक्ष रखा। बहनों ने महाराज की वाणी को अलग-अलग पुस्तकों में संकलित-संपादित किया है–'महाराज की बातें, 'दादाजी की देन, 'संत की मंगलवाणी' वगैरह। 'दादाजी की देन' पुस्तक की प्रस्तावना जयप्रकाशजी ने बड़े प्रेम से लिखी थी। महाराज का ग्रंथ "मूठी ऊँचेरौ मानवी" से सम्बधित संपादन भी बहनों ने किया था।

स्त्री जागृति के काम में बहनों को विशेष रुचि रही है। फलस्वरूप 'स्त्री शक्ति', 'महिलाओं को', 'बहनों को' आदि संकलित-संपादित पुस्तकें प्रकाशित की हैं। बहनों के लिए उपयोगी काफी सामग्री इनमें है। रोजमर्रा जीवन की बातों को सरल और प्रासादिक शैली में प्रस्तुत किया है।

नन्हें पौधों की तरह नन्हें-मुन्ने बच्चों को ममताभरी संभाल की जरूरत होती है। बहनों ने 'बाल घडतरना प्रेरक प्रसंगों' नामक पुस्तक में महापुरुषों के बचपन और किशोरावस्था के ५१ प्रेरक प्रसंग संपादित करके प्रस्तुत किये हैं। बच्चों के विकास की दृष्टि से उपयोगी पुस्तक है।

प्रौढ़ शिक्षा के लिए उपयोगी दो पुस्तिकाएँ–'नारी तुं नारायणी' और 'मा बालक ने खाय नहीं'–बहनों ने सूरत के समाज शिक्षण भवन के लिए लिखी हैं।

विनोबाजी की प्रेरणा से देशभर में चार बहनों की जो पैदल लोकयात्रा चली थी, उसकी सुन्दर परिचयात्मक पुस्तक 'लोकयात्रा' हरिश्चन्द्र बहनों ने सरल हिन्दी में लिखी है। उसका अंग्रेजी भाषान्तर इंग्लैंड से भारत आकर हिमालय के गिरिजनों की सेवा में डूबी केथरीन हिलमेन उर्फ सरलाबहन ने किया है। A Unique Pilgrimage.

इस पुस्तक की प्रस्तावना में दादा धर्माधिकारी ने लिखा है:

"इनकी शैली में भी इनके जीवन का रस है। भाषा में भी इनके हृदय की संपन्नता प्रतिबिम्बित होती है। हृदय में भावनाओं का उद्रेक हो, तो वह वाणी द्वारा व्यक्त होता है... मुझे विश्वास है कि पाठकों को यह पुस्तक उद्‌बोधक, रोचक और उपयोगी लगेगी।"

राममूर्तिजी की हिन्दी पुरतक का अनुवाद 'गामनो विद्रोह' और कुसुम

नारगोलकर की मराठी पुस्तक का अनुवाद 'ज्या चीनी सैन्यो त्राटक्या हतां (जहाँ चीनी सैन्यों ने हमला किया था)–भी बहनों ने किया है।

किन्तु साहित्य-क्षेत्र में इनका **प्रमुख योगदान** है–भूमिपुत्र की कहानियाँ। १९६३ में आरम्भित यह अभियान तीस वर्षों से अखण्ड चल रहा है। इसके बारे में बहनों ने सातत्य योग टिकाये रखा है।

'भूमिपुत्र' के हर अंक में अन्तिम पृष्ठ पर एक कहानी देते हैं। इसकी कुछ विशेषताएँ हैं। प्रथम तो इसका कद मात्र एक ही पृष्ठ, ८०-८२ लाइन्स यानी ७००-८०० शब्दों का होता है। दूसरी बात ये सब कहानियाँ किसी अन्य भाषा की कहानियों पर से तैयार की जाती हैं। वे सीधा अनुवाद या रूपान्तर नहीं। मूल कहानी पढ़ने के बाद उसके आधार पर 'भूमिपुत्र' के अनुरूप कहानी नये सिरे से लिखी जाती है। कभी मूल कहानी के प्लाट में जरूरी फेर-बदल भी किया जाता है। कहानी का कलेवर और कहानी का अन्त भी कभी बदलते हैं और वह स्वतंत्र नूतन कृति बन जाती है। फिर भी 'फलाने लेखक की फलानी भाषा की कहानी के आधार पर' ऐसा ऋण-स्वीकार अवश्य करते हैं।

अलबत्ता इस खिचड़ी पकाने में कहीं भी रसहानि न हो, कलाकृति को आँच न आये, इसका पूरा ध्यान रखा जाता है। फिर भी प्रश्न उठता है कि मूल लेखक इस 'नयी' कहानी को पढ़े तो उसे कैसा लगेगा ? कुछ वर्ष पहले एक उदाहरण सामने आया। बहनों के नाम नागपुर से मराठी लेखिका सुनीति आफले का पत्र आया: "मेरी मराठी कथा 'पाहुणी' (मेहमान) भूमिपुत्र में 'आंखथी अलगां, दिलथी वेगलां' (नजर से दूर दिल से दूर) नाम से सारांश रूप में रूपान्तरित करके छपायी, इसके लिए आभारी हूँ। गुजराती पढ़ती-समझती हूँ, लिखना नहीं जानती। मेरी ऐसी अन्य कथाएँ भी यदि आप गुजराती पाठकों को उपलब्ध करायें, तो खुशी होगी।" उन्होंने अपना कहानी संग्रह भी भेज दिया।

हरिश्चन्द्र की इन कहानियों ने गुजरात के कहानी-साहित्य को समृद्ध किया है, अन्य भाषाओं की कृतियों का गुजरात को परिचय करवाया है, और मानव-मानव के बीच पनपते भावात्मक ऐक्य की झाँकी करवायी है। मानवीय संवेदना सब दूर एक-सी होती है। ये कहानियाँ ग्रंथस्थ हुई हैं। इनके दस भाग **'वीणेला फूल'** (चुने हुए फूल) के नाम से प्रकाशित हुए हैं और इनकी अनेक आवृत्तियाँ निकल चुकी हैं।

इनकी प्रस्तावना में मनुभाई पंचोली ने लिखा है: "भूमिपुत्र के अंतिम पृष्ठ को

सर्व प्रथम पढ़नेवालों में से मैं भी एक हूँ। इन कहानियों की सचोटता ने कई बार 'भूमिपुत्र' के गंभीर लेखों को विशेष स्फुट किया है । ये विलक्षण संक्षेप कथाएँ गुजराती लेखन में विशेष महत्त्वपूर्ण हैं ... इस संक्षेप में से एक-दो मूल कहानियाँ मैंने देखी तो ख्याल में आया कि मूल को नूतन स्वरूप देने में बहनों की कितनी कुशलता समायी है, कितना समय और श्रम उन्हें लगाना पड़ा होगा। .... अनुवाद तो यह है नहीं–सब कुछ नूतन है। नूतन स्वरूप देते हुए मूल को टिकाये रखना, और स्वयं को परदे के पीछे रखना, इनके लिए बड़ा तप करना पड़ता है। ऐसी मधुर तपस्विता तो दोनों बहनों के जीवन में है ही, किन्तु इनमें भी वह तप झलकता है।''

अभी दसवें भाग की प्रस्तावना गुलाबदास ब्रोकर ने लिखी है। वे लिखते हैं: 'भूमिपुत्र' हाथ में आते ही सर्व प्रथम मैं अंतिम पृष्ठ पढ़ लेता हूँ। हरिश्चन्द्र की एक पृष्ठ में समायी, देशभर के लेखकों में से चुनी हुई कहानी मुझे बहुत ही अच्छी लगती है। सबसे पहले मैं उसे पढ़ता हूँ। पढ़कर मन और हृदय तृप्त हो जाता है। कहानियों की पसन्दगी में उनकी रुचि की उच्चता, तथा जीवन और समाज के प्रति उनकी ध्येयनिष्ठा साथ ही कलातत्त्व के प्रति वफादारी और सुरुचिपूर्ण अभिगम दृष्टिगोचर होता है। ऐसी विशेष रसपूर्ण सामग्री गुजराती प्रजा को उपलब्ध करवाने के लिए ये दोनों बहनें हम सबके अभिनंदन की अधिकारी हैं।

ये कहानियाँ अत्यन्त लोकप्रिय हुई हैं। कई जगह पुनर्मुद्रित होती रहती हैं । साधारण पाठकों से लेकर गणमान्य साहित्यकार भी इन कहानियों का खूब स्वागत करते हैं। कवि श्री उशनस ने एक बार लिखा था: ''हरिश्चन्द्र की कहानियाँ हमारी कहानी सृष्टि में विशेष ध्यान आकर्षित करने की अधिकारी हैं।''

उमाशंकर जोशी भी इन कहानियाँ के चाहकों में एक थे। बहनों की और उनकी अन्तिम मुलाकात तीथल में हुई थी। तब उन्होंने कहा–'भूमिपुत्र' की कहानी मैं भी रसपूर्वक पढ़ता हूँ। 'जिजीविषा' कहानी (भूमिपुत्र ता० १-५-१९८८) सुन्दर है। कशीमां का चित्र उसमें सुन्दर उभरा है। ये सारी कहानियाँ कहाँ से इकट्ठी करती हैं?

और फिर कहानी की कहानी दिल लगाकर सुनी। काफी मेहनत करनी पड़ती है। अनेक कहानियाँ पढ़ती हैं, तब कहीं एक अनुरूप कहानी मिलती है। फिर वह तो लम्बी-चौड़ी है। उसे काट-पीटकर तो संक्षिप्त नहीं कर सकते। इसलिए कभी-

कभी तो दो-दो बार, तीन-तीन बार लिखनी पड़ती है, तब ही अन्तिम स्वरूप हाथ में आता है।

'भूमिपुत्र' के पाठकों के साथ इन कहानियों द्वारा बहनों का आत्मीय रिश्ता बँध गया है। सभी लोग अक्सर अन्तिम पृष्ठ ही पहले पढ़ते हैं। कहानीरहित 'भूमिपुत्र' लोगों को फीका लगता है। संयोगवशात् कहानी न दे सकें तो पाठक निराश होते हैं।

कान्ताबहन की केन्सर की बीमारी के दौरान दो महीने कहानी नहीं दे सके थे, तब सारे पाठकों को उसकी कमी महसूस हुई थी। कहानी फिर शुरू हुई तो उन्होंने अपना आनन्द व्यक्त किया। कई परिचितों ने यह भी कहा: "भूमिपुत्र में कहानी देखकर हमें मालूम हो गया कि आप फिर से अच्छी हो गयी हैं।"

उस समय के कुछ पत्र–"आपका कुशल पत्र तो आज मिला। लेकिन 'भूमिपुत्र' के पिछले अंक में ही अन्तिम पृष्ठ पर आपको देख लिया था। उसी पर से समझा कि एक बड़े खतरे से आपको भगवान ने पार लगाया है.... आपने अब पुनः स्वास्थ्य प्राप्त किया है और समाज के चरणों में 'चुने हुए फूल' धरने लगी हैं, यह देखकर खुशी हुई... आप तो सिर्फ यही एक काम करती रहें तो हजारों पाठकों को आनन्द दे सकती हैं।"

शब्द के छोटे-बड़े किसी भी उपासक के लिए उसका शब्द पाठकों के साथ ऐसा हार्दिक रिश्ता बना दे, उससे विशेष और कौन-सा पुरस्कार हो सकता है? हरिश्चन्द्र बहनों की ऐसी शब्द की उपासना भी सामाजिक कामों के साथ-साथ लगातार तीन दशकों से सातत्यपूर्वक चल रही है।"

●

१६
अशेष आत्मीयता

काफी बरसों से यह शब्द मेरे ओठों पर बस गया है–अशेष आत्मीयत। जीवन में यदि प्राप्त करने लायक कुछ है, तो वह है–अशेष आत्मीयताभरी मैत्री। ऐसी मैत्री, जिसमें कुछ छिपाना न पड़े, कुछ ढाँपना न पड़े, बीच में कोई आवरण न हो, कोई मुखौटा न हो। ऐसी आत्मीयता, जिसमें अलगाव शेष न रहा हो। देह भले ही भिन्न हो, उन देहों के अन्तःस्थ एक रूप हो गये हों।

ऐसी अशेष आत्मीयता क्या जीवन में साध्य की जा सकती है? साक्षात् मानव व्यवहार में क्या वह संभव है? दुनियादारी तो इससे विपरीत ही नजर आती है। इस मानव मेले में मिलना-जुलना होता है, किन्तु कुछ मर्यादा में, अपने को सँभालकर। आपस में पारिवारिकता हो, तब भी बीच का परदा समूचा हट नहीं जाता। उस परदे के पीछे स्वयं को सँवारकर ही हम दुनिया के समक्ष प्रस्तुत होते रहते हैं।

यह बात मुझे शुरू से ही खटकती, मन में उलझन होती। ऐसे परदोंवाले संबन्धों में कैसा आनन्द? सारे संबन्धों में तो नहीं, किन्तु कुछ निकट के संबन्धों में क्या ऐसा परदा पूरी तरह से हटाया नहीं जा सकता? किसी आवरण के बिना मिलजुल नहीं सकते? ऐसी मुक्तता के बिना मानव संबन्धों का असली आनन्द कहाँ? अशेष आत्मीयता ही जीवन का अमृत है, जीवन का चार्म है।

ऐसी अशेष आत्मीयता की भूख मुझमें प्रारंभ से ही तीव्र थी, उसके लिए मुग्ध भाव से प्रयत्न करता रहा। कभी इस मुग्धता को ठेस लगी तो मन में शंका जागी क्या यह सिर्फ आदर्श ही रहेगा या यथार्थ भी हो सकेगा? इस धरती पर सगुण, साकार मानव संबन्धों में क्या उसे साक्षात् नहीं पा सकते? उसका अनुभव नहीं कर सकते? क्या यह मात्र सपना ही रहेगा या व्यवहार में उतार सकेंगे इसे?

मेरी ऐसी मनोभूमिका में जब मैंने इस सपने को साकार करनेवाला एक जीता-

जागता उदाहरण अपनी आँखों से देखा तो मेरी ख़ुशी का ठिकाना न रहा। यह उदाहरण है अपनी ये बहनें, कान्ता और हरविलास, भगिनीद्वय हरिश्चन्द्र। इनकी मैत्री है अशेष आत्मीयताभरी, मानो दो देह-एक प्राण। एक-दूसरे पर स्वयं अपने से अधिक प्रेम करनेवाली जुगल जोड़ी।

पहली बार जब इन्हें देखा, दोनों की एक रूप मूर्ति मेरे हृदय में बस गयी। दोनों के एकत्व का मेरे मन में बहुत आकर्षण हुआ। ओह, एक-दूसरे में कैसी समा गयी हैं! नितान्त एकहृदय हो गयी हैं।

हमारे परिचय के डेढ़ साल में अनायास प्रवाह पतित परिस्थिति खड़ी हुई कि बड़ौदा में हमारा साथ काम करना और एक साथ रहना हुआ। दोनों के एकत्व को नजदीक से निहारने का सौभाग्य मिला। और तभी कान्ताबहन की विशेष अनुभूतिवाली घटना हुई। अनायास उसका मैं साक्षी बना। कुछ गहरी आध्यात्मिक अनुभूतियों के स्पन्दन मेरे अस्तित्व को भी छू गये। भीतर से रिश्ता जुड़ता गया।

तब से लेकर आज तक इन दोनों बहनों के एकत्व का मैं साक्षी और सहयात्री रहा हूँ। दोनों के इस एकत्व को मैंने अहर्निश लगातार जी-भर के देखा है, जाना है। जीवन को समझने-बूझने में जीवन के शोधन-संवर्धन में इससे मुझे बहुत मदद मिली है। इस एकत्व के दर्शन-संवेदन से अपने अन्तर्तम में मैंने अनोखे आह्लाद का अनुभव किया है।

दोनों के व्यक्तित्व बिलकुल भिन्न हैं। रुचि-वृत्ति में एकरूपता काफी है, किन्तु उनमें भिन्नतत्त्व भी कम नहीं। दोनों की परवरिश, पारिवारिक परिस्थिति वगैरह में तो जमीन-आसमान का फर्क है ही। परिणाम-स्वरूप उनके स्वभाव, अभिगम, मानस के गठन में भी खासी भिन्नता है। काम करने की पद्धति भी अलग है। पठन-मनन में भी एक साँचे जैसा साम्य नहीं।

ऐसी सारी भिन्नता और विविधता के बावजूद दोनों में अद्‌भुत एकत्व है। लगता है मानो ये दोनों आपस में पूरक होने के लिए पैदा हुई हों। इनकी भिन्नता भी एक-दूसरे में मिलकर बन गयी है अद्वितीय एकता। दोनों के व्यक्तित्व की छटाएँ एक-दूसरे में रच-पचकर दोनों का सहयोगी एकत्व पूर्ण व्यक्तित्व उजागर कर रही हैं। दोनों एक-दूसरे में विगलित होकर एक बनी हैं। उनका परस्पर अनन्य स्नेह, उनकी एकहृदयता, उनका परस्पर अहं-निरसन और आत्म-विलोपन, उनकी अद्वैत आत्मीयता सबके हृदय को छू जाती है।

'हरिश्चन्द्र' लिखित हिन्दी पुस्तक 'लोकयात्रा' की प्रस्तावना में दादा

धर्माधिकारी ने इसका भावपूर्वक उल्लेख किया है: "इस पुस्तक की रचना एक अद्वितीय 'यमल' ने की है। चन्द्रकान्ता और हरविलास जुड़वाँ सहोदराएँ नहीं हैं। फिर भी हैं जुड़वा बहनें। यह 'यमल' जन्मसिद्ध नहीं है, स्वतः सिद्ध है। अतएव स्वायत्त है। इन दोनों में जितनी समान स्फूर्ति है, उतनी सहोदर जुगल जोड़ी में भी क्वचित् ही पायी जाती है। यह देखकर विनोबा ने इन दोनों के नाम का एक सामासिक नाम बना दिया—हरिश्चन्द्र। नाम सामासिक है, परन्तु उनके पारस्परिक संबन्ध में द्वन्द्व नाम को भी नहीं है। इस अद्वितीय युग्म के हृदय में अद्वैत का सुधारस है। यह भक्ति और निष्ठा की अप्रतिम युति लुभावनी है।"

इन दोनों के निःस्वार्थ, निखालिस स्नेह भाव के मंगल दर्शन से हमारा हृदय पुलकित हो जाता है। दोनों को आपसी जुदाई कितनी अखरती है, यह हमने देखा है। कुछ दिनों के लिए भी अन्योन्य की गैरहाजिरी दोनों को खटकती है। किसी कारण से जुदा होती हैं तो एक-दूसरे के खातिर तरसती हैं। आज अभी भी यही हाल है। दोनों एक-दूसरे के बिना खोयी-खोयी-सी रहती हैं, भीतर से मायूस-सी रहती हैं। मानो शरीर का कोई अंग अलग हो गया हो। मेरे जैसों के लिए तो अद्वैत की ऐसी तड़पन जीवन का विशिष्ट 'चार्म' बन जाती हैं, जीवन के अमृतरस का पान कराती हैं। दोनों को साथ देखता हूँ तो वह गीत कानों में गूँजने लगता है : "**हम एक-दूसरे के संग राजी राजी।**"

किन्तु खालिस मिठाई से तो नहीं चलता, मुँह का जायका बदलना पड़ता है। कुछ नमकीन भी तो चाहिए। उसकी कमी भी नहीं रहती। "तुमने मेरे बदले क्यों काम कर डाला?" अथवा "तुमने अच्छी चीज मुझे क्यों दे दी?"—ऐसे नमकीन-मधुर झगड़े तो चलते ही रहते हैं। स्वभावभेद और कार्यशैली की भिन्नता के कारण नमकीन खटपट भी हो ही जाती है। शुरू-शुरू में तो मैं परेशान हो जाता। फिर समझ गया कि ये तो पानी के बुलबुले हैं। अन्दर तो गहरा स्नेहरस अस्खलित बह रहा है।

मेरा ख्याल है कि इनके संपर्क में आनेवाले हरएक को इनकी प्रतीति जाने-अनजाने होती ही होगी। इसलिए मैंने इतने वर्षों में एक भी ऐसा किस्सा नहीं देखा कि जब किसी ने एक-दूसरे के विरोध में इनके कान भरने की हिम्मत की हो। अपने किसी मतभेद का निपटारा करने के लिए इन्हें भी किसी तीसरे के पास जाने का खयाल तक नहीं आया। 'तुका म्हणे आम्हीं एका देहाचे अवयव'—(तुकाराम कहते हैं हम एक ही देह के अवयव हैं) जैसी संवेदनशीलता इनके एकत्व का प्राण है।

सृष्टि में ऐसा कुछ अचानक नहीं हो जाता। सृष्टि में 'आर्गेनिक ग्रोथ' (सजीव संवर्धन) है। बीजारोपण होता है, अंकुर फूटता है, कोमल कोंपलों को सँभालते हैं। खाद-पानी देते हैं, पौधा बढ़ता है। फलता-फूलता है। सजीव मानव-संबन्ध भी इसी तरह पनपते रहते हैं।

बहनें स्वयं कहती हैं: "मैत्री की शुरुआत में हम छोटी-छोटी बातों में एक-दूसरे का बहुत ध्यान रखते। कहीं मनचोरी नहीं, कपट नहीं। बस का टिकट बारी-बारी से खरीदते! नाश्ते के पैसे भी देते बारी-बारी से। झूठा लिहाज नहीं कि मैं देती हूँ, तुम रहने दो...! दोनों सावधानी रखते। अभी भी याद है कि 'भूमिपुत्र' का चन्दा दो रुपये था तो हमने एक-एक रुपया दिया था। शब्द व्यूह स्पर्धा की प्रवेश-फीस भी आधी-आधी बाँट ली थी। लम्बा प्रवास हो, हिसाब साफ, दोनों बाँट लेते। एक-दो साल बाद दोनों चाहने लगीं कि मैं अधिक करूँ- कोई किसी से कम न करना चाहे। कोई किसी को अधिक बोझ न उठाने दे! और यों करते-करते जाने कब हमारे बटुए अलग ही नहीं रहे, एकरूप हो गये।"

द्वेष, ईर्ष्या, अहंकार, स्पर्धा, होड़ ये सब मानव संबन्धों में बाधा पैदा करती हैं। बहनें कहती हैं: "ईश्वरकृपा से हमारे बीच शुरू से ही बहुत मनमेल था। हमें कभी ईर्ष्या ने नहीं सताया, न अहंकार ने, न होड़ ने। हमने कभी किसी से एक-दूसरे के अवगुणों की चर्चा नहीं की, न ही कोई अप्रिय बात कही। बल्कि यदि कोई जरा-सी टीका भी करे तो सहन नहीं होती, जिसकी टीका हो रही हो सुननेवाली उसकी तरफदारी करती है। एक का विकास हो तो दूसरी को कभी नहीं लगता कि मैं पीछे रह गयी, न ही उसका बुरा लगता है। बल्कि एक की प्रगति देखकर दूसरी अधिक प्रसन्न होती है।"

यह अक्षरशः सच है। मैंने बहुत बार देखा है कि अपनी प्रशंसा सुनकर नहीं बल्कि अपनी साथी की प्रशंसा सुनकर दूसरी का चेहरा अधिक चमकने लगता है, वह स्वयं भी उस प्रशंसा को दुहराने लगती है। ईसा मसीह ने तो अपने जैसा प्रेम करने को कहा था किन्तु यहाँ तो दोनों को परस्पर अपने से भी कहीं अधिक प्रेम करते हुए देखकर आनन्द होता है।

हरविलासबहन का विनोबाजी को १९६३ में लिखा एक पत्र, इस संदर्भ में पढ़ने लायक है। उन दिनों हरविलासबहन को सर्व सेवा संघ की क्षेत्रीय मंत्री बनाया गया था, इसलिए उन्हें अक्सर कान्ता से अलग होकर अकेले आना-जाना पड़ता। एक बार पट्टीकल्याणा से उन्होंने विनोबाजी को लिखा—

''कान्ता से जुदा होना पड़ता है, अच्छा नहीं लगता। हर घड़ी उसका स्मरण होता रहता है। अभी भी उसकी बहुत याद आ रही है। इसलिए उसके बारे में आपको कुछ लिखने की इच्छा हुई।

''सब जगह जय जयकार तो ध्वज का होता है, किन्तु उसे आसमान में फड़कानेवाले डंडे को कोई देखता नहीं। मुझे मंत्री बनाया गया है, उसका श्रेय तो कान्ता को है। काम उसने किया है, फल मुझे मिल रहा है। इसका उसे रत्तीभर भी रंज नहीं। मेरे प्रति उसके अप्रतिम प्रेम के कारण मेरे सम्मान से वह बहुत खुश होती है। बहुत बड़े दिल की है वह।

''आज उसके जीवन के अनेक प्रसंग नजर के सामने से गुजरते हैं। कैसी विकट प्रतिकूलताओं से अकेली लड़ी है, आगे बढ़ी है!''--फिर कान्ताबहन के संघर्षमय जीवन का और प्रचंड पुरुषार्थ का वर्णन किया है। दोनों के परिचय का इतिहास भी लिखा। आगे लिखती हैं :

''आज तो एक ही शरीर के दो अंगों के समान हो गये हैं हम। मुझे सदैव उससे प्रेरणा मिलती है। अपरिणीत रहने की समझदारी और हिम्मत उसी से मिली मुझे। उसके सत्संग में ही ब्रह्मचर्य का सूक्ष्म अर्थ समझी हूँ और ईश्वर के प्रति अधिक अभिमुख हुई हूँ।

''एकाग्रता और निपुणता से काम करने की उसकी पद्धति अनुकरणीय है। इनके कारण वह अपने हर काम में सफल होती है। जिस काम को एक बार उठाती है, सातत्य से और एकाग्रता से उसमें लगी रहती है, उसका समग्र चिन्तन भी उसी से जुड़ा होता है। अतः वह जरूर सफल होती है।

''उसके गुणों की याद मात्र से मेरा हृदय छलक जाता है। कैसे चुपचाप काम करती है वह! इतना प्रचंड कार्य करती है किन्तु अहंकार का नाम नहीं। अलबत्ता दुनिया को चकाचौंध करनेवाली चमक उसमें नहीं। इसलिए उसके कामों का और गुणों का समाज में पर्याप्त मूल्यांकन नहीं होता। बल्कि कभी तो उपेक्षा भी होती है। फिर भी जो उसे निकट से जानते हैं उन पर उसके भोले, निष्कपट व्यक्तित्व का, उसकी अद्‌भुत कार्यक्षमता का असर हुए बिना नहीं रहता। ईश्वर ने तो उसकी निष्काम कर्मनिष्ठा का अनोखा प्रतिदान दिया है। मुझे ऐसी बहन का सान्निध्य मिला है, इसे मैं अपना सबसे बड़ा सौभाग्य मानती हूँ। बाबा, कान्ता की अनुपस्थिति में उसका मधुर स्मरण हुआ, और मेरा हृदय भर आया, इसलिए आपको लिखने बैठ गयी। अपने दिल की बात और किससे कहूँ?''

पत्र का हर शब्द निर्मल प्रेम में सराबोर है। प्रेम एक-दूसरे के गुणदर्शन बिना, एक-दूसरे की अच्छाई देखे बिना, एक-दूसरे को स्वयं अपने से अधिक चाहे बिना नहीं रह सकता। ऐसे ही प्रेम से तो पुष्ट होता है एकत्व।

इस पत्र को पाकर विनोबाजी बहुत खुश हुए। उन्होंने हरविलास को लिखा: "पट्टीकल्याणा से लिखा भावभरा पत्र मिला। कान्ता के विशाल हृदय के विषय में उसमें जो भावनाएँ प्रकट की हैं, वह उसके लिए और तुम्हारे लिए भी शोभादायक हैं। मैं तुम दोनों का अद्वैत चाहता ही हूँ। लेकिन बाहर अकेली को जाना पड़ता है, उसका इलाज नहीं। उससे उस अद्वैत में कमी नहीं आयेगी, यह तो तुम्हारा पत्र ही दिखा रहा है। अद्वैत मानकर ही तो 'हरिश्चन्द्र' नाम मिला। मुझे तुम्हारे पत्र से बड़ा आनन्द हुआ।"

इस पत्र से विनोबाजी को कितना आनन्द मिला होगा, इसकी हम कल्पना कर सकते हैं। दोनों बहनों से मुख्यतः उन्हें यही अपेक्षा थी। दोनों एक होने की साधना करो, दोनों एक-दूसरे में राम देखने की आराधना करो। यही आध्यात्मिक साधना है। गुणदर्शन और गुणग्रहण इन दो बातों का विनोबाजी सदैव जप करते रहते। वे कहते ईश्वर अन्त में गुणस्वरूप है। वह अनेकविध गुणों के स्वरूप में हमारे सामने प्रकट होता है। दोषों के आवरण को हटाकर गुणों का दर्शन करें, उन्हें ग्रहण करें, यही ईश्वरदर्शन है।

विनोबाजी ने हमें ईश्वर दर्शन की एक व्याख्या दे दी। एक सरल, सुलभ कुंजी हाथ में पकड़ा दी। प्रेम का परम साक्षात्कार और ईश्वर का साक्षात्कार दोनों एक ही सिक्के के दो पहलू ही हैं न?

पहले भी हमने विनोबाजी के उस प्रवचन का जिक्र किया है, जिसमें वे कहते हैं: "**ब्रह्मविद्या का अर्थ है, आपका और मेरा दिल एक हो जाय** और आप सबके लिए मेरे मन में उतना ही प्रेम हो, जितना प्रेम मुझे अपने से है। मुझमें और दूसरे में कोई भेद नहीं, ऐसा अहसास जिसे हुआ, वही ब्रह्मविद्या को जान सका है।"

एक दिन प्रार्थना के समय विनोबाजी का यह प्रवचन पढ़कर दोनों बहनें भाव विभोर हो गयीं। उनके मन में आया कि किसी और के साथ ऐसे आत्मैक्य का अनुभव कर सकें या नहीं, लेकिन हम दोनों को आपस में ऐसा अनुभव संपूर्ण रूप से करना है। हरविलासबहन का पत्र ऐसे आत्मैक्य की झाँकी करवाता है। उसमें एकत्व का मर्म प्रकट होता है।

ऐसा एकत्व दो के बीच ही क्यों? अधिक के साथ क्यों नहीं—उनके मन में

यह प्रश्न उठता। किन्तु यह आसान तो नहीं। प्रयत्न के बावजूद सधता नहीं, अतः मंथन चलता रहता। विनोबाजी को एक पत्र में उन्होंने यह लिखा–

"कभी-कभी मन में आता है कि दोनों के बीच जैसा आत्मीय और निकट संबन्ध है, वैसा अन्य व्यक्तियों के साथ क्यों नहीं सध सकता? किन्तु व्यवहार में ऐसा होता नहीं। अन्य व्यक्तियों से भी निकट तो होते हैं, लेकिन हम दोनोंवाली बात नहीं। वैसी आत्मीयता नहीं सधती। कुछ अन्तर तो रह ही जाता है। ऐसा क्यों? सारे संबन्धों में समान आत्मीय भाव क्यों नहीं? एक प्रकार की भावात्मक समानता तो रहती है, किन्तु व्यावहारिक स्तर पर फर्क रह जाता है। क्या हम दोनों की आपसी निकटता हमें औरों से तनिक दूर रखती है? अगर ऐसा है तब तो हमारी मैत्री भी विवाह जैसी बन्धनकर्ता बन जायेगी? हमें परस्पर आत्मीय संबन्ध से पूर्ण समाधान है। किन्तु ऐसा संबन्ध अधिक के साथ नहीं सधता तो क्या यह हमारा दोष यां कमी मानी जायगी?"

मंथन चलता रहता है, व्यावहारिक प्रश्न उठते हैं। वास्तविक परिस्थिति के बारे में बहनें आगे लिखती हैं–

"दूसरे ऐसा विचार मन में आता है कि ऐसी निकटता या आत्मीयता सधने के लिए दोनों तरफ से समान प्रतिसाद चाहिए न? स्वभाव और रुचि की अनुकूलता चाहिए, एक समान जीवन दृष्टि चाहिए। परस्पर विपरीत इच्छाओं का झमेला न हो वगैरह। ये बुनियादी बातें हों तभी तो ऐसा संबन्ध पनपेगा। इसके अलावा समय और शक्ति की दृष्टि से भी मर्यादा होती है। एक साथ सब संभव नहीं। ऐसे अत्यन्त निकट संबन्ध निभाने की शारीरिक मर्यादा स्वाभाविक है। इसलिए सबसे तो उनकी आत्मीयता होती नहीं।"

फिर बहनों ने विनोबाजी से मार्गदर्शन माँगा है : "इस सब में हमारी कोई भूल तो नहीं? हम दोनों के निकट संबन्ध हमारे व्यापक संबन्धों में बाधक तो नहीं? मन में एक उलझन-सी है। आपका मार्गदर्शन हमारे चिन्तन को सही दिशा देगा।"

इस दुविधा को सुलझाते हुए विनोबाजी ने लिखा :

"आध्यात्मिक स्नेह सबके साथ साध सकते हैं। लेकिन व्यक्तिगत परिचय और तन्मूलक स्नेह का अनुबन्ध और तद्विषयक कर्तव्य भावना मर्यादित ही रह सकती है।"

इसलिए सबसे एकत्व न सधे तो उसमें न्यूनभाव रखने की जरूरत नहीं। दोनों के बीच या अधिक के साथ आत्मैक्य सधे, इसका प्रयास करते रहें। इस संदर्भ में विनोबाजी ने सामूहिक साधना की बात पुनः-पुनः याद दिलायी। यहाँ तक कह दिया कि अब व्यक्तिगत समाधि से मुझे समाधान नहीं, हमें तो सामूहिक समाधि के लिए प्रयास करना है।

मेरे खयाल से सामूहिक समाधि और समूह चित्त का विचार विनोबाजी की मानव जाति को एक अनमोल देन है और आध्यात्मिक साधना के क्षेत्र में उनका एक मौलिक अवदान है। साधारणतः तो यही कहा जाता है--"अकेले आये हैं, अकेले जाना है -- अंत में कोई साथ आनेवाला नहीं -- धर्म, अर्थ, काम के खातिर भले ही साथ चलें, किन्तु मोक्ष मार्ग पर अकेले ही चलना पड़ेगा।" इधर ये सारी बातें हैं और उधर विनोबाजी का सामूहिक समाधि का विचार है अर्थात् सामूहिक साधना करो, एक चित्त बनो, आत्मैक्य साधो।

यह साधना कितना कठिन है, हम सब जानते हैं। संसारी की बात जाने भी दें तब भी विचारों के कारण, कर्म के कारण अथवा एक गुरु के कारण इकट्ठे समूह में भी यह सहजता से सधता नहीं। उनके बीच तीव्र मतभेद होते हैं, अहं टकराते हैं और हित-विरोध कायम रहते हैं। समाधि तो दूर रही, साधारण सह-अस्तित्व निभाना भी अक्सर बहुत मुश्किल हो जाता है।

इस बारे में काफी चिन्तन और अनुभव से मैं इस निष्कर्ष पर पहुँचा हूँ कि समूह-चित्त यदि सधेगा तो वह सिर्फ प्रेम के आधार पर ही सधेगा। विचार, कर्म, गुरु वगैरह के आधार से नहीं होगा। और प्रेम भी कैसा? तुका म्हणे एका देहाचे अवयव–ऐसा प्रेम। ये दोनों बहनें जैसा अशेष आत्मीयतापूर्ण एकत्व और एक हृदय, एक चित्त साध सकी हैं, वैसे अद्वैत प्रेम के कारण ही समूह-चित्त सधेगा।

इसमें भी कई तर्क-वितर्क उठते रहते हैं। इसमें तो आसक्ति हो जायेगी, एकांगिता भर जायेगी, समग्रता में बाधा खड़ी होगी वगैरह। कभी लोग गांधीजी का एक वाक्य भी उद्धृत कर देते हैं। गांधीजी ने 'मंगल-प्रभात' में ब्रह्मचर्य के बारे में लिखा है : "जो आत्मा की, ईश्वर की मित्रता चाहता है, उसे एकाकी रहना चाहिए, अथवा समस्त दुनिया के साथ मित्रता रखनी चाहिए।"

इस वाक्य से गलतफहमी हुई है। क्या इसका अर्थ यह है कि ब्रह्मचर्य साधक के कोई आत्मीय संबन्ध न हों?

इस गलतफहमी को भी विनोबाजी ने दूर किया है। गांधीजी के उपरोक्त वाक्य

के बारे में 'सर्व सेवा संघ' के आरामबाग अधिवेशन में सवाल पूछा गया था। जवाब देते हुए उन्होंने काफी विश्लेषण किया था :

"गांधीजी के इस वाक्य का अर्थ यह नहीं है कि हमारा कोई आत्मीय मित्र ही न हो। आसक्ति युक्त मैत्री किसी खास व्यक्ति के साथ हो, तो वह विश्वमैत्री में बाधा डालती है। विश्व के साथ मैत्री का अर्थ है, निर्वैरता। किन्तु सहयोगी लोगों के साथ आध्यात्मिक आन्तरिक मंडल बनना ही चाहिए। अगर वैसा न हो सके तो वह हमारी कमी है। हम अन्योन्य अनुराग से जुड़े होते हैं, यह भी हमारी शक्ति बन सकती है।"

विनोबाजी ने एक उदाहरण दिया। उन दिनों ब्रह्मविद्या मन्दिर की एक अन्तेवासी का पत्र आया था कि फलाँ बहन आश्रम से बाहर गयी है इसलिए, "मैं उस बहन का विरह अनुभव कर रही हूँ। क्या यह योग्य है? ब्रह्मविद्या से इस बात का मेल कैसे बैठेगा?"

इसके जवाब में विनोबाजी ने उस बहन को लिखा :

"यही तो ब्रह्मविद्या है। हेरि अहरह तोमारि विरह भुवने-भुवने राजे हे! हे भगवान, इस दुनिया में तू कहाँ विराजमान है? तेरा वियोग ही विश्वरूप धरकर सामने प्रकट हुआ है। हम विश्व को नहीं, तेरे विरह को ही रात-दिन निहार रहे हैं। भगवान सृष्टि में छिपा है, और वह भी ऐसी कुशलता से कि बहुत से लोग वह है ही नहीं, ऐसा मानने लगते हैं। यह भगवान के विरह की महिमा है। इसलिए मैंने उस बहन को लिखा कि तू विरह अनुभव कर रही है, यह साक्षात् ब्रह्म विद्या ही है। तेरा विरह ऐसी बहन के लिए है, जिससे तेरा कोई सांसारिक संबन्ध नहीं। उसके विरह का तुझे अनुभव हो रहा है, इसे ही तो भक्ति कहते हैं। अतः हम सब अन्योन्य अनुराग से जुड़े रहें और अकारण विरह का अनुभव करते रहें।"

सारांश यह कि परेशान होने की जरूरत नहीं। प्रेम, उत्कट अद्वैत प्रेम द्वारा एकत्व सधे, ऐसी हमारी निरन्तर कोशिश रहे। प्रेममय एकत्व द्वारा ही सामूहिक साधना हो सकेगी, समूह चित्त साध्य होगा। प्रेम द्वारा ही एक हृदय और एकचित्त बन सकेंगे। दो दिमाग शायद एक नहीं हो सकते, किन्तु दो हृदय एक होंगे।

हमें चाहिए कि हम अपने रोज-ब-रोज के जीवन में ऐसे अद्वैत प्रेम को पाने का निरन्तर प्रयत्न करें। हमारे सहज प्राप्त सह जीवन में हमें इसकी अनुभूति करनी है। पति-पत्नी हों, दो मित्र हों, साथी कार्यकर्त्ता हों, –प्रेम द्वारा एकत्व साधने की तथा समूहचित्त बनाने की कोशिश नित्य चलती रहे। समाज-विज्ञान की दृष्टि से

निश्चित ही यह आगे का कदम है। मानव-जाति के आरोहण में अगला सोपान है। सामाजिक काम के लिए पर्याप्त ऊर्जा अर्थात् चालक शक्ति समूहचित्त से ही प्राप्त हो सकती है। व्यक्तिगत तथा सामाजिक जीवन में सामंजस्य स्थापित करने के लिए इस समूह चित्त की साधना आवश्यक है। इसीलिए मेरे खयाल से सामूहिक साधना, सामूहिक समाधि और समूह चित्त का विनोबाजी का यह विचार समाज-विज्ञान और अध्यात्म-विज्ञान की एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण खोज है। इस खोज के विकास की जिम्मेदारी हम सबकी है। प्रत्यक्ष प्रयोग से, अनुभव से, साक्षात् अनुभूति से ही इस खोज का विकास संभव है।

इन दोनों बहनों के जीवन में जो एकत्व की आराधना हुई, वह बहुत मूल्यवान है। विनोबाजी के दिल में इस बात का बड़ा गौरव था। अनेक बार पत्रों में या बातचीत में वे बहुत स्नेह से इसका उल्लेख करते थे। पवनार में १९७३ के महिला सम्मेलन में बोलते हुए उन्होंने कहा : "हरिश्चन्द्र को जानते हो न? जानते हो कि नहीं? एक है हरविलास और एक है चन्द्रकान्ता। इन दोनों के नाम हमने एक कर दिये हैं, हरिश्चन्द्र। दोनों एक-दूसरे को उत्तम मदद करती हैं। दोनों की शादी मैंने कर दी है। दोनों ब्रह्मचारिणी हैं। गुजरात में उनका जीवन आदर्श है। उनका आध्यात्मिक जीवन है।"

एक आदर्श जुगलजोड़ी के रूप में विनोबाजी इन बहनों का उदाहरण अक्सर देते रहते। विनोबाजी ने उन्हें साधना के लिए एक जीवनमंत्र दिया था : "दोनों के एकत्व निश्चय में ब्रह्मविद्या छिपी है।" ईश्वर की कृपा से और विनोबाजी जैसे परम संत के आशीर्वाद से दोनों बहनों के जीवन में ऐसा एकत्व अशेष रूप से सधा है, इसका मैं साक्षी हूँ। मेरे हिसाब से इस एकत्व का हमारे जीवन में बहुत महत्त्व है। जब से मेरी समझ खिली, तभी से यह मेरा सपना था। इन बहनों के एकत्व में मैंने अपने सपने को साक्षात् देखा। इस एकत्व में सराबोर होने का सौभाग्य मुझे भी मिला। अशेष आत्मीयता का अनुभव मैंने भी किया।

इन बहनों से मेरा क्या संबन्ध है? हमारे संबन्ध का स्वरूप क्या है? हमने संकल्पपूर्वक इस सहजीवन का आयोजन नहीं किया था। बिलकुल अनायास, प्रवाह प्राप्त परिस्थिति में हमारे सह जीवन का आरम्भ हुआ और विकसित होता रहा। मैंने इस सह जीवन से आनन्द पाया है, इसे समझा है और सभानता से इसका चिन्तन भी किया है। मेरे चिन्तन और मेरी अनुभूति का निष्कर्ष नख-दर्पण में समाज के समक्ष रखना चाहता हूँ। मैंने जो स्पष्टता से समझा है, उसे वैसी ही स्पष्टता से कहना चाहता हूँ।

विवाह की भूमिका में नहीं, या अन्य किसी यौन संबन्ध से नहीं, सेक्स की भूमिका से नहीं परन्तु ब्रह्मचर्य की भूमिका पर और यौन-निरपेक्ष मैत्री की भूमिका पर स्त्री-पुरुष संबन्ध में आत्मीयतापूर्ण एकत्व की गुञ्जाइश कितनी है? मुझे ऐसे लगता है कि इसके लिए सर्व प्रथम यह जरूरी है कि दोनों मुग्धता की अवस्था को पार कर जायें। और यह मुग्धता सिर्फ उम्र की नहीं किन्तु ऐसी मुग्धता जो स्त्री-पुरुष के बीच साधारणतः अलगाव और दूरी के बावजूद एक-दूसरे को आकर्षित करने की, एक-दूसरे को प्रभावित करने की, एक-दूसरे के सामने सुन्दरतम, श्रेष्ठतम दीखने की वृत्ति होती है। ऐसी मुग्धता को पार किये बिना सेक्स-निरपेक्ष संबन्ध सहजता से पनप ही नहीं सकता। क्योंकि तब तक स्त्री-पुरुष दोनों लिंग भेद से ऊपर उठकर एक-दूसरे को मित्र रूप में पहचान ही नहीं सकते।

इस मुग्धता को पार न किया हो तो धर्म के भाई-बहन, माँ-बेटा, पिता-पुत्री इत्यादि संबन्धों का आरोपण दोनों के लिए दम्भ और आत्मवंचना बन जायगा। दोनों के संबन्ध संपूर्ण तनावयुक्त भी नहीं होंगे, सहज भी नहीं हो सकेंगे। यौन उद्वेगों को जानकर, समझकर शान्त किये बिना यौन-निरपेक्ष स्त्री-पुरुष संबन्ध सहज नहीं बन सकते। वे संबन्ध स्त्री-पुरुष के यौनभाव से ऊपर नहीं उठ सकते। आत्मीयतापूर्ण एकत्व में ये विक्षेप पैदा करेंगे, बाधक बनेंगे।

एक बात और, दोनों के मन में संपूर्ण स्पष्टता हो कि हमें सेक्स-जीवन कतई नहीं चाहिए। दोनों में इतनी कूवत हो कि वे मानव-मन की मर्कट लीलाओं को ठीक-ठीक पहचान लें, जिससे जाने-अनजाने उनके उत्पातों के वश न हो जायें। पुरुष में खास कर अपने प्रभुत्व की लालसा, अपनी सर्वोपरिता का अहंकार बिलकुल निःशेष हो जाना चाहिए। स्त्री में खास रूप से उसकी चंचलता और कामोत्तेजक मोहकता निःशेष हो जानी चाहिए। स्थूल मातृत्व की कामना कहीं जरा भी किसी आवरण में छिपकर बैठी न रहे। इसके साथ यह जरूरी है कि दोनों में किसी उच्च ध्येय को पाने की अभीप्सा हो। **परम को पाने की लगन होगी, तभी पामर वृत्तियों को नामशेष करने की शक्ति प्राप्त होगी।**

यौन-निरपेक्ष स्त्री-पुरुष मैत्री संबन्ध में आत्मीयतापूर्ण एकत्व की साधना यदि करनी हो तो वह ऐसी जिम्मेदारी से, ऐसी सज्जनता से, संपूर्ण सभानता और स्वस्थता से करनी चाहिए, ऐसा मैं अपने चिन्तन-अनुभव से समझ सका हूँ।

हालाँकि हमारा सह जीवन तो बिलकुल ही सहज चला और विकसित हुआ। उसके मुख्य दो कारण हैं। पहला कारण तो यह कि दोनों बहनें विनोबाजी के

शब्दों में 'सम्यक् व्यवसित' हैं, अर्थात् दोनों के चित्त में ब्रह्मचर्य का सम्यक् निश्चय हो चुका था। उनके लिए और कुछ सोचना बाकी नहीं रह गया था।

दूसरा कारण कि दोनों के सहजीवन में मेरा प्रवेश बिलकुल अनायास और एक अलौकिक आध्यात्मिक घटना के निमित्त हुआ। जिसने मेरे क्षितिज को व्यापक बनाया और जिससे मेरे जीवन को परम तत्त्व का स्पर्श हुआ। खास बात कि मुझे इन दोनों बहनों में स्त्री के पवित्रतम स्वरूप के ही दर्शन हुए, उनकी तरफ विपरीत भाव कभी भी कतई नहीं जागा। बल्कि उनके सहारे मेरी अपनी ब्रह्मचर्य साधना के अधूरेपन की पूर्ति आसानी से कर सका।

तीसरा कारण यह कि हम तीनों ने विनोबाजी जैसे महापुरुष और उनके महान् आन्दोलन को अपना जीवन समर्पित किया है। अपने जीवन में विनोबाजी के विचारों और कार्यों के साथ हम इतने ओतप्रोत रहे कि अन्य कुछ सोचने का हमारे पास अवकाश ही नहीं था।

इन विशेष अनुकूलताओं के कारण हमारी सामूहिक साधना सहज रूप से चलती रही। हमारा सह जीवन श्रेयस्कर तथा आनन्दमय बना रहा। इसे हम ईश्वर की परम कृपा मानते हैं।

हमारे सह जीवन को दादा धर्माधिकारी बड़े वात्सल्य से निरखते और हम पर प्रेमभरे आशीर्वाद बरसाते। यौन-निरपेक्ष स्त्री-पुरुष सहजीवन का सुभग चित्र दादा ने समाज के समक्ष रखा है। इसलिए हम उनके अत्यंत स्नेहपात्र बने। हरिश्चन्द्र लिखित हिन्दी पुस्तक 'लोकयात्रा' की हिन्दी-अंग्रेजी प्रस्तावना में उन्होंने इसका उल्लेख भी किया है। वे लिखते हैं :

"स्त्री और पुरुष को अभी यह समझना है कि उनके बीच आत्मीयताभरा संबन्ध सेक्स-आधारित या जन्मगत ही हो, यह आवश्यक नहीं है। स्त्री और पुरुष का एक यौन-निरपेक्ष स्नेह-संबन्ध भी हो सकता ह। स्त्री हमेशा पुरुष की जननी, सहोदरा, तनया और पत्नी ही नहीं है। इन संबन्धों से परे भी स्त्री-पुरुष के बीच एक स्नेह-संबन्ध होता है। वह स्नेह-संबन्ध न तो रक्त-संबन्ध पर आधारित है, न यौन-संबन्ध पर आधारित है। स्नेह और कामवासना कभी एक साथ हो नहीं सकते। स्त्री फिर भी पुरुष की माता, भगिनी और पुत्री तो रहती है। परन्तु इन सभी संबन्धों से परे ऐसा यह स्नेह-संबन्ध इतना ही आत्मीयता से भरा है, जितना वह पवित्र और पावनकारी है। मानव-संबन्धों का मूल पोत इससे बदल जाता है, नातेदारियों की भूमिका और आशय बिलकुल बदल जाता है, तथा

वैश्विक संस्कृति का एक नया युग शुरू होता है। इस नये रिश्ते को चि० कान्ता-हरविलास ने अपने जीवन में चरितार्थ किया है। उस नवीन नाते का परिमल उनकी इस पुस्तक को भी सुरभित करता है।''

दादा के इस अनमोल आशीर्वाद के लायक बने रहने की हमारी शक्ति और समझदारी ईश्वर बनाये रखे।

आज संपूर्ण विश्वास से यह कह सकता हूँ कि जीवन का असली आनन्द अशेष आत्मीयतापूर्ण मैत्री-सम्बन्धों में है। दोनों बहनों की अद्वैत आत्मीयता देखकर, उसके अनुभव में मैंने जीवन का अमृत पाया है। ऐसी आत्मीयता साध्य करने की मेरी लगन भी इससे तीव्र हुई है। यह साधना मुझे अतिशय आनन्ददायी लगती है।

जीवन में कभी पूर्णविराम नहीं होता। जीवन के क्षितिज सदैव विस्तरित होते रहते हैं। यह तो पर्वतारोहण की तरह है। एक शिखर पर पहुँचते ही उसके ऊपर का शिखर दृष्टिगोचर होने लगता है। इसी तरह अशेष आत्मीयता की यात्रा का भी कोई अन्त नहीं। उसकी नितान्त गहराई और संपूर्ण सूक्ष्मता हासिल कर ली है, ऐसा कभी नहीं कह सकते। सिर्फ इतना ही कह सकते हैं कि हमने उसकी प्रक्रिया को आत्मसात् कर लिया है।

यह प्रक्रिया अत्यन्त कठिन है। अशेष रूप से अनावृत होना कभी-कभी अपने हाथों अपनी खाल उधेड़ने के समान कष्टदायी होता है। यह स्थूल साधना का विषय नहीं है। यह अनुभूति का विषय है, साक्षात् जीवन-कला का विषय है। जीवन-सौन्दर्य रहस्य का आकंठ पान करने की सच्ची लगन होगी, तभी यह यात्रा भी संभव होगी। और तब यह यात्रा तनिक भी कष्टदायी नहीं लगेगी, बल्कि उसका चप्पा-चप्पा आनन्द में सराबोर महसूस होगा। प्रसव-वेदना के बिना क्या कोई नवजन्म संभव है? किन्तु कोई भी माँ उसे कब वेदना मानती है? वह तो उस वेदना को भी खुशी-खुशी झेलती है। हमें अपने स्वयं के ऐसे नवजन्म का अनुभव करना हो, तो दो-चार-छह या एकआध भी निकट के मानव-संबन्ध में ऐसी अशेष आत्मीयता की अनुभूति अनिवार्य है। **मै इसे आनन्दचर्य कहता हूँ, यही अध्यात्म है और यही ब्रह्म की चर्या है।**

●

१७

घड़ीभर का संग, आत्मा का रंग

सात-साढ़े सात महीने पहले ऋषिकेश में गंगा किनारे इस शब्दांकन का आरम्भ हुआ था, आज यहाँ पिंडवल की पहाड़ियों में पूरा हो रहा है। वहाँ पन्द्रह दिन में सघन और एकाग्र लेखन के कारण करीब आधा काम तो हो चुका था। इसे समाप्त करने में यहाँ की अनेकविध जिम्मेदारियों के बीच समय और एकाग्रता ढूँढ़ने-चुराने में पूरे तीस-पैंतीस दिन लग गये।

यह लेखन कार्य मेरे लिए बहुत आनन्ददायी और बोधदायी रहा। शुरू किया तब ऐसी कल्पना नहीं थी कि यह लेखन मेरे लिए जीवन का चिरस्मरणीय अनुभव बन जायेगा। समाज को कान्ताबहन का परिचय करवाना है, यह सोचकर शुरू किया था। साथ में कुछ अध्ययन भी होगा। इस चरित्र-लेखन का स्वरूप परिचयात्मक अध्ययन जैसा होगा, ऐसा मैंने कहा था। किन्तु यह अध्ययन इतने गहन स्वाध्याय का रूप लेगा, इसकी तो मुझे कल्पना ही नहीं थी। जैसे-जैसे लिखता गया, विषय वस्तु में अधिक डूबता गया, वैसे अधिक गहरे जाने की जरूरत महसूस हुई। कई चीजों के बारे में मैं पूरा जानता भी नहीं था, ऐसा देखा। साथ जीते हैं रात-दिन, फिर भी हमारा आपसी परिचय सतही होता है। बाह्य रूप से निकट होते हैं, फिर भी अन्तर्तम की पहचान अधूरी होती है। पहले जिन बातों को समझ नहीं पाया था, पकड़ नहीं सका था या ध्यान में नहीं आयी थीं, इसे लिखते-लिखते ग्रहण कर सका। चरित्र-लेखन और परिचय भी उपलब्ध सामग्री के पर्याप्त अध्ययन-चिन्तन बिना नहीं लिखा जा सकता, यह स्पष्ट हुआ। अतः सामग्री में डूबना पड़ा। इतनी गहराई में जाना पड़ा। हर अध्याय लिखने से पहले उससे संबन्धित तथ्यों के संचय में और अभ्यास में मैंने कोई कसर नहीं रखी। जैसे-जैसे लिखता गया, मेरा रस बढ़ता गया, और लेखन कार्य स्वाध्याय बनता गया।

तुमुल संघर्ष, प्रचंड पुरुषार्थ और एकनिष्ठ आध्यात्मिक साधना की यह कथा है, एकत्व-आराधना की यह कथा है। इस आलेखन के बारे में मेरे मन में एक लक्ष्य निर्धारित हुआ था कि मैं इसे अत्यन्त प्रेमपूर्वक और विचारपूर्वक करूँगा। यह सोचकर संतोष होता है कि मैं अपने इस लक्ष्य को साध्य कर सका हूँ। जीवन कथा के आलेखन में प्रेम का प्राधान्य है तथा तथ्यों के सार-ग्रहण में विचार का। इसी तरह जीवन को समझा-बूझा जा सकता है।

इस विवरण का अधिकतम हिस्सा कान्ताबहन के अपने शब्दों में होगा, ऐसे मैंने कहा था, वह भी संभव हुआ है। आत्मकथनात्मक सामग्री मेरी धारणा से अधिक मिली और मात्रा तथा गुणात्मक दृष्टि से भी विपुल प्रमाण में मिली। इसका श्रेय हरविलासबहन को है। डायरियाँ, पत्र, लेख, नोंध वगैरह काफी उपयोगी साबित हुए। मैंने उनका काफी उपयोग भी किया।

यह कथा है एकत्व की आराधना की। यह एकत्व मुख्यतः तीन क्षेत्रों से संबन्धित है। **कर्म को विकर्म में पलटनेवाले अपने काम के साथ का एकत्व, द्वैत में से अद्वैत साध्य करनेवाला दोनों बहनों का आपस का एकत्व, और जीवन-मर्म का साक्षात्कार करानेवाला परम शक्ति के साथ का एकत्व**। मुख्य रूप से इस त्रिविध एकत्व की आराधना की कथा यहाँ कही गयी है।

जब लिखना शुरू किया, तब मेरे मन में तनिक हिचक थी। मैंने अब तक जो कुछ लिखा, लगभग सारा विनोबाजी और विनोबाजी के आन्दोलन को समर्पित रहा है। जो कुछ पढ़ना-लिखना होता है वह 'भूमिपुत्र' और 'यज्ञ प्रकाशन' को केन्द्र में रखकर होता है। इसलिए व्यक्तिगत जीवन चरित्र का यह प्रोजेक्ट कुछ अलग-सा लगता था। यह कोई लेख लिखने जैसी बात तो थी नहीं – खासे समय और शक्ति की जरूरत थी। इसलिए जरा हिचक थी मन में।

किन्तु कैसा आश्चर्य कि यह पुस्तक प्रारम्भिक हिस्से के अलावा विनोबा, विनोबा-विचार और विनोबा आन्दोलन की कथा बन गयी है। पूरी पुस्तक में विनोबा व्याप्त हैं। दोनों बहनें विनोबा के साथ और उनके आन्दोलन के साथ इतनी ओतःप्रोत हो गयी हैं कि उनकी जीवन कथा विनोबा को छोड़कर लिखी ही नहीं जा सकती। विनोबा के मार्गदर्शन में ही वे अपना सामाजिक कार्य कर रही हैं। विनोबा के चरणों में समर्पित होकर दोनों ने कह दिया था कि "हमारे इस माटी के पिंड को कुम्हार-चाक पर चढ़ाकर आप अपना मनचाहा आकार दे दीजिए – हम तैयार हैं।" वे मानती हैं कि विनोबा और विनोबा-विचारों ने उनका अधिकांश व्यक्तित्व गढ़ा है।

विनोबाजी ने उन्हें व्यापक विचार-प्रसार का कार्य सौंपा था। उसी कार्य को ये दोनों अपनी शक्ति से करती रही हैं। आज भी विनोबा-जन्म शताब्दी निमित्त प्रकाशित होनेवाले ग्रन्थ-संपुटों के ग्राहक बनाने में जी-जान से लगी हैं। ग्रंथ हिन्दी में है, कीमत है **तीन** हजार इसलिए काम आसान नहीं। किन्तु बहनें कहती हैं जिन महापुरुष ने उनका जीवन गढ़ा, उनके विचारों के बीज-संगोपन का काम तो करना ही है। पिछले पाँच-छह महीनों से अत्यन्त नाजुक तबियत होते हुए भी कान्ताबहन के मन में यही लगन है। उनका चिन्तन सर्वस्व इसी में लगा है।

इसलिए एकत्व की आराधना की प्रस्तुत कथा विनोबाजी से ओतप्रोत है। मुझे इस बात की खुशी है कि २५ साल पहले 'भूमिपुत्र' में छपा संक्षिप्त परिचय जैसे विनोबा और उनके आंदोलन के दृष्टिकोण से लिखा गया था, वही दृष्टिकोण इस बृहद् परिचय में भी अनायास आ गया है। आज यदि किशनसिंहभाई होते तो कान्ताबहन के चरित्र के साथ न्याय नहीं हुआ, यह उनकी नाराजी भी मिट जाती।

विनोबाजी इस जीवन कथा-आलेखन के ताने-बाने में गुँथे हुए हैं, इसके हर पन्ने में विनोबा-विचार और आंदोलन की झलक अनायास मिलती रहती है, इस बात की मुझे खुशी है। गांधी-विनोबा-विचार की उपासना का एक सगुण-साकार चित्र इसमें उभरता है। गांधीजी की मृत्यु के बाद विनोबाजी के आवाहन से प्रेरित सामाजिक क्रान्ति के कार्य में निमग्न हमारी नयी पीढ़ी ने जो जी-जान से प्रयत्न किये हैं, यहाँ उसकी झाँकी मिलती है। लिखते-लिखते मुझे अहसास होता रहा कि भले ही यह सब कान्ताबहन के निमित्त लिखा जा रहा है, परन्तु यह तो गुजरात की हमारी विनोबा-प्रेरित जमात की आकांक्षा-अरमानों की, पुरुषार्थ-प्रयत्नों की रूपरेखा प्रस्तुत करनेवाला छोटा-मोटा दस्तावेज है।

मैं नहीं जानता कि हममें से और कौन अपने संस्मरण या अनुभव लिखेगा। किन्तु इतना मैं निःसन्देह कह सकता हूँ कि इसमें जो भावनाएँ, विचार और कार्यों के आलेख दीखते हैं, वह हमारी छोटी-सी जमात की लगभग सर्व साधारण भावनाओं, विचारों और कार्यों का आलेख है। हमारे अन्य साथियों के जीवन में भी कमबेसी ऐसा ही सब हुआ है। कान्ताबहन के जीवन में कुछ तत्त्वों का प्रकर्ष दीखता है और अध्यात्म का पहलू भी विरल, विशेष उभरा है। विनोबाजी ने उन्हें वह भी जन्मघूँटी में पिलाया है। **अध्यात्म बिना क्रान्ति नहीं, क्रान्ति बिना अध्यात्म नहीं।**

इसलिए इसे शब्दबद्ध कर सका, इसका आनन्द है, संतोष है। इस आलेखन में

मैंने मुक्त शैली अपनाना मुनासिब समझा, जिससे साधारण पाठक को कथा-प्रसाद, कथानन्द मिलता रहे। सूत्रात्मक के बदले सरल विवरणात्मक अभिगम मैंने अपनाया है, संक्षेप के बदले समग्रता का विशेष ख्याल रखा है, ताकि गांधी-विनोबा युग की तासीर समाज के सामने प्रस्तुत हो जाये।

हर पीढ़ी को चाहिए कि वह अपना संचित नयी पीढ़ी को सौंपकर जाये। वसुन्धरा बहुरत्ना है। हर जमाने में कुछ लोग तो ऐसे पैदा होंगे ही, जो चौकठे में फिट नहीं होंगे। वे तो अपनी पगडंडी खुद बनायेंगे। व्यापक आन्दोलन हो या न हो, फना होनेवाले तो निकलेंगे ही। आज किसी आन्दोलन का नामोनिशां नहीं। फिर भी समाज को अपने कैरियर या घिसे-पिटे पुरुषार्थ से नहीं बल्कि अपने उत्तुंग आरोहणों से समृद्ध करने की तमन्ना रखनेवाले नव जवान निकले हैं। वे अपने-अपने ढंग से समाज को समृद्ध और संपन्न करने में जी-जान से जुटे हैं, लोकात्मा की आराधना कर रहे हैं। इसमें से उन्हें भी शायद कुछ पाथेय मिल जाये।

कोई पीढ़ी अपने 'अनुभवों' का बोझ नयी पीढ़ी पर न लादे। क्योंकि वे तो उसे अनुभव करनेवाली पीढ़ी की अपनी शक्ति, क्षमता, सामयिक परिस्थिति, दृष्टिकोण, परिप्रेक्ष्य, पर्‌स्पेक्टिव आदि के कारण सीमित और मर्यादित रहेंगे। उन मर्यादाओं को नयी पीढ़ी पर नहीं लादना चाहिए। लेकिन साथ ही किसी पीढ़ी को अपने प्रयासों और तथ्यों से नयी पीढ़ी को वंचित भी नहीं रखना चाहिए। जैसे विज्ञानी अपने प्रयोग और तथ्य समाज के सामने रख देता है, वैसे ही समाज सेवकों को भी समाज-विज्ञान के अपने प्रयोग और तथ्य समाज के समक्ष रख देने चाहिए। यह जीवन तो आलम्पिक टार्च जैसा है। टार्च को बुझने दिये बगैर एक हाथ से दूसरे हाथ में पकड़ाना है।

यह लिखना शुरू किया, तब मुझे लगा था कि कान्ताबहन की जीवन-कथा में हरविलासबहन के बारे में सहज ही कुछ कुछ आ जायेगा, एकआध अध्याय शायद! आज मुझे अपनी अल्प-मति पर हँसी आती है। उनकी अभिन्नता का यथोचित खयाल मुझे नहीं था। उनकी एकत्व की आराधना की गहराई का पूरा अंदाज मुझे नहीं था। मैं कहता जरूर था कि जुगल जोड़ी **'दो देह एक प्राण'** हैं। किन्तु इन शब्दों के भीतरी तह तक मैं कहाँ पहुँच पाया था?

लिखते-लिखते समझ में आया कि इनकी एक अलग कथा संभव ही नहीं। जो लिखा जायेगा, वह साझे की कथा ही होगी। पवित्र संगम होने के बाद दो प्रवाह एक-दूसरे में ओतप्रोत हो जाते हैं, उन्हें जुदा कैसे कर सकते हैं?

फिर भी सोचता था कि जहाँ कान्ताबहन की आध्यात्मिक अनुभूतियों की बात आयेगी, वहाँ साधना पथ पर तो उनकी अकेली की ही यात्रा चलेगी न? किन्तु जैसा हमने देखा, कान्ताबहन ने विनोबा को क्या लिखा–

"अचानक जो कुछ हुआ, उसके कारण विशेष परिस्थिति खड़ी हुई है। उन दिनों मेरी व्याकुलता इतनी अधिक बढ़ गयी थी कि मैं हरविलास से कुछ दूर-सी हो गयी थी... किन्तु हमें उस मार्ग पर साथ ही जाना है--ईश्वर ने हमारी स्नेह-गाँठ इतनी मजबूती से बाँधी है कि अब वह स्नेहगाँठ हम छोड़ना चाहें तो भी हमसे छूटेगी नहीं।"

विनोबाजी ने यथार्थ ही कहा : "अभी तक इस प्रकार की साधना दुनिया में कम ही हुई है ... तुम दो साधिकाएँ मिलकर हरिश्चन्द्र बनती हो। मेरी दृष्टि से सब क्रान्तिकारी तत्त्व इसमें समा गये हैं।"

अतः यह जो कथा लिखी गयी है, वह सही माने में भगिनीद्वय हरिश्चन्द्र की कथा है। इसमें कहीं नाम अलग भी आये हों तो भी उस नाम को हरिश्चन्द्र ही समझा जाय। जैसे कान्ताबहन को एक बार 'जयहिन्द' दैनिक में हर शब्द राम-राम ही दीखा था, वैसे मुझे यहाँ दोनों के अलग नाम में भी हरिश्चन्द्र ही अभिप्रेत है। आशा करता हूँ कि अब तक पाठकों की आदत भी मेरे जैसी हो गयी होगी कि वे भी कान्ता-हरविलास की जगह 'हरिश्चन्द्र' पढ़े।

अध्यात्म में लूले-लँगड़े की जोड़ी नहीं बनती, **'पूर्ण अदः, पूर्ण इदम्'** ही होते हैं। दोनों दृष्टिवान और दोनों स्वनिर्भर। दोनों बहनों के लिए यह सहज, और अनायास है कि वे एक-दूसरे के ध्वज का दंड बन जायें, या जरूरत पड़ने पर, 'एक प्रकट तो दूसरी गुप्त सरस्वती' की भूमिका अपना लें। उसमें समर्पण का आयाम भी नहीं है। ऐसे एक अनुपम एकत्व की आराधना की यह कथा है।

परम शक्ति से एकत्व की आराधना की ओर साक्षात्कार की कथा बहुत विस्तार से कही गयी है। उसका तो मैं साक्षी था। किन्तु आज खयाल आता है कि उस आध्यात्मिक साधना को मैं अपनी अल्प बुद्धि के कारण बहुत कम समझ पाया था। उसकी गहराई, उसकी ऊँचाई, उसकी सूक्ष्मता और गहनता मेरे पल्ले नहीं पड़ी थी खास। किन्तु निश्चित दस्तावेजी सबूत रूप डायरियाँ, पत्र, घटनाओं की नोंध वगैरह सामग्री जैसे-जैसे मैं आत्मसात् करता गया, वैसे मुझे नूतन दर्शन होता गया, नये-नये सूचितार्थ समझता गया, मेरी दृष्टि के सामने नये क्षितिज खुलते गये। बिलकुल नये परिप्रेक्ष्य में और नये परस्पेक्टिव से मैं संपूर्ण साधना-प्रक्रिया

को देखता गया, उसका मर्म समझता गया। इस संदर्भ के विनोबाजी के पत्र मैंने पहले भी पढ़े थे, किन्तु नयी भावस्थिति और नयी चित्तावस्था में वे पत्र भी मेरे सामने नये अर्थ और नये मर्म लेकर उपस्थित हुए।

यह सब विस्तार से पुस्तक में लिखा है। कान्ताबहन स्वयं तो कुछ कहती नहीं। किन्तु १९६७ में ब्रह्म विद्या मन्दिर की उषाबहन ने उनसे 'नाम स्मरण' के बारे में पूछा था। कान्ताबहन ने उसके जवाब में **नाम स्मरण** के बारे में लिखा था और उसके अनुसन्धान में इस घटना का जिक्र भी किया था–जो स्वरूप में पूरी बात कहता है–

''मैं बिलकुल ही बिस्तर से लगी थी। एक दिन कानों में भनक पड़ी 'मानसिक' हैं।' सख्त आघात लगा। किन्तु मैं किससे कहूँ? कौन मानेगा मेरा? दुनिया को कैसे बताऊँ? तब फिर रामजी की याद आयी–जिन्दगी में कभी नहीं आयी थी वैसी आर्तताभरी। उस स्थिति का वर्णन करने की शक्ति मुझमें नहीं। 'हरि तुम हरो जन की भीर' इस भजन में वह आर्तता शाश्वत रूप से सहेजी हुई है।

और उसकी कृपा बरसी। पावन स्पर्श हुआ। समग्र अस्तित्व विगलित हो जाये और फिर भी अस्तित्व कायम रहे। 'उसमय' हो जाये। सभी शून्य, सभी उससे सराबोर!

कहीं चैन नहीं। चार-छह महीने हर पल ऐसा पागलपन रहा। उस दिव्य दर्शन का ही चिन्तन-स्मरण, उसी की अदम्य अभीप्सा। गिरि-कन्दराओं में दौड़ जाऊँ? सागर में कूद पड़ूँ? वन-उपवन में ढूँढ़ती फिरूँ? इस देह की कैद से मुक्त हो जाऊँ? जिससे ज्योति से ज्योति मिल जाये।

धीरे-धीरे समझ के पट खुले। बाबा का मार्गदर्शन भी मिलता रहा। वह तो सर्वत्र है। उसे पकड़े रखने की जरूरत नहीं। निरन्तर सर्वत्र साक्षात् हाजिर है। अनुभूति के पश्चात् सतत उसके स्मरण में जीना है। निरन्तर उसके संग-साथ की ऊष्मा का अनुभव करना है। अनेकविध संस्कारों में से छूटना है। वे संस्कार भी उसकी कृपा से क्षणभर में अलोप हो सकते हैं। किन्तु फिर हमारे अपने पुरुषार्थ के लिए अवकाश कहाँ रहे? उसके स्मरण से ही हम स्वयं को निरन्तर माँजते रहें, साफ करते रहें और वह बुलाये तब 'ज्यों की त्यों' उसके चरणों में धर दें।

इस तरह उसके सतत स्मरण के साथ और उसके संग की ऊष्मा का निरन्तर अनुभव करते जीवनयात्रा सहज रूप से चल रही है। अब कोई अनिश्चय नहीं

रहा, कुछ डाँवाडोल नहीं। फिर भी जब तक यह देह है तब तक संस्कारों के घेरे रहेंगे ही। कुछ संस्कार छूट गये हैं, कुछ कायम हैं। किन्तु अब उनका कोई बोझ नहीं, बन्धन नहीं।

क्या साक्षात्कार से संस्कार लुप्त होंगे — यह प्रश्न हमेश उठता है मन में। अपने प्रत्यक्ष अनुभव से समझा है कि इसका उत्तर 'हाँ' भी है और 'ना' भी। मैंने संस्कारों को जड़मूल सहित लुप्त होते देखा, और फिर जागृत होते भी देखा है।"

दर्शन के ठीक बाद के दिनों में कान्ताबहन के व्यक्तित्व में दृष्टिगोचर परिवर्तन के बारे में हरविलासबहन ने एक पत्र में विनोबाजी को लिखा था :

"इन अनुभूतियों के पहले कान्ता में भय बहुत था। भूत-प्रेत-चोर वगैरह से बहुत डरती। अब इस भय की ग्रन्थि से मुक्त हुई है। दूसरा इसके पहले उसमें आसक्ति थी, वह भी बहुत कम हो गयी है। सत्यनिष्ठा बहुत बढ़ी है, मजाक में भी कोई असत्य बोले तो वह सहन नहीं कर सकती। एकदम सरल, निखालस, नम्र दिलवाली बन गयी है। कभी तो ऐसी भोलीभाली लगती है कि अत्यन्त प्यार उमड़ता है, और कभी तो जैसे कोई नन्हा निर्दोष बालक ही हो।"

प्रारम्भिक साधनाकाल के अर्से में कान्ताबहन की पुनीत और आह्लादक भावावस्था का मैं भी साक्षी हूँ। उनकी तब की स्थिति के स्मरणमात्र से आज भी रोमाञ्चित हो जाता हूँ। उनके व्यक्तित्व का मानो आमूल रूपान्तर हो गया था। पुराने संस्कारों से संपूर्ण मुक्त होकर नव-जन्म ही पाया हो। हर क्षण की उनकी ईश्वरमयता अत्यन्त हृदयस्पर्शी थी। अधिकतर अत्यन्त भावुक और बालवत् अवस्था में रहती। स्वभाव एकदम कोमल और मृदु हो गया था। उनकी सूक्ष्म संवेदना को तनिक-सी ठेस भी लगे तो उनसे सहन न होती और जब घंटों-घंटों रामनाम का जप करती हों, तब तो उनकी अवस्था अत्यन्त ऋजु, नम्र और भावमय हो जाती।

ऐसी स्थिति शुरू में चार-छह महीने बहुत सघन रूप से रही। बाद में दो-तीन वर्ष तक भी कमबेसी ऐसी ही रही। तब सारे पूर्व संस्कार ईश्वर कृपा से लुप्त हो गये थे। किन्तु बाद में कुछ पूर्व संस्कार धीरे-धीरे उभरे थे।

अलबत्ता, व्यक्तित्व का अमुक रूपान्तर तो जड़मूल से हो गया और वह अभी भी कायम रहा है। प्राणीमात्र एक है, ऐसी साक्षात् अनुभूति। जीवन के बारे में एक स्वस्थ, अचल समझ! पूर्ण आत्म-समाधान। अमिट श्रद्धा। भक्तिमयता। अधिकतर प्रश्नों के आर-पार देखने की क्षमता। हर बात का गहरा ज्ञान नहीं,

किन्तु जरूरतभर आवश्यक ज्ञान का अभाव भी नहीं। संपूर्ण आत्मनिर्भरता—ऐसे कई विशेष गुण उनके व्यक्तित्व के कायमी अंग बन गये हैं।

फिर भी पूर्व संस्कार बिलकुल ही लुप्त हो गये हैं, ऐसा भी नहीं कह सकते। संस्कार अनेक होते हैं और गहरे भी। पूर्व जन्म के संस्कार, जन्मजात संस्कार, माता-पिता के संस्कार, परवरिश के संस्कार, आसपास के वातावरण जन्य संस्कार, माहितीजन्य और अभ्यासजन्य संस्कार वगैरह। सारे संस्कारों से समूचा मुक्त व्यक्ति तो मैंने देखा नहीं। कभी न कभी, कोई न कोई संस्कार उभरता तो है ही। इसलिए उसका सार यही दीखता है कि जब तक देह है, तब तक कम ज्यादा संस्कार हैं। देहधारी को संस्कारों से ऊपर उठने का प्रयास करते ही रहना है। अन्त में तो इस देह के साथ ही सारे संस्कार लुप्त होंगे। विनोबाजी ने अपने शिवपुरी के प्रवचन में पाँचवीं भगवत्कृपा की सिद्धि के बाद भी अन्तिम करुणादि सिद्धि की बात कही है, उसमें इसी बात की ओर अंगुलि निर्देश लगता है।

परन्तु अध्यात्म-मार्ग के ज्ञानियों से जाना है कि आत्म-साक्षात्कार हो जाये तो कर्म बन्धन में से मुक्ति मिल जाती है। ऐसे साक्षात्कार के बाद भी प्रारब्धक्षय तक जीवन चलेगा, लीलारूप कर्म चलेगा, तब कई संस्कारों का भी असर होता रहेगा। फिर भी वह देहधारी कर्म अथवा संस्कार जन्य व्यवहार से लिप्त नहीं होगा।

कान्ताबहन की आध्यात्मिक साधना के बारे में मेरी समझ इसे लिखते-लिखते काफी गहरी और पक्व बनती गयी है। परम एकत्व की आराधना की यह कथा इस शब्दांकन को भी दिव्य स्पर्श करा गयी है।

इस लेखन कार्य के अर्से में मेरी एक विशेष अनुभूति का जिक्र करना चाहूँगा। साधारणतः शब्द के हर उपासक को इसका अनुभव हुआ है कि जब लेखन में हम तल्लीन हो जाते हैं, तब बहुत कुछ नया-नया भीतर से उगता है, मन में न हो, चित्त में न हो ऐसा भी बहुत सा कलम से झरता है। मुझे भी इसका अनुभव था।

परन्तु इस बार एक विशेष अनुभूति हुई। बहुत-सा इस तरह अनायास उभरा जो मेरे लिए नूतन साक्षात्कार जैसा था। किसी क्षण तो ऐसी बिजली-सी कौंध गयी, जिससे अब तक के अगोचर क्षेत्र झिलमिला उठे, दृष्टिगोचर हो गये। मानो नूतन ज्ञान-द्वार खोलने की कुंजी मिल गयी। मानो कुछ बिलकुल नया हस्तामलकवत् नजर आया, समझ में आ गया। दो-तीन बिन्दु ऐसे आये, जब प्रस्तुत सामग्री ने मानो मुझे थाम लिया और मैं जिधर जा रहा था उधर से लौटाकर मुझे नये मुकाम पर पहुँचा गयी। विनोबाजी कभी 'चित्त-स्फोट' की बात कहते—क्या यही है वह?

ऐसी अनुभूति में स्थान का और वहाँ के सूक्ष्म वातावरण का भी विशेष महत्त्व होता है ऐसा मैंने महसूस किया। गंगा किनारे यह आत्म-निकेतन एक उच्च कोटि के मुमुक्षु साधक की भूमि है। स्वामी आत्मानन्द शिवानन्दजी के वह शिष्य थे। गुरु-आज्ञा से ऋषिकेश के दिव्य-जीवन-संघ के प्रथम ट्रस्टी बने। किन्तु शिवानन्द आश्रम की तामझाम से हमेशा दूर रहे, और इस स्थान पर रहकर साधना में मग्न रहे। मेरे भीतर नव प्रकाश-उद्‌भव का श्रेय इस साधना-स्थली की कृपा रही होगी, ऐसा महसूस करता हूँ।

हालाँकि यहाँ, इस संदर्भ में विनोबाजी का एक निरीक्षण प्रस्तुत करना चाहता हूँ। साधना-भूमि इत्यादि की दिव्य तरंगों को विनोबाजी मान्य करते थे, फिर भी कहते कि ऐसी अनुभूतियाँ स्थान या काल की मोहताज नहीं। उन्होंने स्वयं १४००० फीट ऊँचे पीर पंजाल पर समाधि लगायी और कन्याकुमारी के सागर किनारे भी समाधि लगायी तो दोनों की गुणवत्ता में उन्हें फर्क नजर नहीं आया। अतः आत्मा का निकेतन तो समस्त सृष्टि में सर्वत्र है।

विनोबाजी की यह बात सच लगती है। क्योंकि पिंडवल आने के बाद भी इस लेखन-कार्य के दौरान वही झलक दिखाई दी। सही वातावरण के कारण तल्लीनता और निस्पन्दता साध्य करने की अनुकूलता जरूर मिलती है, अन्यथा विशेष प्रयत्न करना पड़ता है। अतः असली बात यह है कि बाह्य कोलाहल से स्वयं को हटाकर, सर्व वृत्तियों को निस्पन्द करके, अंतरतम में लीन होने का अभ्यास हमें करना चाहिए, आत्मा में मग्न होना चाहिए।

विनोबाजी की एक और बात की प्रतीति यह लिखते-लिखते मुझे होती रही है। विनोबाजी ने बड़ी मार्मिक बात कही है : "इस युग में आत्मकथा लिखने का एक रिवाज हो गया है। लिखी जाती है शरीर कथा। आत्म कथा तो तभी लिखी जा सकती है, जब अनेक प्रवाहों का ज्ञान हो। उसके बिना मात्र अन्तिम टुकड़े की जानकारी तो अधूरी है। कई लोगों के साथ प्रथम परिचय में गहरे स्नेह का अनुभव होता है, इस पर से पूर्व जन्म के परिचय का अनुमान किया जा सकता है।"

विनोबाजी का यह कथन कितना सच है। कान्ताबहन के खून के रिश्ते कैसे पलभर कौंध कर समाप्त हो गये। और हरविलासबहन का रिश्ता कैसा गहरा-दृढ़ साबित हुआ। अतः पूर्व जन्म के ऋणानुबन्ध की बात माननी पड़ती है। दोनों बहनों का एकत्व भी आत्मिक संबन्ध पर आधारित है, ऐसी निश्चित प्रतीति होती है। परम एकत्व की आराधना भी आत्मा की विकासयात्रा की द्योतक है।

किन्तु ऐसी इस आत्मा की कथा-आलेखन का सामर्थ्य कहाँ से लाऊँ? हमारी जीवन कथा तो शरीर कथा ही रहनी है। यह शरीर कथा भी आत्मा की जितनी झाँकी करवा दे, आत्मा का जितना रंग दिखा दे, उतनी उसकी सार्थकता है।

कवि निरंजन भगत का गीत है–

काल की पगडंडी पर घड़ीभर का संग
रे भाई, हमारा घड़ीभर का संग
आत्मा को फिर भी लागजायगा जनम जनम का रंग।

घड़ी भर के संग की लेकिन आत्मा के रंग की यह कथा है।

ता० २९ मार्च, १९९३

सर्वोदय परिवार ट्रस्ट पिंडवल,
जिला-वलसाड-३९६०५०

इन्हें भी पढ़िये

सर्व - धर्म - समन्वय - साहित्य

गीता - प्रवचन	१५.००
धम्मपदं (नवसंहिता)	१६.००
स्थितप्रज्ञ - दर्शन (संशोधित)	१२.००
मनु - शासनम्	प्रेस में
भागवत धर्म - सार (मीमांसा - सहित)	१६.००
गीताई चिन्तनिका	२०.००
खिस्त- धर्म - सार	१०.००
महागुहा में प्रवेश	२०.००
रूहुल कुर्आन (अरबी)	२५.००
कुरान - सार (हिन्दी)	१५.००
रूहुल कुर्आन (उर्दू, नागरी लिपि)	५.००
जपुजी	१०.००
ईशावास्य - वृत्ति	६.००
अष्टादशी (उपनिषद - अनुवाद)	१५.००
साम्य - सूत्र	६.००
अध्यात्म - तत्त्व - सुधा	१०.००
विनयांजलि	४.००
राम - नाम : एक चिन्तन	२.५०
शुचिता से आत्मदर्शन	१.५०
तीसरी शक्ति	१०.००
स्त्री - शक्ति	८.००
नारी की महिमा	१५.००
पूजा - गीत : एक चिन्तन	१०.००
आत्मज्ञान और विज्ञान	१२.००
सप्त शक्तियाँ	३.५०
प्रेरणा - प्रवाह	७.००
मधुकर	६.००
भक्ति - दीपिका	८.००
ब्रह्मविज्ञानोपनिषद्	१२.००

सर्व - सेवा - संघ - प्रकाशन
राजघाट, वाराणसी - २२१००१
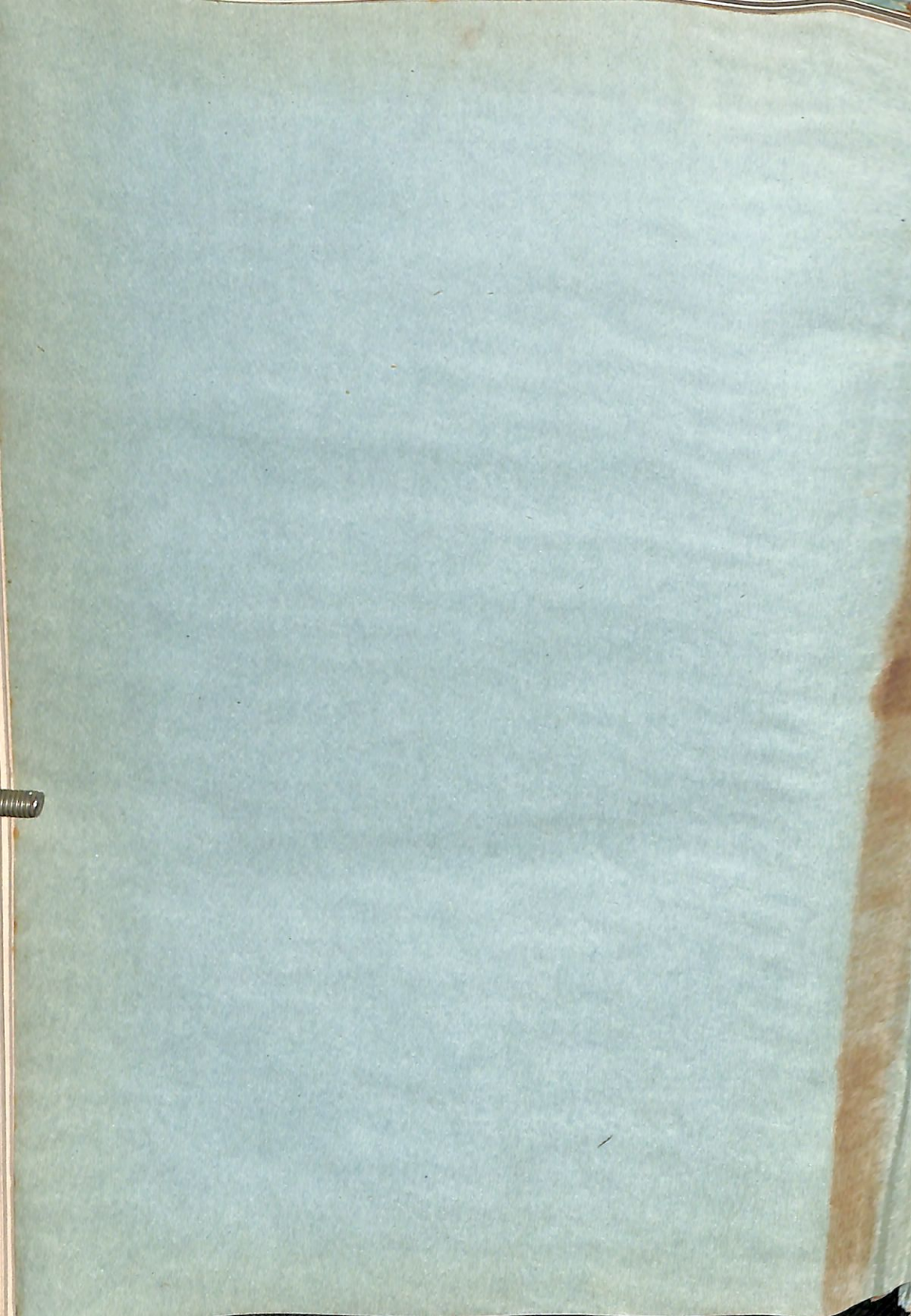
भक्तजनों का, साधकों का स्नेह हेतुरहित होगा। उनका एकत्व तुकाराम महाराज ने कहा है वैसा, 'एकादेहाचे अवयव' की अनुभूति करायेगा।

ब्रह्मविद्या के मानी हैं, आपका और मेरा दिल एक हो और आप सबके लिए मेरे मन में उतना ही प्यार हो, जितना प्यार मुझे अपने लिए है। मुझमें और दूसरों में कोई भेद नहीं है, इसका जिसे अहसास हुआ, उसे ब्रह्मविद्या का स्वाद चखने को मिला।

—विनोबा

चन्द्रकान्ता और हरविलास जुड़वाँ सहोदराएँ नहीं हैं। फिर भी हैं जुड़वाँ बहनें। यह 'यमल' जन्मसिद्ध नहीं है, स्वतः सिद्ध है। अतएव स्वायत्त है। इन दोनों में जितनी समान स्फूर्ति है, उतनी सहोदर जुगलजोड़ी में भी क्वचित् ही पायी जाती है। 'हरिश्चन्द्र' नाम सामासिक है, परन्तु उनके पारस्परिक संबंध में द्वंद नाम को भी नहीं है। इस अद्वितीय युग्म के हृदय में अद्वैत का सुधारस है। यह भक्ति और निष्ठा की अप्रतिम युति लुभावनी है।

—दादा धर्माधिकारी

रामनाम की मुझे बचपन से ही लगन थी। श्वासोच्छ्वास जैसा संबंध था उससे। बीच में कुछ समय ऐसा भी था जब रामनाम के सिवाय बाकी सब मुझे असह्य लगता था।

(कान्ताबहन)

कान्ताबहन से मैंने पूछा, आखिर इतना क्यों रो रही है? बहुत देर तक तो वह सिसकती रही, बोल ही न पायी। बाद में रुक-रुक कर बोली : "इतना लोभ, इतना मोह भरा है इस शरीर में। भगवान का दर्शन हो तो कैसे?"

भगवद्-दर्शन के लिए पागल भोली भावुक लड़की!

—श्रीकृष्णदत्त भट्ट